ह रि वं श क था

मूल रचनाकार
महाकवि आचार्य जिनसेन

रूपांतरकार :
माईदयाल जैन

प्रकाशक :
अहिंसा मंदिर प्रकाशन,
अंसारी रोड, दरियागंज,
दिल्ली-६

HARIVANSH KATHA

(An Abridged Hindi Edition)

by

Miadayal Jain

Price Rs. 7 50

प्रकाशक : अहिंसा मदिर प्रकाशन,
१, अंसारी रोड, दरियागज, दिल्ली–६
(दूरभाष २७३५३७)

सस्करण : प्रथम १९७०

मुद्रक : उद्योगशाला प्रेस, हरिजन सेवक संघ,
किंग्सवे कैम्प, दिल्ली–९

मूल्य : सात रुपये पचास पैसे

आद्यमिताक्षर

'हरिवंशकेतुरनवद्य विनयदमतीर्थ नायकः ।
शीलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिनकुजरोऽजरः ॥'
—बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, अरिष्टनेमिजिनस्तोत्र, १२२

भारतीय वशो का इतिहास उस वट बीज के समान है, जो विशाल वृक्ष का रूप धारण कर क्रमश अपनी शाखा-उपशाखाओ से भू-मडल के विस्तृत क्षेत्र को व्याप्त कर लेता है और कालान्तर मे जिसकी सन्तान परम्परा की गणना अशक्य हो, सर्वथा अनुमान मात्र का विषय रह जाती है। ऐसी स्थिति मे इस युग मे कर्मभूमि के प्रारम्भ से अब तक कितने वशो का उदय और कितनो का अस्त हुआ, यह जानना सर्वथा दुरूह कार्य है।

साधारणतया माना जाता है कि युग के आदि मे कुलकर (मनु) नाभिराज से आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का उदय हुआ और इनके नाम से 'पुरुवंश' की उत्पत्ति हुई। पुरु का अर्थ होता है 'आदि' या प्रथम। राजा श्रेयाश ने इक्षुरस का दान दिया अथवा 'इक्षु' की विधि बतलायी, इस हेतु वश का नाम 'इक्ष्वाकु वश' पडा। इस प्रकार कभी प्रमुख के नाम से तो कभी प्रमुख के कार्य से वशो के नामकरण होते रहे। सूर्यवश, वानरवश, हरिवश और यदुवश आदि सभी का इतिहास ऐसा ही रहा है।

हरिवश-कथा हमारे सामने है। इस वश के इतिहास का प्रारम्भ दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ के युग से प्रारम्भ होता है। वश के नामकरण मे तत्कालीन राजा 'हरि' प्रमुख कारण हैं। कालान्तर मे बहुत से राजा-महाराजा और तीर्थंकर आदि अनेको लोकोत्तर महापुरुषो ने इस वश मे जन्म लिया। तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ इसी वश के अवतंस थे। मूल रूप मे बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ भी इसी वंश के थे, जो कालान्तर मे यदुवशी नाम से प्रसिद्ध हुए।

वंशो के इतिहास-ज्ञान से हमारी प्राचीन सस्कृति और सभ्यता के सरक्षण और वर्धन को पूरा-पूरा बल मिलता है। हमे अपनी प्राचीन सुपरम्पराओ का ज्ञान होता है और हम अपने कर्तव्यमार्ग पर दृढ रह सकते है।

हरिवश के इतिहास-ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करने की दिशा मे लेखक श्रीयुत माईदयाल जैन का साहसिक प्रयत्न है। वे सिद्धहस्त लेखक हैं। यद्यपि वस्तु-स्वरूप अगम्य और छद्मस्थज्ञान के अगोचर है। उसका निरन्तर मनन-चिन्तन करने पर भी नवीन-नवीन बाते सामने आती रहती हैं। ऐसी स्थिति मे किसी निश्चित कथन का दावा करना सर्वथा असम्भव है। तथापि हमे इतना विश्वास होता है कि लेखक ने ग्रन्थ-गुन्थन मे पर्याप्त छानबीन और परिश्रम किया है।

नि सदेह प्रकाशक धर्मानुरागी लाला राजकृष्ण जी जैन की रुचि धर्म-प्रभावना और सन्मार्ग मे विशेष है। उन्होने पहिले भी अनेको सास्कृतिक और सामाजिक कार्य किये हैं। आज भी उनकी रुचि धर्म मे है। पाठकगण प्रस्तुत कृति के प्रकाशन से अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करें, ऐसी हमारी भावना है।

आशीर्वाद !

—विद्यानन्द मुनि

रामपुर मनिहारान
चैत्र बदि ६ वृषभ-जयन्ती
वीर निर्वाण सवत् २४६५

———

प्रकाशकीय वक्तव्य

जैन साहित्य इन चार भागो मे विभक्त है . (१) कर्णानुयोग, (२) द्रव्यानुयोग, (३) चरणानुयोग और (४) प्रथमानुयोग । कर्णानुयोग मे ससार रचना और भूगोल आदि का वर्णन है, द्रव्यानुयोग मे जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, काल और आकाश छह द्रव्यो का वर्णन है । चरणानुयोग मे मुनियो तथा गृहस्थो (श्रावको) के आचरण का उल्लेख है और प्रथमानुयोग मे पुराण, चरित्र तथा कथाए आदि है ।

जैन साहित्य जहा अति विपुल, विशाल और भारत की प्राचीन भाषाओ जैसे प्राकृत तथा सस्कृत मे है, वहा अपभ्र श और आधुनिक भारतीय भाषाओं हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, मराठी आदि तथा द्राविड भाषाओं कन्नड, मलयालम, तमिल और तेलगु में भी है। जैन आचार्यों तथा लेखको ने किसी विशेष भाषा का आग्रह न करके सभी भाषाओ को अपनी रचनाओ से समृद्ध किया है । उन्होने जैन धर्म, दर्शन, सिद्धान्त, नय, तर्क आदि विषयो के अतिरिक्त दूसरे लौकिक विषयो गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, वनस्पति शास्त्र और स्थापत्य कला आदि-आदि को भी अपनी रचनाओ मे स्थान दिया है । इन की रचनाओं के माध्यम तथा अध्ययन से भारतीय साहित्य, दर्शन, इतिहास आदि तथा भाषाओ के पूर्ण विकास का चित्र देख सकते है । पर खेद है कि जैन साहित्य के इस ढग से अध्ययन की ओर विदेशी तथा भारतीय विद्वानो का ध्यान उतना नही गया है, जितना उनका ध्यान वैदिक और बौद्ध साहित्य के अध्ययन की तरफ गया है ।

जैन आचार्य तथा लेखक महान् पुराण लेखक और कथाकार भी थे । इनके माध्यम से वे पाठको तथा श्रोताओ को न केवल धर्म की बातें बताते थे, वरन् मानवीय अनुभव बताते थे और

कहानियों के द्वारा उनका मनोरंजन करने के अतिरिक्त उन्हें शिक्षा भी देते थे। इतना ही नही, उन्होंने राम, कृष्ण, पाण्डवों तथा कौरवों आदि की सुप्रसिद्ध कथाओं को अपनाकर उन्हें जैन साहित्य का अंग बनाया और लोककथाओ को भी अपने साहित्य मे इस ढग से स्थान दिया है कि वह उसका अभिन्न अग बन गया है। उनकी 'हाथी और सात अधो की कहानी' अनेकान्त दर्शन को इतने अच्छे तथा हृदयग्राही ढग से पेश करती है, कि वह विश्वसाहित्य मे स्थान पा गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि पुराण, चरित्र तथा कथासाहित्य मे जैन आचार्यों तथा लेखको का अपूर्व तथा प्रशसनीय योगदान है।

हमारा विचार है कि इन जैन पुराणो, चरित्रो तथा कथाओ को नई शैली मे सरस-सरल तथा रोचक भाषा मे पाठको को दिया जाय, जिससे अधिक सख्या मे पाठक उससे लाभान्वित हो सके। हमारा यह भी विचार है कि इस साहित्य को नाटको, एकाकियो तथा उपन्यास आदि विधाओ मे भी प्रकाशित किया जाय। जैन कथा-साहित्य मे इतनी विपुल मात्रा मे सामग्री मौजूद है कि उसके लिए लेखकों की टीमें (मण्डलिया) हो और प्रकाशन के लिए अनेक सस्थाएं हों।

अपने उपर्युक्त विचार को कार्यान्वित करने के लिए हम सुप्रसिद्ध हरिवश पुराण को 'हरिवश-कथा' के रूप में जैन समाज और हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध लेखक श्री माईदयाल जैन से लिखवाकर साहित्य जगत् को भेट कर रहे है। वे पचासो पुस्तको के लेखक होने के साथ-साथ शिक्षा शास्त्री भी है। हमें आशा है, साहित्य प्रेमी हमारे इस प्रकाशन का न केवल स्वागत करेगे, वरन् वे अपने स्वाध्याय में इसे उचित स्थान देगे।

हमें यह बात बडे खेद से लिखनी पड़ती है, कि हरिवश-कथा के मुद्रण में प्रेस ने विलम्ब किया, जिससे हमे अपनी प्रकाशन योजना

को कार्यान्वित करने में बड़ी रुकावट हुई। अच्छे कामों में कितने विघ्न आते हैं, उसका यह एक उदाहरण है।

हम मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज के अत्यन्त आभारी है, जिन्होने अपने अत्यन्त मूल्यवान् क्षण हमे देकर इस रचना के लिए आशीर्वचन लिखे और इस पुस्तक को सम्मान प्रदान किया।

राजकृष्ण जैन

नयी भूमिका

आचार्य श्री जिन सेन द्वारा वि० स० ८४१ मे रचित सस्कृत हरिवश पुराण के नये रूप हिन्दी हरिवश कथा की यह नयी भूमिका है। इसे नयी भूमिका इस लिए कहा गया है, कि इसके साथ एक प्रचीन पुराण को नये ढग से लिखकर साहित्य जगत् को भेंट किया जा रहा है।

अहिसा मन्दिर, दिल्ली, के सस्थापक और मेरे पुराने मित्र श्री राजकृष्ण जैन का यह विचार है, कि जैन पुराणो, चरितो और कथा-साहित्य को नयी शैली मे सरस, सरल और रोचक भाषा मे प्रकाशित किया जाय, जिससे पाठक रुचिपूर्वक उसे पढ कर लाभान्वित हो सके। इतना ही नही बहुत से जैन-अजैन विद्वानों का यह मत भी है कि इस पुराण आदि साहित्य मे वर्णित कथानको को योग्य अधिकारी लेखको के द्वारा लिखवाकर साहित्य की नयी-नयी विधाओ जैसे नाटक, एकाकी और उपन्यास आदि के रूप मे भी प्रकाशित किया जाय। मै श्री राजकृष्ण जैन और दूसरे विद्वानो के इन दोनो विचारो से पूरे रूप से सहमत हूँ और इसकी आवश्यकता को भी अनुभव करता हूँ।

जब श्री राजकृष्ण जैन ने मुझ से इस हरिवश पुराण को कथा रूप मे सक्षिप्त करके लिखने को कहा, तो मैने इस प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया और मै अपनी सीमाओ को जानते हुए भी इस महान् काम को हाथ मे लेने को तैयार हो गया।

जैन पुराणों मे मुख्य कथा मे उप-कथाए तो होती ही है, उनमें दर्शन, सिद्धान्त, त्रिलोक वर्णन और मुनियो तथा गृहस्थो के आचरण आदि का भी बड़ी मात्रा मे वर्णन होता है। प्राचीन पुराण शैली में यह अनिवार्य था। पर आज कथा के सम्बन्ध में

यह विचार है, कि कथा में न अप्रासगिक सामग्री हो और न उपदेश हो। पाठक कथा पढ ले, श्रोता कथा सुन ले और फिर उन के हृदयो पर कथा के उपदेश या शिक्षा का प्रभाव स्वय पड जाय। इसके अतिरिक्त बडे-बडे पुराण या चरित्र पढ़ने-सुनने के लिए भी आज किसी के पास समय नही है। इसलिए कथाओं को सक्षेप मे देने की परिपाटी बढ रही है।

हरिवश पुराण के आधार पर रचित या पुनर्कथित—रिटोल्ड (Retold) प्रस्तुत हरिवश कथा में उपर्युक्त बातो का ध्यान रख कर उसे सक्षेप मे सरस, सरल और रोचक भाषा मे लिखा गया है। पुराण को सक्षिप्त करते हुए मुख्य कथा तथा उपकथाओ को यथेष्ट रूप में दिया गया है जिससे कथा मे कोई कमी न आने पाये। सक्षिप्त होते हुए भी यह हरिवश कथा बडी ही मालूम होगी। पर इससे अधिक सक्षिप्त करना मैने उचित नहीं समझा। मैं अपने इस प्रयत्न मे कहा तक सफल हुआ हूँ, इस का निर्णय मै विद्वानो तथा योग्य पाठको पर छोडता हूँ।

अहिसा मन्दिर प्रकाशन के सचालको तथा उसके उत्साही मत्री श्री प्रेमचन्द जैन का मै आभारी हूँ कि उन्होने मुझे इस साहित्य-सेवा का प्रशसनीय अवसर दिया। जैन समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् पडित राजेन्द्र कुमार जैन, न्याय तीर्थ, से भी मुझे समय-समय पर इस काम मे जो परामर्श मिला है, उसके लिए मैं उनका भी आभारी हूँ।

यदि साहित्य जगत् ने मेरे इस प्रयास को पसन्द किया तो मै अपने परिश्रम को सफल समझू गा और इस प्रकार की दूसरी पुराण-कथाए भी आगे देने का प्रयत्न करू गा।

माईदयाल जैन

४५६६, डिप्टी गंज, दिल्ली—६

विषय-सूची

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या

: १ :

हरिवंशकी उत्पत्ति

अंतिम और चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी विहार करते-करते मगध देशके प्रसिद्ध नगर राजगृह पधारे। मगध देशको भारतकी धर्म भूमि, पवित्र भूमि और स्वर्ग भूमि होनेका गौरव प्राप्त है। इस देशको जम्बूद्वीपका भूषण कहा है। यहांके पर्वत वृक्ष पक्तियोसे सुशोभित हैं। अनेक नदियॉ, सघन वन, विभिन्न प्रकारके धान्य और खाद्यान्नोंके हरे-भरे खेत, आम, जामुन तथा केले आदि फलोके बाग-बगीचे मगध देशके प्राकृतिक सौन्दर्यको चार चाद लगाते हैं, देशको सब प्रकारसे समृद्ध और खुशहाल बनाते है। मगध देश न केवल सभी प्रकारकी आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक विभूतिवाला था, वरन् यहा तत्व-चर्चा, स्वाध्याय, तप और आध्यात्मिकताका खूब प्रचार था। उस समय मगध देश जैन धर्म और जैन सस्कृतिका महान केन्द्र था, जिसके प्रमाणमे यहाके अनेक जैन तीर्थ जैसे वैशाली, कुण्डलपुर, राजगृह और पावापुरी आदि हैं। आज भी सहस्रों स्त्री-पुरुष यात्री इन तीर्थोंकी वन्दनाके लिए हर वर्ष आते हैं। बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ और चौबीसवे तीर्थंकर महावीर स्वामीने अपने जन्म, तप और विहारसे इस देश-की मिट्टीके कण-कणको पवित्र किया। महावीर स्वामी के समकालीन महात्मा बुद्धके जन्म का गौरव भी मगध देशको ही प्राप्त है।

उस समय राजगृह मगधकी राजधानी थी। राजगृहकी शोभा इन्द्रपुरीके समान थी। यहां पृथ्वीपर स्वर्ग उतर आनेकी बात चरितार्थ होती थी। यहांके महल और सुन्दर भवन तथा इसके आस-पास के प्राकृतिक सौन्दर्यका वर्णन करना लेखनीकी शक्तिसे बाहर है।

इसी राजगृहमे तीर्थंकर महावीरका समवसरण—प्रवचन मण्डप, सभा मण्डप – बना। इस समवसरणमे कई कक्ष थे, जिनमें देवता, गणधर, मुनि, आर्यिकाए, राजा, विद्वान, जनता और पशु-पक्षी बिना किसी भेदभाव और वैरभावके भगवानके उपदेशामृतका पान करनेके लिए बैठते थे। वहा धर्मोपदेशामृतकी सरिता बहती थी। सबकी शकाओ और सभी प्रकार की जटिल समस्याओं का समाधान वहा होता था। समवसरणमे तीर्थंकरकी दिव्यध्वनि सबको आत्मिक सुख-शाति देनेवाली, मोक्षमार्ग बतानेवाली होती थी। दिव्यध्वनि सर्व भाषामय होती थी और सभी उसको आसानीसे अपनी-अपनी भाषामे समझते थे। यह इसकी विशेषता कही जा सकती है।

इसी सभामे भगवान महावीरने अपने उपदेशमे बताया कि यह जीव और सृष्टि अनादि है और इसका कर्त्ता या नाशक कोई नही है। यह जीव अनादि कालसे कर्मोंके बन्धनके कारण आवागमनके चक्रमे घूमता रहता है। कर्म सिद्धान्त यह है कि जो जैसा कर्म करता है उसको उसका वैसा ही फल मिलता है। अच्छे कर्मका फल अच्छा और बुरे कर्मका फल बुरा होता है। इन कर्मोंके बन्धनको काटकर यह जीव मोक्ष प्राप्त करता है। मोक्ष जानेके पश्चात् कोई जीव ससारमे दोबारा जन्म नही लेता। मोक्ष ही जीवका परम लक्ष्य है। सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र तीनो मिल कर मोक्षका मार्ग बनाते हैं। महाव्रत रूप मे मुनिधर्म ओर अणुव्रत रूपमें श्रावक धर्म हैं। मुनि धर्म उत्कृष्ट धर्म है। मुनियोको अहिसा, सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अचौर्य पांच व्रत महा व्रत रूपमे पालने होते हैं। परन्तु हर एक स्त्री-पुरुष मुनि धर्मका पालन नही कर सकता। इसलिए उनके लिए अणुव्रत रूप धर्मका उपदेश है। अहिसा परम धर्म है। इसका आशय यह है कि किसी भी जीवको प्रमाद से मन, वचन और कायासे स्वय या

दूसरेके द्वारा कष्ट मत दो और न उसका अनुमोदन करो। प्राणी मात्रके प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए। विषय और वस्तु-स्वरूप को ठीक तौर पर समझने के लिए उन्होंने अनेकान्त अथवा स्याद्वाद का प्ररूपण किया।

भगवान महावीरके उपदेशके पश्चात् उनके प्रमुख शिष्य गौतम गणधरने तत्व-चर्चा और शका-समाधान किया। समवसरण मे श्रोताओमें राजगृहके राजा श्रेणिक भी थे। तीर्थंकर महावीर स्वामीका उपदेश सुननेके पश्चात् उसने श्री गौतम गणधर से प्रार्थना की, "महराज ! हरिवशकी उत्पत्ति और उसका वर्णन बताने की कृपा करे।" श्री गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे हरिवश की उत्पत्ति-की कथा कहने लगे।

सब देशोमे अति सुन्दर वत्स देश था। उसमें यमुनाके किनारे कोशाबी नगर था। यह नगर वत्स राज्यकी राजधानी थी। कोशाबी नगरकी रक्षाके लिए कोट, परिकोट और खाई बनी हुई थी। कोशावी नगर की सुन्दरताका वर्णन करना कठिन है। उसमें बडे-बडे तथा ऊँचे-ऊँचे अनेक भवन थे और रातके समय उसमें जो प्रकाश होता था वह रत्नोके प्रकाशके समान था।

वत्स देश के राजाका नाम सुमुख था। इसके राजमे समस्त प्रजा सुखी थी। बहुत से नरेश राजा सुमुखके आधीन थे। राजाका धनुष इन्द्रधनुषसे उत्तम था, क्योकि उसमे कोई दोष न था। राजा-का महा सुन्दर शरीर और नव यौवन देखने योग्य थे। वह धर्म-शास्त्रमें प्रवीण, विशेष कलाओको जाननेवाला और महा गुणवान था। वह सुजीवो पर अनुग्रह करने में समर्थ और प्रजाका पालक था, पर दुष्टोको दबानेमे भी कुशल था। राजा सुमुखके अनेक गुणोके कारण प्रजा उसे हृदयसे चाहती थी और सदा आशीर्वाद देती थी और उसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति और चिर आनन्दकी हृदयसे कामना करती थी।

एक दिन राजा सुमुख अपने नगरमें भ्रमण कर रहे थे।

राजाको देखकर सबके मन आनन्दसे भर गये। सभी राजाको बिना पलक मारे देख रहे थे, पर उनके मन नहीं भर रहे थे। उन नर-नारियों मे एक अत्यन्त रूपवती नवयुवती दोनो नेत्रों से राजाके रूपामृतको अतृप्तसी पी रही थी। जब राजाकी दृष्टि उस पर पडी, तो उसका मन भी उस स्त्रीपर अनुरक्त हो गया। राजाके पांव न आगे बढ रहे थे और न पीछे हट रहे थे। राजा मनमें विचारने लगा कि यह अत्यन्त रूपवती कौन है, जिसने अपने रूप और नवयौवनके फन्दे मे मेरे मनको फंसा लिया है? पर स्त्रीका सेवन समस्त जगतमे महा पाप माना गया है। मन भी जब विषयाभिलाषा से चलायमान होता है, तो उसे वशमे करना अत्यन्त कठिन होता है। विषयासक्ति से राजाकी बुद्धि मन्द पड गई और उसे लोकापवादका भी डर न रहा। वह उसे सहनेको तैयार हो गया, पर अपने मनको वशमे न कर सका। राजा अपने मनकी पीडा जीतनेमे असमर्थ बन गया।

अब राजा उस स्त्रीको हरनेकी विधि सोचने लगा। जैसे सूर्य प्रभावान और दैदीप्यमान है, पर अस्त समय मन्द पड़ जाता है, वैसे ही राजा सुमुख भी लौकिक आचार, धर्म तथा नीतिको जाननेवाला होते हुए भी कामके आतापसे मन्द बुद्धि हो गया।

उस महा रूपवती स्त्रीका नाम बनमाला था और वह नगरके एक सेठ वीरककी धर्मपत्नी थी। जब बनमालाने राजा सुमुखको उस भीडमे देखा था, तब वह भी अपने हृदयको राजाको सौंप चुकी थी। वह भी राजाको पानेके लिए आतुर थी।

दोनो एक दूसरेके अनुरागसे व्यथित थे।

राजा वहाँ से बन-उपवनमे गया। यद्यपि वहाँ बहुत प्राकृतिक सौन्दर्य था, पर वहाँ भी राजाका जी न लगा। वह अपने महलोमे आगया, पर तब भी बेचैन। उसके मनमें तो विषयाग्नि धधक रही थी, उसे शान्ति कैसे मिलती ?

राजाका सुमति नामका अति बुद्धिमान और चतुर मन्त्री था। राजाका यह हाल देखकर वह बड़ी विनयसे राजासे पूछने लगा, "हे प्रभो ! आज आप चिन्ता मे क्यो हैं ? आपको अपने प्रताप से सब सुख प्राप्त हैं। आपकी प्रजा सुखी है, आप सबका सम्मान करते हैं। सभीको आपसे अनुराग और प्रेम है। फिर आज यह उदासी और चिन्ता क्यो ? अपने दुःखको अपने प्राण समान मित्रसे कहकर उसका उपाय करने से दुख मिटता है। यह जगत की रीत है। इसलिए अपने मनकी बात मुझसे कहो, जिससे उसका यथोचित उपाय करू।" तब राजाने नगरमे स्त्री समूहमें देखी हुई उस रूपवती नवयुवतीका वर्णन किया और मन्त्रीसे कहा कि उस स्त्रीको प्राप्त किये बिना उसे चैन नही पडेगा। मन्त्री राजाकी बात सुनकर दंग रह गया। मन्त्री सुमतिने पर स्त्री सेवनकी बुराइयो और राजाके पवित्र कर्तव्यकी बात राजा को समझाई, पर राजाके सिर पर तो विषयका भूत सवार था। उसने मन्त्रीके अच्छे परामर्श को न मानना था न माना। अपनी ही बात और सेठानी बनमालाकी रट लगाता रहा। राजाने कहा कि यदि मुझे आज उसका सयोग न हुआ, तो उसके बिना मेरा एक दिन भी जीना कठिन है। राजाने मन्त्रीको यह भी बताया, कि मेरे बिना वह भी इसी प्रकार तडप रही होगी। राजाने कहा, "मैं जानता हू कि इस बुरे कामसे लोकमे अपयश और परलोक में पाप का फल मिलेगा, परन्तु विषयासक्त मूढ जीव अन्धेके समान कार्य-अकार्यको नही देखते। यदि मेरा जीवन रहा तो इस पापको शात करनेके अनेक यत्न बादमे कर लिये जायगे। अब मेरी इच्छा पूरी करो।"

मन्त्रीने यह जानते हुए भी कि राजाकी मनोकामनाको पूरा करना बुरा काम है, पर राजा के प्राणोंकी रक्षा करना भी मन्त्रीका कर्तव्य है, इसलिए उसने राजाको बनमाला दिलानेका

आश्वासन देते हुए उसे नहाने-धोने और भोजन आदि करनेको कहा।

मन्त्री सुमुखने राजाकी आज्ञासे दूत कार्यमे अति निपुण दूती आत्रेयीको बनमालाके पास भेजा। बनमालाने दूतीका बड़ा सम्मान किया। आत्रेयीने बनमालाके रूप, स्वभाव और गुणोकी प्रशसा करते हुए बडे प्रेमसे उसकी चिन्ता और उदासीका कारण पूछा। दूतीने उसे बेटी कहते हुए अपने मन की बात उसे कहनेको कहा। दूतीने शीघ्र ही बनमालाका विश्वास प्राप्त कर लिया। बनमाला उससे राजाके प्रति अपने अनुरागकी बात कहने लगी। सेठानीने अपनी प्रेमपीडा और मनकी व्यथा को दूती से दिल खोल-कर कहा और राजा सुमुखसे मिलाने की प्रार्थना की। साथ ही बनमालाने समस्त बातको गुप्त रखनेका भी आग्रह किया। बन-मालाने दूतीसे कहा कि जहाँ तक मेरा अनुमान है राजा सुमुख भी मुझपर अनुरक्त है और जैसे मैं तडप रही हू वैसे ही मेरे बिना वह भी बेचैन होगा। दूती बनमालाका राजाके प्रति अनुराग और उसकी कामपीडाकी बात सुनकर समझ गई कि उसे अपने कार्यमे सफलता आसानीसे मिल जायगी। वह मनमे बडी हर्षित हुई। आत्रेयी बनमालासे कहने लगी, "पुत्री! राजा सुमुखने ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तेरे रूपपर वह बडा आसक्त है। तेरे बिना उसका जीना भी कठिन है। इसलिए तु मेरे साथ अभी चल। मैं तुम दोनोकी अभिलाषा पूरी करूगी।" दूती अपनी सफलता पर मन ही मन प्रसन्न थी।

कामातुर बनमाला दूतीके बचन सुनकर बिना आग-पीछा सोचे पतिके पीछे दूतीके साथ राज महलके लिए चल पडी। जब बनमाला राजा सुमुखके महलमे पहुंची, राजाने बडे प्रेम और आदरसे उसका स्वागत किया। दोनों एक दूसरे को देख कर बड़े प्रसन्न और हर्षित हुए। प्रेम और काम वासना की वृद्धिके लिए वे

दोनों अनेक हाव-भाव प्रकट करते रहे। वे दोनो अनेक प्रकारकी प्रेम क्रीडा करते रहे और कामाग्निको शान्त करते रहे। सभी शास्त्रोमें निज स्त्रीके सेवनको भी सीमित रखने का उपदेश है, उसे भी भवभ्रमणका कारण बताया है, फिर परदारा सगम तो महा पाप कहा गया है। यह तो प्रत्यक्ष ही कुगतिका कारण कहा गया है। धिक्कार है उस काम वासनाको जो मनको मोहित और धर्म विमुख करके स्त्री-पुरुषोंको अधर्म मार्गपर प्रवृत करती है। सुमुख जैसे नीतिवान, न्यायशील और धर्मके ज्ञाताके लिए तो यह पाप कर्म और भी निन्दनीय था। पर कामवश बुद्धिमान से बुद्धिमान स्त्री-पुरुष भी अन्धे बन जाते हैं।

रात भर राजा सुमुख और बनमाला रगरलियोमे मस्त रहे। भोर हुआ पर राजा सुमुखने बनमालाको वापस उसके घर न जाने दिया। मन वान्छित दुर्लभ वस्तु मिलने पर कौन छोडना चाहता है? राजा ने उसे अपनी पटरानी बनाया। सब राजलोकमें सेठानी शिरोभाग बनी। यहा जो उसकी प्रतिष्ठा थी, वह सेठ वीरकके घरमे उसे कहाँ प्राप्त थी? वह भी अपने पति सेठ वीरक-को भूल गई।

कुछ दिन बीतने पर कोशाबी नगर मे वरधर्म नामके एक जैन मुनि बिहार करते हुए पधारे। बरधर्म तपो निधि, व्रतोको पालनेवाले, एक वस्त्र तक के परिग्रहके भी त्यागी, महान शान्त और अध्ययनादि तप रूप लक्ष्मीसे सुशोभित थे। वे आहार-भोजन के लिए घूमते-घूमते राजा सुमुखके राजमहलके द्वारपर आये। जब राजाने मुनि महाराजके अपने महलके द्वारपर पधारनेका शुभ सम्वाद सुना, तब वे बडे हर्षित हुए और उन्होंने मुनिके आगमनको अपना अहोभाग्य और पुण्योदय समझा। झट से राजा सुमुख अपनी विवाहिता धर्मपत्नी सहित मुनिकी प्रदक्षिणा दे विनय सहित मुनिराजको बड़ी श्रद्धासे महलमे ले गया। राजाने शुद्ध जल

से मुनिके चरण धोये, मुनिकी धर्म विधि पूर्वक अष्ट द्रव्योंसे पूजा की। मन, वचन और कायासे मुनिको बार-बार बन्दना करके उन्हें विधि पूर्वक आहार कराया।

सेठानी बनमालाने भी राजाके द्वारा मुनिको आहार कराने पर बडा हर्ष माना।

मुनि तो आहार करके वहां से बनकी ओर चले गये। इधर राजा सुमुख और बनमालापर दैव योगसे बिजली गिरी और उन दोनोकी तत्काल मृत्यु हो गई।

यद्यपि पर स्त्री और पर पुरुषके समागमके पापके कारण राजा सुमुख और बनमाला की कुगति होती, परन्तु उन दोनो ने अन्तिम कालमे इस पापके लिए बढा पश्चाताप किया था, राजाने मुनिको आहार दिया था और बनमालाने मुनि आहारके अच्छे कामपर हर्ष प्रकट किया था, उसका अनुमोदन किया था, इसलिए मरनेके पश्चात् उन दोनोने विजयार्द्धगिरिमे विद्याधरोके यहाँ जन्म लिया। विजयार्द्धगिरिमें हरिपुर नगर मे राजा पवन गिरि विद्याधर था। उसकी महा गुणवती, कलावती और कुलवन्ती मृगावती रानी थी। उनके यहाँ सुमुखका जीव पुत्र रूपमे उत्पन्न हुआ।

विजयार्द्धगिरिमे मेघपुर नगरमे राजा वेग विद्याधर था, जिसकी महा सुन्दर रानीका नाम मनोहरी था। उन दोनो के घर बनमालाका जीव मनोरमा पुत्री हुआ। वे दोनो राजाओके घर सुखसे पलते रहे। ज्यूँ-ज्यूँ वे बढते गये, उनके शरीर सुगठित होने लगे और गुण बढने लगे और वे भिन्न विद्याओमें निपुण होने लगे।

जब वे दोनो बडे हुए, तब उनकी सगाई हो गई। फिर उन दोनोका बडे समारोहके साथ विवाह हुआ और वे दोनो राज महलमें बडे सुखसे रहने लगे। अनेक रम्य सुन्दर स्थानोपर वे दोनों वर-वधु घूमने गये। उनके दाम्पत्य जीवनके सुखकी कोई सीमा न थी।

दुतीके साथ छुप कर बनमालाके घरसे चले जानेके पश्चात् सेठ बीरक अपनी पत्नीके वियोग और विरहसे व्याकुल और दुखी रहने लगा। उसे दिनको चैन न रातको नीद। ठण्डी आहें भरते-भरते उसका समय बीतने लगा। "हाय बनमाला! तू कहां गई, तूने क्या किया?" यही रट उसकी जुबानपर रहने लगी। मारे चिन्ता और वियोगके उसका खाना-पीना बन्द-सा हो गया और उसका शरीर सूखने लगा। उसकी तमाम धन-सम्पत्ति और उसके घरके सभी सुख उसके हृदयकी जलनको शान्त न कर सके। जिस प्रकार स्त्रीको पति वियोगसे महा दुःख होता है, उसी प्रकार पुरुषको भी पत्नी वियोगसे महा दुःख होता है। अब वीरकको घर और ससारकी कोई भी वस्तु अच्छी न लगती थी, वरन उनसे विरक्ति हो गई। अब वीरक सेठने गृह त्याग कर जैन मुनिका धर्म अगीकार किया। ससारसे विरक्त पुरुषोके लिए मुनि धर्म और स्त्रियोके लिए आर्यिका धर्म बडा शरण है। अब वीरक सेठ नही वीरक मुनि बन गया। वह अपने मन और सभी इन्द्रियोको बशमे करने का अभ्यास करने लगा। उसने महान तपसे शरीरको सुखा कर कांटा बना दिया। मर कर वीरक मुनि का जीव पहले स्वर्ग मे देव हुआ। जो मुनि अपने जन्ममे मोक्ष प्राप्त नही करते, वे स्वर्गके सुख भोग कर निर्वाण पद अर्थात् मुक्ति पाते हैं।

एक दिन वह देव अपने पूर्व जन्मकी बातोपर विचार करने लगा। उसे अपनी पहली पत्नी बनमालाकी याद आ गई। सुमुख राजाने उसकी सेठानीको हरकर उसका अपमान किया था, वह भी देवको याद आ गया। उसने अपने ज्ञानसे यह भी जान लिया कि सुमुख और बनमालाके जीव मरने के पश्चात् विद्याधरोके घरमे जन्म लेकर फिर पति-पत्नी रूपसे रह रहे हैं। इन सब बातोंकी यादसे उस देवके मनमें द्वेषकी आग भड़क उठी और उसने अपने अपमानका बदला लेने का निश्चय किया।

उस देवने अपने ज्ञानसे यह जान लिया कि वे पति-पत्नी उस समय मध्य लोकमे हरिवर्ष क्षेत्रमे आनन्द मना रहे थे। देवने सोचा कि वे दोनो नवयौवन हैं, इसलिए मारने योग्य नही हैं। तब उसने अपनी अखड देव मायासे उनकी आकाश गामिनी विद्याका नाश कर दिया। फिर उस देवने पूछा, "हे सुमुख!, क्या तू मुझे जानता है? मैं वही सेठ हू जिसकी प्रिया पत्नी बनमाला तूने हरी थी। बनमाला तू पापिनी है। तूने अपने शील धर्मको खोया, इसलिए तुझे धिक्कार है। मैंने तुम्हारी विद्या तो हर ली है अब बताओ तुम्हे क्या दुख दू ?" ऐसा कहकर उस देवने उन दोनोको इस तरह उठा लिया जैसे गरूड आदमियोके जोडे को उठा लेता है। वह उनको उठाकर दक्षिण भारतकी ओर ले गया। फिर वह उन्हे लेकर चपापुरी नगरमे आया।

सयोगकी बात है कि उसी समय चम्पापुरीके राजा चन्द्र कीर्तिका निधन हो गया था। चम्पापुरी अब अनाथ थी। उसे एक राजाकी आवश्यकता थी। इसलिए वह देव चम्पापुरीका राज्य सुमुखके जीवको देकर आप वापिस देवलोक आगया। वे दोनो पति-पत्नी अपनी आकाशगामिनी विद्याके छिन जाने से पखहीन पक्षियोके समान देव लोक जाने मे असमर्थ होकर वही चम्पापुरीमे स्थायी रूपसे रहकर राज्य करने लगे। उस मण्डलके अनेक राजाओ ने उनकी आधीनता स्वीकार कर ली।

यह बात दसवे तीर्थंकर श्री शीतलनाथके समयकी है। राजा-रानीने अनेक वर्षो तक वहाँ सुखसे राज किया। उनके घर एक पुत्र हुआ, जिसका नाम हरि रखा गया। कुछ वर्षोके बाद वे दोनो राजा-रानी परलोक सिधारे। और राजा हरि चम्पापुरी पर राज करने लगा। राजा हरि बडा प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुआ। अपने वशका मुख्य राजा होनेके कारण उसका वश हरि-वश नामसे प्रसिद्ध हुआ।

राजा हरिके पुत्रका नाम महागिर था। उसके बेटेका नाम हिमगिर था। हिमगिरके बसुगिर पुत्र हुआ और उसके गिर नामका पुत्र हुआ। ये राजा स्वर्ग लोक पधारे। इनके पश्चात् इस वंशमें सैकडो और राजा हुए। इन राजाओने इन्द्रके समान वैभव प्राप्त किया और सुखमे राज कर अपने-अपने समयमे मुनि दीक्षा लेकर तप करके वे मोक्ष या स्वर्ग लोक गये। इस हरिवंशमे अनेक राजा अद्‌भुत चरित्रके धारक हुए थे।

: २ :

तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ

बहुत समयके पश्चात् मगध देशमे कुशाग्र नगरमे हरिवंशमें एक बडा प्रसिद्ध, शस्त्रविद्यामे निपुण और पुरुषार्थी राजा सुमित्र हुआ । उसकी रानीका नाम पद्मावती था। वे दोनो बडे सुखसे राज कर रहे थे । प्रजा हर तरहसे सुखी थी। राजा और रानी दोनो जैन धर्मके अनुयायी और बडे भक्त थे ।

तीर्थकर शीतलनाथके पश्चात् तीर्थकर श्रेयासनाथ, वासु पूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शातिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ और मल्लिनाथ हुए ।

इन्द्रको यह मालूम हुआ कि राजा सुमित्रके घर रानी पद्मावतीके गर्भमे बीसवे तीर्थकर मुनि सुव्रननाथ आयगे, इसलिए इन्द्रने धनपति कुबेरको राजा सुमित्रके घरमे मणियोकी वर्षा करने की आज्ञा की ।

एक रातको रानी पद्मावती अपनी सेजपर निद्रामग्न थी । उसने पिछली रातमे सोलह स्वप्न देखे। उन स्वप्नोमे रानीने हाथी, बैल, सिह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चान्द, सूर्य, मछली, कलश, कमलोसे भरा सरोवर, समुद्र, सिहासन, देव विमान, फनीन्द्र भवन, रत्न राशि और निर्धूम अग्नि देखे । रानी पद्मावती इन स्वप्नोको देखकर बडी आनन्दित हुई । उसकी उस समय की कातिका वर्णन करना अति कठिन है, क्योकि उसके गर्भमे तीर्थकर आनेवाले थे ।

प्रात काल रानी पद्मावती अपने पति राजा सुमित्रके पास गई और उसने बडी विनयसे राजाको प्रणाम किया । राजा-ने भी रानीका बडा आदर-मान किया और अपने पास सिंहासन-पर स्थान दिया ।

आपस में कुशल मंगलकी बात पूछने पर रानीने सोलह स्वप्नोका हाल राजाको बताया और उनका फल पूछा। राजा उन स्वप्नोको सुनकर बडी प्रसन्नतासे कहने लगा, "हे प्रिये ! तीन लोक के स्वामी जगत गुरु तीर्थकर तेरे गर्भमे आये हैं। तू धन्य है। हमारा वश धन्य है।" रानी भी स्वप्नोका यह फल सुन कर बडी हर्षित हुई। राजाके बचनोने सूर्यकी किरनोंके समान रानीको उल्लसित किया। रानी अपने जन्मको सुफल मानने लगी। गर्भवती रानी पद्मावती शरद ऋतुकी जलसे भरी मेघ मालाके समान सुन्दर और बिजलीसे भी अधिक प्रभावान दिखाई देती थी।

रानी पद्मावतीने माघ मासके शुक्ल पक्षमें द्वादशीको श्रवण नक्षत्रमे बीसवे तीर्थकर मुनि सुव्रतनाथको जन्म दिया।

तीर्थकरको जन्म देने के कारण रानी पद्मावतीके हर्षकी सीमा न थी। उसे तीर्थकर जननी होने का महान गौरव प्राप्त था। राजा सुमित्र भी तीर्थकर श्री मुनि सुव्रतनाथके जन्मका शुभ समाचार सुन कर हर्पसे फूले न समाये। राज्य भर में प्रजाने खुशीसे बडे उत्सव मनाये। तीर्थकरके जन्मके समाचारसे देव लोक तकमे आनन्द मनाया गया। इन्द्रादि देवोके मुकट विनयसे झुक गये और उनके सिहसान कापने लगे।

नवजात शिशु मुनिसुव्रतनाथ अति सुन्दर थे और उनके शरीरमे शंख चक्रादिक एक हजार आठ शुभ लक्षण थे। उनके शरीर का रंग नीलमणि समान श्याम सुन्दर था।

यहां यह बता देना आवश्यक है, कि महान शुभ विशेष कर्मके बन्धने से ही जीव तीर्थकरके रूपमें जन्म लेते हैं, अन्यथा नही। इन्हें महामानव कह सकते हैं। तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, तप, केवल ज्ञान प्राप्ति और मोक्षके पाच कल्याणक कहलाते हैं। कल्याणक अर्थात कल्याण करने वाले समय तीर्थंकरोंके जीवनमे पंच कल्याणकोंका बड़ा महत्व होता है। पच कल्याणकों पर सभी नर-नारी, देवी-देवता और इन्द्रादि हर्ष मनाते हैं, उत्सव करते हैं।

बीसवे तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथके पच कल्याणकोंपर खूब हर्ष मनाया गया ।

जगतकी दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुभी मुनि सुव्रतनाथको बाल्यावस्थामें सुलभ थी । ज्यू-ज्यू उनका शरीर बढने लगा, उनके गुणोमे वृद्धि होने लगी । युवावस्था प्राप्त करने पर उनका विवाह एक महा मनोग्य नवयुवतीसे किया गया । मुनिसुव्रतनाथ और रानी ऐसे मिले, जैसे महानदी समुद्रसे मिलती है । मुनि सुव्रतनाथके समान पृथ्वीपर कोई पुरुष नही था और रानीके समान कोई स्त्री न थी ।

फिर हरिवशके सूर्य मुनि सुव्रतनाथ राजसिहासनपर बैठे । सब राजाओ और समस्त प्रजाको सुख देते हुए वे राज्य करने लगे । राजाकी आज्ञा अखण्ड थी । राजा-रानी बडे सुखसे समय बिताने लगे ।

एक दिन शरद ऋतुमे राजा मुनिसुव्रतनाथ अपने महलमे रानी सहित आनन्दसे बैठे शरद कालकी प्राकृतिक सुन्दरता देख रहे थे । आकाशमे मेघमण्डलको देखकर राजा-रानीके मन बड़े हर्षित हुए । परन्तु उसी समय वह मेघमण्डल प्रचण्ड पवनके चलने से विलय हो गया । वह इस तरह छिन्न-भिन्न हो गया, जैसे आगकी ज्वालासे तप्त मक्खनका पिण्ड पिघल जाता है । इस प्रकार बादलोंके विलयके दृश्यको देखकर राजा मुनिसुव्रतनाथ सोचने लगे कि बादलोका इस तरह छिन्न-भिन्न होना जगतको विनाशकी सूचना देता है । आयु और काया सब विनिश्वर हैं । ये बादल निर्मल बुद्धि आदमियोको ससारकी अनित्यता स्पष्ट रूपसे दिखाते हैं । यह शरीर छोटे-छोटे महा तुच्छ पुदगल परमाणुओका समूह है । रागादिक परिणामोसे पैदा हुए ज्ञानावरणादि कर्मोंके सयोगसे इस शरीरकी उत्पत्ति है । मृत्यु रूपी पवनके वेगसे यह शरीर बादलोंके समान शीघ्र विघट जाता है । इस शरीरकी शक्ति ही

क्या है ? यह नाशवान है । इससे स्नेह करना व्यर्थ है । जैसे-जैसे आयु बढती है, वैसे-वैसे आयु घटती है । साधारण आदमियोकी तो बात ही क्या है, पर्वतके समान दृढ राजा भी काल रूपी वज्रके घातसे चूर्ण हो जाते हैं । इस लोकमे बडे महलोके स्वामी राजा, प्राणोंसे प्यारी सुन्दर स्त्री, प्राण समान मित्र और पुत्र सब ही काल रूपी पवनसे सूखे पत्तोकी तरह उड जाते हैं । मनुष्योकी तो शक्तिही क्या, देवोके इष्टका भी वियोग होता है । देखते-देखते ही प्राणियोकी देह नष्ट हो जाती है । फिर भी यह मूढ मति जीव मृत्युसे नही डरता । कर्मके दृढ बन्धनोमे बन्धा यह जीव ससारमे अनेक दुःख भोगता है । जीवको एक इन्द्रीकी विषयासक्ति ही मौतके चुंगलमे फँसा देती है, फिर पुरुष तो पाच इन्द्रियोके जीव हैं । उनको ससारमे भटकानेके तो अनेक साधन हैं ।

राजाने सोचा कि इन्द्रियोसे मिलनेवाला सुख तृप्तिका कारण नही है । यह विषयोका ईधन भोगाभिलाषाकी आगको भडकाता ही है, कम नही करता । विषय-भिलाषाको दबाने और इन्द्रियोको जीतने से ही विषयाग्नि बुझती है । ऐसा सोचते-सोचते राजाका मन ससारसे विरक्त हो गया । राजा सुव्रतनाथने असार सुखको त्याग कर मोक्ष मार्गपर चलने का निश्चय किया । राजा मुनि सुव्रतनाथको अपने आप ही बोध प्राप्त हुआ ।

अब राजा मुनि सुव्रतनाथने अपने सुव्रत पुत्रका राज्याभिषेक किया । इधर सुव्रत राजसिंहासनपर बैठे और उधर मुनि सुव्रत नाथ ससार तजकर तपके लिए बनको चल पडे । उन्होने स्वय अपने हाथोसे अपने केशोका लोच किया । अब उनका तप कल्याणक आरम्भ हो गया । उनके घोर तपसे कर्म मल कट गये । उन्होंने तेरह महीने तप किया । इसके पश्चात् उन्हे मगसिर सुदी पचमीके दिन केवल ज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ । इसे ही ज्ञान कल्याणक कहते हैं । केवल ज्ञानकी प्राप्तिसे वे समस्त लोकालोकको प्रत्यक्ष देखने लगे । इस शुभ अवसरपर सबने उनकी पूजा

की । अब वे सर्वज्ञ हो गये । तीर्थकरोके प्रवचन मण्डप को समव-सरण कहते हैं । उसमें सभी जीव-जन्तु आपसी वैर-भावको छोड़कर भगवानका कल्याणकारी उपदेश सुनते हैं ।

तीर्थकर मुनि सुव्रतनाथके बडे गणधरका नाम विशाखा था । उन्होने भगवानसे धर्मोपदेश देनेकी प्रार्थना की और उन्होंने महाव्रत रूप मुनि धर्म और अणुव्रतरूप श्रावक (गृहस्थ) धर्मको बताया । ससारके जीवोंको अहिसा, सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और चोरी न करनेका उपदेश दिया । तीर्थकर मुनिसुव्रत नाथ माघसुदी तेरसके दिन पिछले पहर सम्मेद शिखरसे मोक्ष गये ।

: ३ :

राजा वसु और पर्वत-नारद विवाद

मुनि सुव्रतनाथका पुत्र सुव्रत काम, क्रोध, लोभ और मद आदि को वशमे करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको साधता हुआ राज्य करने लगा। फिर वह अपने पुत्र दक्षको राज्य सौप कर अपने पितासे जिन दीक्षा लेकर मोक्षको गया।

राजा दक्षकी रानीका नाम इला था। उनके एलय पुत्र और मनोहरी पुत्रीने जन्म लिया। वे पुत्र और पुत्री महा रूपवान और गुणवान थे। पर राजा दक्ष जैन धर्मसे विमुख होकर मिथ्या मार्गपर चलने लगा। इससे रानी इला अपने पुत्र एलयको साथ लेकर देश-देशान्तरमे घूमती हुई एक जगह पहुँची। वहा उसने एला वर्धन नगर बसाया। एलयने भी अग देशमे ताम्रलिप्त शहर बसाया और नर्मदा नदीके किनारे महिष्पती नगरी बसायी। राजा दक्षके बसाये हुए ये दोनो नगर बड़े सुन्दर और प्रसिद्ध थे।

राजा दक्ष अपने पुत्र कुणिमको राज्य सौंप कर तप करने बनमें चला गया। कुणिमने विदर्भ देशको जीता और नर्मदाके किनारे कुण्डलपुर नगर बसाया।

इस प्रकार इस वशमे अनेक राजा हुए। फिर इसी वशमें एक राजा अभिचन्द्र हुआ। अभिचन्द्रने विध्याचलकी पीठ पीछे वेदीपुर नगर बसाया और सुक्तिमती नदीके किनारे सुक्तिमती पुरी बसाई। राजा अभिचन्द्रका विवाह उग्रवशी राजाकी राजकुमारी वासुमती से हुआ था, जिससे वसु नामका पुत्र हुआ। राजा वसु बड़ा प्रसिद्ध राजा हुआ। उसके समयकी नीचे लिखी घटना भी प्रसिद्ध है।

मुक्तिमती पुरीमे शास्त्रोका पाठी एक प्रसिद्ध ब्राह्मण क्षीर-कदब रहता था । उसकी पत्नीका नाम स्वस्तिमती था । वह शास्त्र पाठी ब्राह्मण बहुत से शिष्योको विद्या पढाता था । यों तो उसके बहुतसे शिष्य थे, परन्तु उनमे तीन शिष्य मुख्य थे, जिनके नाम राजपुत्र बसु, क्षीरकदबका पुत्र पर्वत और ब्राह्मण नारद । गुरुने इन तीनों शिष्योको शास्त्रके रहस्यमे प्रवीण किया और इनको आरण्यक नामका शास्त्र भी पढाया ।

उस समय वहा आकाशगामी चारण मुनि आकाशमें बिहार करते थे । तब उन गुरु-शिष्योके पढने की ध्वनि सुनकर मुनिने अपने एक बडे ज्ञानी शिष्य मुनिसे पूछा, "इनमे एक गुरु है और तीन शिष्य हैं । इनमे से कौन स्वर्ग लोकको जायगे और कौन नरक जायगे ?" तब शिष्यने उत्तर दिया, "क्षीरकदब गुरु और नारद शिष्य स्वर्ग जायगे और राजपुत्र वसुदेव और अध्यापक पुत्र पर्वत नरक जायगे ।" मुनि तो तत्काल ही आगे चले गये पर गुरु क्षीरकदब मुनिके वचन सुनकर ससारसे भयभीत और विरक्त हो गया । गुरु क्षीरकदब अपने शिष्योको घर जानेकी आज्ञा देकर स्वयम् उन मुनियोको ढूढने बन चला गया ।

ब्राह्मणकी पत्नी स्वस्तिमतिने अपने पति क्षीरकदबके वापस न आनेपर चिन्तित होकर शिष्योसे पतिके न आनेका कारण पूछा । शिष्योने गुरुआनीको बताया कि गुरुजीने हमे घर जाने की आज्ञा देकर भेज दिया है और स्वयम् भी पीछे आते होंगे । यह उत्तर सुनकर स्वस्तिमतीको तसल्ली हो गई । पर जब एक दिन-रात बीतने पर क्षीरकदव घर न लौटा, तब उसकी पत्नी समझ गई कि अवश्य ही उसके पतिने जिन दीक्षा लेली होगी । वह बड़ी चिन्तित हुई और रात भर रोती रही । प्रात काल उसने अपने बेटे पर्वत और नारदको क्षीरकदबको ढूंढने बनकी ओर भेजा । बनमें फिरते-फिरते उन्होंने देखा कि क्षीरकदब महामुनिके निकट साधु बनकर शास्त्र पढ रहा है । गुरुका पुत्र पर्वत तो पिताको

साधु बना देखकर उलटे पांव मांके पास आगया और उसे सब हाल कह सुनाया। परन्तु नारदने अति विनयसे मुनि महाराज और अपने गुरु क्षीरकदबको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की। फिर उसने मुनि महाराजसे कुछ व्रत लिये और उन्हें नमस्कार करके लौट आया। नारद अपनी शोकातुर गुरुआनीको धैर्य बन्धाकर अपने स्थानपर चला गया। यह नारद बड़ा निर्मल चित्त था।

कुछ समय पश्चात् राजा अभिचन्द्रने संसारसे विरक्त होकर अपने पुत्र वसुको राज्य देकर जिन मुनिकी दीक्षा लेली और तप करने बनमें चला गया। राजा बसु राजनीतिमे बडा निपुण था और वह बडी कुशलतासे राजकार्यको चलाने लगा। राजा वसु कुछ प्रपची था। उसने स्फटिक मणिका एक ऊँचा सिहासन बनवाया और उस पर बैठा हुआ राजा बसु ऐसा लगता था, मानो कि वह सत्यके प्रताप से पृथ्वीसे अधर बैठा हो। इससे उसकी कीर्ति ससारमे फैल गई कि राजा अपने धर्मके प्रसादसे पृथ्वीसे अधर विराजते हैं। स्फटिक मणिके सिहासनका रहस्य किसीने नही जाना, उसके प्रपच-को लोगोने सत्य समझा।

राजा वसुके दो रानिया थी, एक इक्ष्वाकुवशकी राजकुमारी थी और दूसरी कुरूव शकी राजपुत्री। उनसे राजा वसुके दस पुत्र हुए, जो शास्त्र विद्यामे बड़े निपुण और राजप्रशासन कार्यमे बडे कुशल थे। ये दसो पुत्र राजकार्यमें पिताका अच्छी तरह हाथ बटाते थे।

एक दिन नारद गुरु प्रेम वश अपने शिष्यो सहित अपने गुरुके पुत्र पर्वत और गुरुआनी स्वस्तिमतीका सुख-समाचार जानने और कुशल-मगल पूछने उनके घर आया। पहले तो नारदने उसका और गुरुआनी स्वस्तिमतीका कुशल मगल पूछा, पर परस्पर कुछ बातचीतके बाद ही नारदने देख लिया कि पर्वतको अपनी विद्याका बड़ा अभिमान है। वह वेदार्थका भी व्याख्यान कर रहा

था। तभी वह नारदसे "अजैर्यष्टव्यं" इस वेद वचनका अर्थ करने लगा। उसने कहा, 'अजा बकरी का बेटा बकरा है। स्वर्गाभिलाषी द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य लोग उनका यज्ञ करे।"

नारद उसके मुँहसे ऐसा अयोग्य तथा पापपूर्ण अर्थ सुनकर कहने लगा, "विद्वान तथा भद्र पिताके पुत्र ऐसा अयोग्य, युक्ति-हीन तथा शास्त्रविरुद्ध अर्थ तूने कहा से सीखा? यह सम्प्रदाय विपरीत व्याख्या तेरे पास कहा से आई ? मेरा और तुम्हारा गुरु तो एक ही था और उसने सदा हमे धर्मका उपदेश ही दिया। हमारे गुरु क्षीरकदव तो अज शब्दका अर्थ तीन वर्षकी वह शालि अर्थात् जो है, जो बोने से न उगे, करते थे और उसका होम करने को कहते थे। यही अर्थ बडे पुरुष और विद्वान सदा करते आये हैं। फिर तू यह विपरीत पापपूर्ण व्याख्यान कैसे करता है ?"

नारदकी युक्तियुक्त तथा शास्त्रानुकूल बात सुनकर भी हठी तथा अभिमानी पर्वत अपने अर्थपर डटा रहा। जब दोनोमे इस अर्थपर वाद-विवाद बढ गया, तो पर्वतने कहा, कि यदि इस विवादमे तू जीते और मैं हारू तो मैं अपनी जिह्वाको छेद दू गा। नारदने विवादमे न पडनेको कहा, पर पर्वत नही माना। दोनोंमे यह निर्णय हुआ कि राजा वसुके सामने वे अपना-अपना पक्ष पेश करें और जो निर्णय वह दे, वह दोनोको मान्य होगा।

नारद तो अपने स्थानपर चला गया और पर्वतने सारी बात अपनो मासे कह सुनाई। स्वास्तिमती बडी विदूषी थी। वह अपने बेटेकी बात सुनकर बडी दुखी होकर उसकी निन्दा करती हुई कहने लगी, "तू विपरीत मार्गी है। तेरा पिता समस्त शास्त्रोंको जाननेवाला इस वाक्यका वही अर्थ करता था जो नारद करता है।"

पर्वतने माकी बात न मानी। उसने मांको राजा वसुके पास जाकर गुरु दक्षिणामें उसके पक्षमें निर्णय देनेको कहा। मां भी प्रातः राजा वसुसे अपने बेटेका पक्ष लेने को कहने गई। राजा-

ने गुरुआनीका बडा आदर किया और आने का कारण पूछा । तब उसने पर्वत और नारदके विवादकी सब बात राजासे कह सुनाई और गुरु दक्षिणा मागी । स्वास्तिमतीने राजासे कहा, "राजन् ! आप शास्त्रकी बात जानते हो । बात तो नारदकी सत्य है, परन्तु आप पर्वतका पक्ष लेकर उसके वचनको प्रमाणित करना, नारदके बचनको नही ।"

राजा वसुका बुरा होनहार था । उसने धर्म-अधर्म और न्याय-अन्यायपर दृष्टि न रखकर अपने कर्त्तव्यको भूलकर गुरुआनीको गुरुदक्षिणामे पर्वतका पक्ष लेने का वचन दिया ।

राजा वसुके दरबारमे पर्वत और नारद अपना विवाद लेकर राजाके निर्णयके लिए आये । राजा सिहासनपर बैठा था । सभामे मन्त्रियोके अतिरिक्त बडे-बडे विद्वान, वेदपाठी ब्राह्मण और कमण्डल-जटा धारी तपस्वी बैठे थे । पर्वत और नारद राजाको आशीर्वाद देकर सभामे अपने स्थानपर बैठ गये । फिर ज्ञान और आयुमे बडे विद्वान राजासे कहने लगे, "हे राजन् ! नारद और पर्वत दोनो पण्डित और शब्द शास्त्रके जाननेवाले आज अपना विवाद लेकर आपके सामने आये हैं । कुछ शब्दोके अर्थपर इनका मतभेद और विवाद है । आप भी वेदोके अर्थके ज्ञाता हैं । आप सभी सम्प्रदायोको जाननेवाले हैं । इस लिए आप इसके पक्ष-विपक्षकी युक्तिया सुनकर अपना निर्णय दे, जिससे सबको सत्य बात मालूम हो जाय ।"

राजा वसु तो पहले से ही पर्वतका पक्षपाती था । इसलिए पर्वतने बडे गर्वसे अपना पक्ष पेश किया । वह कहने लगा, "महाराज ! वेदोंमे अजका अर्थ बकरा है । ससारमे भी यही अर्थ प्रसिद्ध है । वेदोंमे कहा है कि स्वर्गका अभिलाषी जो "**अग्निहोत्रं जुह्यात्**" कहा है, उसका अर्थ भी "अग्नि मे होम करो है ।" इससे अजादिसे अजका होम है । यह वेदवाक्य है ।" फिर पर्वत कहने लगा, "पशुको अग्निमें होमने से महा दु.ख होता है—यह आशका नही करनी

चाहिये। मन्त्रके प्रभावसे पशुको पीडा नही होती। यज्ञसे प्रत्यक्ष सुखकी अवस्था होती है। इतना ही नही, जीव तो महा सूक्ष्म है। इसलिए वह अग्निमे नही पड़ता। मन्त्रोके प्रतापसे होममे जीव नही गिरता, जीव तो अमर है। देहके जो अग अग्निमे गिरते हैं, वे अपने-अपने देवताओंको जाते हैं। मन्त्रमें होम किये पशु स्वर्ग लोकके सुखको पाते है। जैसे यज्ञको करनेवाला बहुत काल स्वर्गमें सुख पाता है, वैसे ही ये पशु भी स्वर्गसुख भोगते हैं।" पर्वत अपने पक्षमे युक्तिया देकर अपने स्थानपर बैठ गया।

नारद भी बडा विद्वान, श्रावकके व्रतोको पालनेवाला और विचक्षण ब्राह्मण था। वह समस्त सभा और राजाको सम्बोधन करके कहने लगा, "आप सब बुद्धिमान हैं। मेरी बात सावधान होकर सुने। पर्वतने अन्याय रूप जो बात कही है, उसे आपने सुना है। मैं उसका खण्डन करता हू। अज शब्दके अनेक अर्थ हैं। इसका एक अर्थ करना व्यर्थ है। जैसे हरि शब्दके अनेक अर्थ इन्द्र, नारायण, सिह और मर्कट हैं, वैसे ही अज शब्दके भी कई अर्थ है। पर्वतने अज शब्दका जो बकरा अर्थ किया हैं, वह अर्थ यहा नही लगता। यहा अज शब्दका अर्थ वह तिवर्सा जौ है, जो बीज अकुर शक्तिसे रहित हो और न उगे, उसे अज कहते हैं। उससे ही होम करने को कहा गया है। भगवानकी पूजाका नाम यज्ञ है और पूजामे जीवधारी सामग्री नही पडती, अचित्त सामग्री ही पडती है। इस विधानसे किया होम स्वर्ग सुखको देनेवाला होता है, दूसरा नही। भगवान वीतराग देव मुक्तिमार्गके उपदेशक ससारसे सबको पार करनेवाले हैं। उसके अनन्त नाम ब्रह्मा, विष्णु, ईश, सिद्ध और बुद्ध आदि हैं। उसके प्रसादसे सबको सुख होता है। यज्ञोमे पशु होमने की बात तो दूर, आटेका पशु भी बनाकर उसकी होम न करना चाहिये। बुरे परिणामों अर्थात भावोसे पाप और अच्छे परिणामोंसे पुण्य होता है। और पर्वतने जो यह कहा कि मन्त्रके प्रभावसे पशुको दुःख नही होता,

यह भी ठीक नही है । दु खके बिना मृत्यु होता ही नही । जो मृत्यु है, वही दु.ख है ।" इससे आगे फिर नारदने पर्वतकी इस युक्ति "आत्मा सूक्ष्म् है, वह मरती नही," का खण्डन करते हुए कहा, "पर्वतकी यह युक्ति भी गलत है । आत्मा अविनाशी और अमूर्तिक है । न सूक्ष्म् है, न मोटी है । परन्तु शरीरके सम्बन्धसे आत्मा सूक्ष्म या स्थूल दोनो प्रकारकी होती है । जैसे दीपकका प्रकाश अपने स्थानके समान छोटा-बडा होता है, वैसे ही आत्मा अपने शरीरके समान छोटी-वडी होती है । चीवटीकी आत्मा और हाथी की आत्मा तो एक समान है, पर शरीरके अनुपातसे छोटी-बडी बन जाती है ।, आत्माके इस देहका वियोग ही उसका मरण है । इसलिए मन्त्र, तन्त्र, शस्त्र, विष और अग्नि आदिके योगसे इसकी देह छूटने से दुःख ही है । पर्वतने यज्ञका फल स्वर्ग बताया है । जीव की हिंसासे स्वर्ग कैसे मिल सकता है ? यदि हिंसा करनेवाले स्वर्ग जायगे, तो फिर नरक कौन जायगा ? सुखकी प्राप्तिका कारण धर्म है । और धर्म दया रूप है । पशुयज्ञ करनेवाले को न दया है, न धर्म ।"

इस तरह नारदने पर्वतकी सभी युक्तियोका खण्डन कर दिया । सभामे दोनो विद्वानोंके वाद-विवादको सुनने और उसकी परीक्षा करनेवाले धुरधर विद्वान बैठे थे । उन्होने राजा वसुसे पूछा, "हे राजन् ! आपने क्षीरकदबसे इस वाक्यकी जो व्याख्या सुनी हो, उसके अनुसार अपना निर्णय दे ।" पर वह मूर्ख दुष्ट बुद्धि पक्षपाती राजा वसु गुरुके सत्य वचनको जानते हुए भी कहने लगा "हे सभाके विद्वान सदस्यो ! नारदने जो कहा है, वह तो युक्तिपूर्ण है, परन्तु पर्वतने जो कुछ कहा है, वह गुरुकी आज्ञाके अनुसार प्रमाण रूप है । राजाके मुखसे ऐसे पक्षपातपूर्ण निर्णयके निकलते ही राजाका स्फटिक सिहासन पृथ्वीमे धस गया और राजा वसु पाताल में गड़ गया । सच है पापसे पतन ही होता है । ऐसा अन्यायपूर्ण निर्णय देने से राजा वसु सातवे नरकको गया । यदि ऐसा पक्षपाती अन्यायी राजा नरक न जाय, तो और कौन जाय ? जनता भी

"हाय ! हाय ! और धिक्कार-धिक्कार" कहने लगी। उसने महा दुष्ट पर्वतको धिक्कार देकर नगरसे निकाल दिया। समस्त जनता-ने सत्यवादी निष्कपट नारदकी दिल खोल कर प्रशसा की।

इसके बाद सभी विद्वान और नारद आदि अपने-अपने स्थानोको चले गये।

पण्डित पर्वत सुक्तिमती पुरीसे निकाले जाने के बाद अनेक स्थानोमे घूमता-फिरता एक स्थानपर पहुचा। वह जनताके हाथो अपने निरादर और अपमानको न भूल सका। सयोगसे उसकी भेट महा काल नामके एक क्षुद्र देवसे हुई। इस देवके परिणामो और स्वभावमे निर्दयता और जीवोसे द्वेष भरा हुआ था। उसका भी पतन हुआ था। जैसा वह था, वैसा ही उसे पर्वत मिल गया। उन दोनोमे शीघ्र मित्रता हो गई। उन दोनोने मिलकर हिसा-का शास्त्र बनाकर हिसाका उपदेश दिया। इस हिसा पापके फलस्वरूप पर्वत सातवे नरकमे गया, जहा राजा बसु पहले ही पहुच चुका था। इस प्रकार दोनो वहा मिल गये। पापी पापका प्रत्यक्ष फल पाते हैं, फिर भी वे पापको नही छोडते। दूसरे आदमी भी उनसे कम शिक्षा प्राप्त करते हैं।

नारद अपने धर्मकार्यके फलसे स्वर्ग मे गया। नारदके समान सबको धर्मके काममे सदा सावधान रहना चाहिये।

: ४ :

राजा अंधकवृष्टिके जन्म-जन्मान्तरकी कथा

पहले बताया गया था कि राजा वसुकी दो रानियोसे उसके दस पुत्र हुए थे, जो राजकाजमे राजाको सहायता देते थे। इनमें दसवे पुत्रका नाम वृषध्वज था। वह मथुरामे जाकर राज्य करने लगा। इसके बशमे अनेक छोटे-बडे राजा हुए। वे सब राजा बीसवे तीर्थंकर मुनिसुव्रत नाथके तीर्थमे हुए। फिर इक्कीसवे तीर्थंकर नमिनाथ हुए। उनके समयमे हरिवशमे राजा यदु बड़े प्रसिद्ध राजा हुए थे, और उसका वश जगतमे यदु वश नामसे विख्यात हुआ। इस राजाका पुत्र नरपति हुआ। उसके दो पुत्र शूर और सुवीर राजा हुए। वे दोनों भाई बडे शूरवीर थे। बडे भाई शूरने छोटे भाई सुवीरको मथुराका राज्य सौप कर स्वयम् कुसमय्य देशमें शौर्यपुर नगर बसाया। राजा शूरके अन्धकवृष्टि आदि कई पुत्र हुए। और मथुराके राजा छोटे भाई सुवीरके भोजक वृष्टि आदि महा योद्धा पुत्र हुए। कुछ वर्षोके पश्चात् राजा शूर अपने ज्येष्ठ पुत्र अन्धकवृष्टिको और राजा सुवीर अपने पुत्र भोजक वृष्टिको राज सौप कर एक महामुनि सुप्रतिष्ठित स्वामीके पास साधु बन गये। राजा अन्धक वृष्टिके घर सुभद्रा रानीसे दस पुत्र हुए, जिनमें से बडे पुत्रका नाम समुद्रविजय था। राजा अन्धकवृष्टि-के दो राजकुमारिया कुन्ती और माद्री हुई। राजा सुवीरके पुत्र भोजक वृष्टिके हा रानी पद्मावतीसे तीन पुत्र हुए। यह राजा वसुके दसवें पुत्र वृषध्वजका विस्तार कहा। इसी प्रकार राजा वसुके नौ बेटोंके वंश फैले।

महा मुनि सुप्रतिष्ठित रमते-रमते शौर्यपुर नगरके उद्यानमे

एक पहाड़ीपर आविराजे। जब वे रातके समय वहा तप कर रहे थे, तब सुदर्शन नामके एक यक्ष देवने अपने पूर्व जन्मके बैरके कारण मुनि सुप्रतिष्ठितको आग, हिम और मेघपातसे बड़े कष्ट दिये, पर महा मुनिने उन सब कष्टोको बडी शान्तिसे सहन कर लिया। इस तपसे उनके कर्मोंका विनाश हो गया और उन्हें केवल ज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया। इसपर जगतमे बडा हर्ष हुआ।

शौर्यपुरका राजा अन्धकवृष्टि सपरिवार केवल ज्ञानी सुप्रतिष्ठित महा मुनिके दर्शनके लिए उद्यानमे आया और उनसे धर्म उपदेश सुना। अपने उपदेशमे उन्होने मुनियों और गृहस्थोके धर्मका स्वरूप बताया। फिर राजा अन्धक वृष्टिने उनसे अपने पूर्व जन्मोका वृत्तान्त पूछा। केवल ज्ञानी सुप्रतिष्ठित मुनि राजाके पूर्व जन्मोका बडा रोचक हाल उनसे कहने लगे, "हे राजन्! अयोध्यामें राजा रत्नवीर्य राज करते थे। उसके राजमे सुरेन्द्रदत्त नामका एक सेठ था। यह कहानी बहुत पुरानी पहले तीर्थंकर आदिनाथ-के बादकी और दूसरे तीर्थंकर अजितनाथके जन्म लेने से पहले की है। सेठ सुरेन्द्रदत्तके धनका पार न था। वह जैन धर्मका पक्का अनुयायी था। उस सेठका मित्र रुद्रदत्त नामक ब्राह्मण था। वह सेठ अष्टमी, चौदश, दूसरे पर्वो पर और वर्षाकालके चातुर्मास मे पूजा आदि पर बडा खर्च करता था।

"एक बार जब वह सेठ व्यापारके लिए विदेश गया, तो उसने अपने मित्र रुद्रदत्तको बारह वर्षके लिए पूजा आदि के खर्चके लिए प्रर्याप्त धन दे दिया। रुद्रदत्तने जूवे, और भोग-विलास आदि में सब धन नष्ट कर दिया और सेठके कहे अनुसार पूजा आदि मे कुछ भी खर्च न किया। जब रुद्रदत्तने समस्त धनको नष्ट कर दिया तो वह अपने व्यसनोको पूरा करने के लिए चोरीसे धन लाने लगा। कोतवालने उसे कई बार पकड़ा और छोड़ा। फिर

वह उल्कामुख वनमें जाकर डाकू-भीलोंमें मिलकर उनके साथ बड़े डाके डालने लगा। उसने जनताको बड़े कष्ट दिये। उसके डाकोसे सब जगह हाहाकार मच गया। अयोध्याके राजाके सेनापति अश्रेणिकने बहुतसे भील-डाकुओको मार दिया, जिनमें वह रुद्रदत्त ब्राह्मण भी मारा गया। इस प्रकार सेनापतिने जनताको डाकुओंके कष्टसे छुटकारा दिलाया।

"पूजाके लिए दिये गये मित्रके धनको व्यसनादि मे नष्ट करने के पापके फलस्वरूप रुद्रदत्त मर कर सातवे नरकमे गया। नरकमे कष्ट भोगकर वहा से मरकर फिर अपने अनेक पापकर्मोके फलस्वरूप पशुगतियोमे गया। एक पाप ही जीवको बडा कष्ट देता है, पर जब जीव अनेक महा पाप करता है, तो उनका कष्ट तो उसे बडे काल तक भोगना पडता है।

"रुद्रदत्तका जीव अपने पाप कर्मोका फल भोगकर अपने किसी अच्छे कर्मके पुण्योदयसे हस्तिनापुरमें कापिष्टवायन ब्राह्मणके घरमे उसकी अनुमती स्त्रीसे गौतम नामका पुत्र हुआ। बाल्यावस्थामे ही गौतमके माता-पिता मर गये और उसने बड़े कष्ट झेले। उसे खाने तक के लाले पड गये और वह भिक्षा माग कर अपना पेट भरने लगा। भिक्षाके लिए घूमते-घूमते एक दिन उसे नगरमे समुद्रदत्त नामके मुनि मिले। गौतम भी उनके पीछे-पीछे होलिया और उनके आश्रममे पहुच गया। गौतमने मुनि समुद्रदत्तसे हाथ जोड विनती की, 'हे नाथ! मुझे भी अपने जैसा बना लो और मेरा उद्धार करो।" मुनिको उस पर दया आगई और उसने यह समझकर कि अब उसके अच्छे दिन आये हैं, उसे भी मुनि-दीक्षा दे दी। गौतम अब जी-जानसे घोर तप करने लगा। गुरु समुद्रदत्त और शिष्य मुनि गौतमने अपने तपके फलसे स्वर्गमे जन्म लिया।"

महामुनि सुप्रतिष्ठित कहने लगे, "हे राजन् अधकवृष्टि! गौतममुनिका जीव तो तू है और मैं तेरे गुरु समुद्रदत्त मुनिका जीव हूं।"

अपने पहले जन्मोका वृत्तान्त सुनकर, राजा अन्धकवृष्टिने अपने दस पुत्रोंके पूर्व जन्मोकी बात भी सुप्रतिष्ठित मुनिसे पूछी।

महामुनि सुप्रतिष्ठितने कहा, 'हे राजन् ! अब तू अपने दस पुत्रोंके पूर्व जन्मको बात भी सुन। भद्रलपुर नगरमे राजा मेघरथ अपनी रानी सुभद्रा सहित रहता था। उसका दृढरथ पुत्र था। उसी नगर मे धनदत्त सेठ भी अपनी पत्नी नन्दयशा सहित रहता था। सेठके दो पुत्रिया सुदर्शना और सुज्येष्ठा थी और नौ पुत्र थे।

" एक दिन उस नगरमे एक मुनि स्वामी सुमन्दिर आ गये। उनके उपदेशके प्रभावसे राजा मेघरथ और सेठ धनदत्त अपने नौ बेटो सहित सब साधु बन गये। मुनिके सघमें सुदर्शन आर्यिका भी थी। उससे रानी सुभद्रा और सेठकी दोनो बेटियो सुदर्शना और सुज्येष्ठाने भी दीक्षा ले ली। सेठानी नन्दयशा उस समय गर्भवती थी। इसलिए उसने दीक्षा न ली। उसके धनमित्र पुत्र हुआ। फिर वह भी साध्वी बन गई। एक दिन अपने नौ पुत्रोंको साधुवेश मे ध्यान करते देखकर साध्वी नन्दयशाको बडी प्रसन्नता हुई। धर्म स्नेहसे उसने ऐसी भावना की, कि अगले जन्ममे भी ये मेरे पुत्र हो। सुदर्शना और सुज्येष्ठा दोनो साध्वियोने भी उनको देखकर यही चाहा, कि अगले जन्मने सब हमारे भाई हो। तप करने के बाद ये बारह जीव अर्थात मा, दो पुत्रिया और नौ पुत्र एक ही स्थान पर जन्मे।"

महामुनि सुप्रतिष्ठतने आगे कहा, "हे राजन् अन्धकवृष्टि ! फिर आगे जन्म लेने के पश्चात् नन्दयशाका जीव तो तेरी रानी सुभद्रा हुई और नन्दयशाकी दोनो पुत्रिया सुदर्शना और सुज्येष्ठा-के जीव तेरी राजकन्याए कुन्ती और माद्री हुई और नन्दयशा के नौ पुत्रोके जीव तेरे समुद्रबिजयादि नौ पुत्र हुए हैं।"

इस प्रकार इन बेटे-बेटियोके पूर्वजन्मकी बात सुनकर

राजा अन्धकवृष्टिने उत्सुकतासे अपने दशवें पुत्र वसुदेवके पूर्वजन्मकी कथा मुनि सुप्रतिष्ठतसे पूछी।

मुनि सुप्रतिष्ठित कहने लगे, "हे राजन्! इस संसारमें मनुष्य देह पाना बड़ा कठिन है। वसुदेवका जीव मगध देशमे सालिग्राममें एक अति दरिद्री ब्राह्मणके घर पुत्र हुआ। उसका नाम नन्दिसेन रखा गया। जब वह गर्भ मे आया, उसके पिताका देहान्त हो गया और बाल्यावस्थामे ही उसकी मांकी मृत्यु हो गई। यह अनाथ हो गया। उसकी मावसीने उसको पाला। दुर्भाग्यबश आठ वर्षकी आयुमें उसकी मावसी भी चलती बनी। इस प्रकार उस बच्चेको थोड़ा-सा भी सुख न मिला। फिर वह बालक अपने मामाके घर राजगृहमे आ गया और उसकी मामीने उसका प्रतिपालन किया। अनाथ जीवनने इस लड़केका हाल-बेहाल कर दिया। महा मलीन और दुर्गधपूर्ण शरीर। रुखे-सूखे बिखरे बाल, मैले-कुचैले वस्त्र। उसके गाल पिचके-पिचके और आखे पीली-पीली अन्दरको धसी हुई। उसके मामाका नाम दमरक्त था। दमरक्तकी एक लड़की थी। जब यह लड़का नन्दिसेन और दमरक्तकी लड़की कुछ बड़े हुए, तो उस लड़केने अपने मामाकी लडकीसे विवाह करने की बात कही। लडकीको इस मलीन दुर्गधपूर्ण लडकेसे पहले ही घृणा थी। विवाहकी बात सुनकर तो उसने उस लडकेको घरसे ही निकलवा दिया। उसके मनमे अपने जीवनसे बड़ी ग्लानि हुई। अपने दूर्भाग्यकी आगसे जलता हुआ वह गिरकर आत्मघात करने के लिए वाभार पर्वतपर चढ़ गया।

"वहां पर्वतपर एक महामुनि अपने शिष्य मुनियों सहित तप कर रहे थे। उन शिष्योंमें शख और निर्नामिक दो मुनि थे। मुनिने शंख और निर्नामिकको इस लडकेकी तरफ संकेत करते हुए कहा, "देखो, यह लड़का अगले जन्ममें तुम्हारा पिता होगा।" इस पर शंख मुनिने उसे गिरने और आत्महत्या करने से रोका और

धर्मका उपदेश दिया। फिर शख उसे अपने गुरूके पास ले गया। गुरुने उसे तसल्ली देते हुए निराशाको छोड़कर अपने जीवनको सुधारने का उपदेश दिया। गुरके उपदेशको सुनकर इसने अपने जीवनको सुधारने की ठानी। इसने धर्म-अधर्मको सुनकर गुरुसे चरित्रपालनके व्रत लिये। नदिसेनने जैसा कठोर तप किया, वैसा तप कम ही आदमी कर सकते हैं। वह भूख-प्यास, गर्मी-सरदी, डांस-मच्छरके और तरह-तरहके कष्ट सहने लगा। मुनि सघमें मुनिसे लेकर आचार्य तक जो अनेक पद धारी साधु थे, उन सबकी सेवा वह दिन रात करता। साधुओकी सेवा-सुश्रुषा ही उसका कर्म बन गया। साधुओकी इस सेवाको ही शास्त्रोमें वैयावृत कहा गया है। इस वैयावृतको बडा तप माना गया है। रूग्न साधुओकी सेवा करना आसान काम नही है। बिना घृणा उनके मल-मूत्रको उठाना और घाव आदिको साफ करना भी वैयावृतमे आते हैं। सेवासे मेवा मिलती है। वैयावृत तपसे नन्दिसेनको महा लब्धि प्राप्त हुई, अर्थात् जो कुछ वह सोचे वही उसे मिल जाय। लब्धि प्राप्त होने पर भी नन्दिसेनने इस वैयावृतको न छोड़ा। इसके वैयावृत की चर्चा मध्यलोक और इन्द्रलोक तक में होने लगी। एक दिन इन्द्रने सभामे नन्दिसेनके वैयावृतकी बडी प्रशसा की। इन्द्रने कहा कि जो गृहस्थ होकर दूसरोकी हर प्रकार सेवा करता है, वह बडा है। और नन्दिसेन तो साधु होकर भी मुनि-साधुओंकी खूब सेवा करता है। इस लिए वह प्रशसनीय है। नन्दिसेनकी प्रशंसा सुनकर एक देव उसकी परीक्षा करनेके लिए मध्य लोकसे नन्दिसेनके पास आया। देवने कहा, "हे मुनि नन्दिसेन ! मैं पीडासे ग्रस्त हूँ, रूग्न हूँ। मुझे रोगमुक्त करो। मुनि नन्दिसेनने गृहस्थोको कहा कि इसको भोजनमें बढिया चावल, मूंगकी दाल, दूध और घी दो। वह रोगी देव उस भोजनको न पचा सका और आश्रममे नन्दिसेनके निकट आकर उसने सब खाया-पिया वमन कर दिया। उसका समस्त शरीर गन्दा हो गया। पर नन्दिसेन मुनिने जरा भी घृणा या संकोच

किये बिना उसके समस्त शरीरको धोया और अपने हाथोसे साफ किया। देवने देखा कि इन्द्रने जैसा कहा था, नन्दिसेन उससे भी बड़ा वैयावृती है, सेवा धर्ममें प्रबीण है। देवने कहा, "हे ऋषीश्वर ! वैयावृतमें आप अद्वितीय हो। आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ।"

" वह देव इस प्रकार मुनि नन्दिसेनकी प्रशसा और नमस्कार करके वापिस देवलोक चला गया।

"नन्दिसेन घोर तप करके और अन्तमें छह महीने आहार आदि सब कुछ छोडकर स्वर्गमें गया। वहां से आकर यह जीव तेरे हां सुभद्रा रानीसे तेरा दसवा पुत्र हुआ है।"

राजा अन्धकवृष्टि इस प्रकार महा मुनि सुप्रतिष्ठितसे अपने बेटोके जन्म-जन्मान्तरकी कथाए सुनकर अपने राज भवनमें लौटा। उसके मनमे विरक्तिके भाव पैदा होगये। अपने वशके पूर्व-गामी राजाओके समान उसने भी युवराज समुद्रविजयको राज सौप दिया और वसुदेवको उसके सरक्षणमे छोड़ दिया। फिर राजाने महा मुनि सुप्रतिष्ठितके पास आकर उनसे दीक्षा ली और साधु बन गया। जिस प्रकार अन्धकवृष्टिने सौर्यपुरका राज त्यागा, वैसे ही उसके छोटे भाई भोजक वृष्टिने मथुराका राज्य उग्रसेनको सौप कर मुनिके महाव्रत धारण किये।

राजा समुद्रविजय पटरानी शिव देवी सहित सौर्यपुरपर राज्य करने लगा। उसके राजमे सभी सुखी थे। वह अपने छोटे भाईयोंको सब प्रकार से योग्य बनाने लगा। छोटे भाई भी उससे बड़े प्रसन्न थे।

: ५ :

वसुदेवका चरित्र

गौतम गणधर राजा श्रेणिकको वसुदेवका चरित्र कहने लगे, "हे राजा श्रेणिक ! सौर्यपुरमे राजा समुद्रविजयने राज करते समय अपने नौ छोटे भाईयोंमे से आठके विवाह कर दिये । वसुदेव का विवाह नही किया । वसुदेव शहरमे चारों तरफ रूप बदल-बदल कर घूमता रहता था । उसके रूप-सौन्दर्यकी कोई सीमा न थी । उसके साथी भी सभी रूपवान थे । वे सब जिधर जाते उधर ही स्त्री-पुरुष उन्हे देखते रह जाते । उनके इस तरह नगरमें घूमते रहने से जनताके घरोके सब काम ठप्प हो गये, क्योकि स्त्रियाँ और बालक अपने सभी कामोको छोडकर उन्हे देखने लगते । इस पर सौर्यपुरके कुछ मुखिया राजा समुद्रविजयके पास आकर निवेदन करने लगे, "हे राजन् ! आपके राजमे हम सभी प्रकारसे सुखी हैं! धन, धान्य और व्यापार आदिकी वृद्धि है । हमें किसी बातकी कमी नही है । पर हम आपसे अभय मागते हैं ।" राजाने सबसे बडे मुखियासे बिना सकोच और भयके अपनी बात कहने को कहा । तब सबसे बडे मुखियाने कहा, "हे राजन् ! वसुदेव अति सुन्दर और रूपवान है । जब वह शहरमे घूमने निकलता हैं, तब हमारी स्त्रिया अपने सब कामोंको छोड़कर उसे देखने लगती हैं, घरके सब काम-काज चौपट हो गये हैं । कुछके तो मन भी चलायमान हो जाते है । वसुदेव सुचरित्रवान है, उसमें कोई दोष नही । पर जैसे सूर्यको किसीसे द्वेष नही, पर उसकी गर्मीसे पित्तकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही यद्यपि कुमारमें कोई विकार नही है, पर उसके रूप-लावण्यके अतिशयसे स्त्रियोका चित्त चलायमान होजाता है । अब आप जो

उचित समझें करे, जिससे कुमारको सुख मिले और नगरकी व्याकुलता मिटे।"

"राजाने मुखियाओको वसुदेवको समझाने का आश्वासन देकर विदा कर दिया और फिर जब वसुदेव बडे भाईके पास आया, तब राजाने उसे अपने खाने-पीने की सुध रखने और बाहर न घूमते रहने को समझाया। राजा उसे अपने साथ अपनी रानीके पास ले गया और महलके उद्यानमें ही घूमने को कहा। वसुदेवने भाईकी बात मानकर बाहर घूमना-फिरना बन्द कर दिया और महल तथा उद्यानमे रहकर आनन्द मनाने लगा।

" एक दिन रानीकी कुब्जा नामकी एक दासी रानीके लिए सुगन्ध आदि लिये जा रही थी। वसुदेवने उससे वह सुगन्ध छीनली। तब वह क्रोधसे वसुदेवको ताना देती हुई कहने लगी, "तुम्हारी इन्ही चेष्टाओके कारण तो राजाने तुम्हे यहा महलमे बन्दी बना रखा है, तुम्हारा बाहर आना-जाना सब बन्द है। लोगोकी शिकायतपर ही राजाने तुम्हे यहा बन्द कर रखा है।" दासीकी यह बात सुनकर वसुदेव उदास होकर भाईसे छुटकारा पाने को तैयार होगया। वसुदेव एक नौकरको साथ लेकर छलसे रातके समय मन्त्र सिद्ध करने के बहाने घरसे निकल गया व एक मसान भूमिमे गया। वसुदेवने नौकरको तो एक जगह बिठा दिया और स्वय मसानमें कुछ दूर जाकर बैठ गया। फिर उसने एक मृतकको अपने वस्त्र और आभूषण पहिना दिये और वसुदेवने उस मृतकको आगमें डाल दिया। वसुदेवने नौकरको सुनानेके लिए जोर-जोर से कहा, "राजा निष्कपट है, वह मेरे पिता समान है। वह सुख से रहे। नगरके लोग भी सुखी और सन्तुष्ट रहें। जो हमारे शत्रु हैं वे भी सुखी रहें। हम तो अग्निमें प्रवेश करते हैं।" यह कहकर वसुदेवने दौड़कर नौकरको ऐसा दिखाया, मानो वह स्वय अग्निमे प्रवेश कर रहा है। फिर वसुदेव वहां से छिप कर निकल गया। नौकरने समझा कि वसुदेव-

ने अग्निमें प्रवेश करके प्राण त्याग दिये। नौकर भागा-भागा शहर राजा समुद्रविजयके पास आया और सब हाल राजाको कह सुनाया। प्रातः काल ही राजा अपने भाइयों, राजदरबारियो और शहरके लोगोंको साथ लेकर रोते-रोते मसानमे वसुदेवकी चिताकी ओर आया। वहा भस्ममे वसुदेवके आभूषण आदि देख कर राजाने समझा कि वसुदेव अवश्य ही जल कर मर गया है। तब उसने बहुत रोते-रोते भाईकी अन्तिम क्रियाए की और पश्चाताप किया।

"वसुदेव ब्राह्मणका भेष भर कर पश्चिमकी ओर चल पड़ा। आगे जाकर स्वेदपुर नगर निवासी सुग्रीव नामके गधर्व विद्याके आचार्यसे सगीत कला सीखने लगा। सुग्रीव भी उसके रूपको देखकर उसपर मोहित होकर उसे दिलसे सगीत विद्या सिखाने लगा। उसकी दो लडकिया सोमा और विजयसेना गधर्व विद्यामें बडी निपुण थी। उनके पिताकी यह प्रतिज्ञा थी, कि जो नवयुवक इन्हे गधर्व विद्यामें जीतेगा, उससे उनका विवाह करेगा। वसुदेवने दोनों लडकियोंको सगीतमे पराजित करके उनसे विवाह किया और ससुरालमे ही बडे आनन्दसे रहने लगा। वसुदेवकी दूसरी पत्नी विजयसेनासे अक्रूर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर वसुदेव वहासे अकेला ही बिना किसीको कुछ कहे-सुने चला गया। वसुदेव शूरवीर और गुणवान था। उसे कही भी जाने मे डर न था।

"घूमते-घूमते वह एक सरोवरके किनारे आया। सरोवरमें उसने खूब क्रीडाए की और किनारे बैठकर जल तरग और मृदंग बजाये। बाजोकी मधुर ध्वनि सुनकर एक जगली हाथी जाग उठा और उसने वसुदेवपर आक्रमण किया। परन्तु वसुदेवने उसे शीघ्र वशमे कर लिया और उसके कुम्भ स्थल पर जा बैठा।

"तब वसुदेवके मनमे विचार आया, कि जंगलमें मेरे इस पराक्रमको कौन देखेगा ? यदि मैं यही वीरताका काम सौरपुरमें करता, तो सारे नगरमे मेरी प्रशंसा होती। तभी दो विद्याधर वहां

आकर वसुदेवको हाथीके मस्तकपर से उठाकर ले उडे । उन विद्याधरोंके नाम अर्चिमाली और वायुवेग थे । उन्होने कुजरावर्ती नगरके बाहर एक वनमें अशोक वृक्षके नीचे वसुदेवको उतारा । फिर उन्होंने वसुदेवको नमस्कार करके कहा, "स्वामिन्, यहाके राजा अशनिवेग विद्याधरकी आज्ञासे हम आपको यहा लाये हैं । उस राजाके एक सुन्दर पुत्री है। राजा उस पुत्रीका विवाह आपसे करेगा । यह कहकर एक विद्याधर तो वसुदेवके पास ही रह गया और दूसरा विद्याधर राजाको वसुदेवके लाने का समाचार सुनाने शहरमे चला गया । राजाके पास जाकर विद्याधरने वसुदेवके रूप, यौवन और वीरताकी प्रशसा की । राजाने उस विद्याधरको यह काम करने और शुभ समाचार सुनाने पर बडा पुरस्कार देकर विदा किया और स्वय बनमे जाकर वसुदेवको बडे आदर-मानसे नगरमे लाया । एक दिन शुभ महूर्तमे उसने वसुदेवसे अपनी श्यामा पुत्रीका विवाह कर दिया । विवाहके बाद वसुदेव और श्यामा बडे आनन्दसे वही विवाहित जीवन बिताने लगे । श्यामाने यह सोचकर कि उसके पतिको वीणा सगीतसे बडा प्रेम है, उसने सप्तश तत्री वीणा बजाई, जिसे सुनकर वसुदेवने बहुत प्रसन्नतासे उसे कोई वर माँगनेको कहा । श्यामाने अपने पतिसे यह वर माँगा, कि दिन-रात कभी भी वह उससे अलग न रहे । श्यामाकी यह बात सुनकर चचल और घुमक्कड़ स्वभाववाले वसुदेवने आश्चर्यसे इसका कारण पूछा ।

श्यामाने पतिसे कहा, "हे प्राण प्यारे ! इस वर मांगने का एक कारण है । अगारक नामका एक वैरी है । वह मौका पाकर तुम्हें ले उड़ेगा । इस बातकी भी एक कथा है, जिसे आप सुने । किन्नरगीत नगरमे विद्याधरोंका राजा अर्चिमाली अपनी प्रभावती रानी सहित रहता था । उस राजाके दो पुत्र ज्वलनवेग और अशनिवेग थे । राजा बड़े पुत्रको राज्य और प्रज्ञप्ति विद्या और छोटे पुत्रको युवराज

पद देकर स्वामी अरिन्द मुनिसे दीक्षा लेकर साधु बन गया । राजा ज्वलनवेगके रानी विमलासे अंगारक पुत्र हुआ और अशनिवेगके रानी सुप्रभाके मे श्यामा पुत्री जन्मी । कुछ समय बाद राजा ज्वलनवेग अपने छोटे भाई अर्थात् मेरे पिता अशनिवेगको राज्य और अपने पुत्र अगारकको युवराज पद और प्रज्ञप्ति विद्या देकर स्वयम् मुनि बन गया । अगारकको यह व्यवस्था पसन्द न आई । उसने युद्धमें मेरे पिताको जीतकर राज छीन लिया । मेरा पिता राजभ्रष्ट होकर जरावर्त पट्टनमे है । हे प्राणपति ! मेरा पिता बडा चिन्तित ऐसे रहने लगा, जैसे पिजरेमे पक्षी रहता है । एक दिन मेरा पिता कैलाग पर्वतपर गया जहा उन्हें अगिरि नामके त्रिकाल-दर्शी चारण मुनिके दर्शन हुए । उनको नमस्कार कर मेरे पिताने उनसे पूछा, "हे नाथ! मेरा पूर्व राज्य स्थान मुझे कैसे हाथ आयेगा?" तब मुनिने उससे कहा, "तेरी पुत्री श्यामाके पति द्वारा तुम्हे तुम्हारा राज्य प्राप्त होगा ।" फिर मेरे पिताने मुनि महाराजसे पूछा, "मेरी पुत्रीका पति कौन होगा और वह कहा है ?" तब साधुने उत्तर दिया, "जो युवक अलावर्त सरोवरके किनारे मस्त हाथीको वशमे करेगा, वह तेरी पुत्रीका पति होगा । मुनिका यह उत्तर सुनकर मेरे पिताने उस दिनसे दो विद्याधर मस्त हाथीको जीतनेवाले नव-युवकको लाने के लिए उस सरोवरके पास नियत किये । ये विद्याधर आपको देखने के बडे अभिलाषी थे, इसलिए आपको देखते ही वे आपको ले आये और सब मनोरथ सिद्ध हो गये । मुनियोंके बचन कभी अन्यथा नही जाते । यह बात मेरे ताऊके लड़के और मेरे पिताके राज्यको छीननेवाले अगारकने भी अवश्य सुनी होगी । वह क्रोधसे अग्निके समान जल रहा है । वह बड़ा कपटी है और महा विद्याके बलपर उद्धत है । आपको आकाश गामिनी विद्या आती नही । मैं उस विद्याको जानती हूं । इसलिए मेरे बिना अकेले मत रहना, वरना अगारक मौका देखकर तुम्हें उडा ले जायगा ।" अपनी पत्नी श्यामाके ये बचन सुनकर राजा वसुदेवने उससे कहा

कि हम तुम्हारे बिना कभी अकेले न रहेंगे । इसके पश्चात् वे दोनों पति-पत्नी आनन्दसे सावधानतापूर्वक रहने लगे । वसुदेवने श्यामा-को गन्धर्व विद्या सिखाना भी आरम्भ कर दिया । होनहार बलवान होती है । एक रातको बहुत समय गये वसुदेव और श्यामा सो गये । उस समय शत्रु अगारकने आकर वसुदेवको श्यामाके पाससे उडाकर आकाशमें ऐसे ले उडा जैसे गरूड नागको ले उड़ता है । जब वसुदेवको चेतनता आई तो वह समझ गया कि उसे कोई आकाशमें उड़ाकर ले जा रहा है । वसुदेवने उससे उसका नाम और उड़ाकर लेजाने का कारण पूछा । वह समझ गया कि यह अगारक ही होगा । वसुदेवने उसे मारनेके लिए मुट्ठी बाधी, पर यह सोच कर उसे न मारा कि इससे तो दोनो नीचे गिर जायेगे । इतनेमे श्यामाकी आखे खुल गई । वह पतिको अपने पास न पाकर समस्त बात समझ गई । झट से वह एक हाथमे खडग और दूसरेमे ढाल लेकर अपनी आकाशगामिनी विद्याके बलसे अगारक और वसुदेवके पास पहुच गई । उस समय श्यामाका तेज, वीरता और पराक्रम देखने योग्य थे । उसने ललकार कर कहा, "हे दुराचारी ! हे चोर ! निर्लज्ज ! निर्दयी विद्याधर ! तु खड़ा रह । तू मेरे जीते जी मेरे प्राणनाथको क्यों हरता है ? तू हमारा राज्य छीनकर भी तृप्त न हुआ । सदा हमे दुःख देने में उद्यमी रहा है । आज तुझे बहुत दिनोंमें देखा है । अब मेरे आगे से जीते जी कैसे जायेगा ? मैं आज तुझे नही छोड़ूँगी । ऐसा कहकर वह म्यानसे तलवार निकाल उसके सिरपर आई । तब वह वैरी अपनी रक्षा करता हुआ कहने लगा, "हे श्यामा ! स्त्रीको मारने मे बड़ा पाप है । इसलिए पापिनी परे हट । प्रथम तो तुम स्त्री जाति हो, दूसरे मेरे चाचाकी बेटी हो । मैं तुम्हे कैसे मार सकता हूँ ? मेरे हाथ तुझे मारने को नही उठ सकते ।" इस पर श्यामा कडककर बोली, "कौन भाई, कौन बहन ? जो अपना शत्रु हो, उसे मारने में अपयश नही । सिंहनी और व्याघ्री भी स्त्री जातिकी हैं, परन्तु जब वे किसी सामन्तपर भी आक्रमण करती हैं, तो वह भी उनको

मारने को तैयार होजाता है। इसलिए तू वृथा ही न्यायकी बात कहता है। जो तेरेमें सामर्थ्य और शक्ति है, तो मेरेपर शस्त्र चला। तू हमारा वैरी है, मेरे पिताका शत्रु है और मेरे पतिका अपहर्ता है।" ऐसा कहकर श्यामाने उसका मार्ग रोक लिया। तब उसने श्यामापर तलवारसे वार किया। उन दोनोमें वह युद्ध हुआ कि तलवारसे तलवार बजने पर आग निकलने लगी। उनके युद्धको देखकर वसुदेवने मुक्के मार-मार कर उसका हाल-बेहाल कर दिया। तब अगारकने वसुदेवको छोड दिया, पर श्यामाकी सखी श्याम लच्छियाने उसे ऊपर ही सम्भाल लिया। वह सखी उसे श्यामाके नगरमें ले जाना चाहती थी, पर इतनेमे आकाशमे देववाणी हुई, कि इस वसुदेवको इस क्षेत्रमें बहुत लाभ है, इसे यही रखो। तब श्याम लच्छियाने अपनी विद्यासे उसको पृथ्वीपर उतारा।

वसुदेव चम्पापुरीके उद्यानमें अम्बुज सगम सरोवरमें पड़ा। उसमे से निकलकर वह किनारेपर आया। वहा उसने तीर्थकर वासपूज्यका चैत्यालय देखा, जिसकी प्रदक्षिणा देकर उसने चैत्यालयमें दर्शन किये। वहा प्रात काल एक ब्राह्मण मदिरमें पूजन करने आया। तब उससे वसुदेवने उस नगरीका नाम पूछा। ब्राह्मणने कहा, "यह अग देश है और यह उसकी प्रसिद्ध नगरी चम्पापुरी है। क्या तू इसे नही जानता ? क्या तू आकाश से पडा है ?" ऐसा उस ब्राह्मण ने उससे पूछा। इसपर वसुदेवने उसकी प्रशसा करते हुए कहा, "तूने तो ज्योतिष शास्त्र भी पढा मालूम होता है। मैं तो सचमुच आकाशसे ही गिरा हूं। दो विद्याधर कुमारियोने मेरे रूपपर मोहित होकर मुझे आकाशमे हरा। फिर उन दोनोमें झगडा हो गया और मैं नीचे गिर पडा।"

"वहा से वसुदेव ब्राह्मणका भेष भर कर चम्पापुरीमें गया जो राग-रगमे डूबी हुई थी। सभी लोग वीणा बजाते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। और चम्पापुरी गधर्वपुरी-सी लग रही थी। तब

वसुदेवने एक नगर निवासीसे लोगोंके वीणा बजाते घूमने का कारण पूछा। उस नगर निवासीने उत्तर दिया, "चारुदत्त नामका एक सेठ कुवेर समान धनी यहा रहता है। उसकी गधर्वसेना पुत्री गंधर्व-विद्यामे अति प्रवीण है। वह अपने रूपके मदसे बहुत अभिमानिनी है। उसकी यह प्रतिज्ञा है कि जो पुरुष गधर्व-विद्यामें उसे जीत लेगा, वह उससे विवाह करेगी। इसलिए बहुत से गधर्वविद्या विशेषज्ञ अनेक देशोंसे यहा आये हैं। ये सब बड़े-बड़े सेठो और राजाओंके पुत्र हैं। गधर्वसेना रूप-लावण्यके समुद्र समान और सबके मनोंको हरनेवाली है। यह हर महीने सगीत सभा लगाती है, जिसमे बहुत से वीणा बजानेवाले इसे जीतने के लिए इकट्ठे होते हैं और यह जयध्वजा लिये साक्षात् सरस्वती-सी सगीत की परीक्षा लेती है। आज की सभा समाप्त हो गई। अब महीने बाद सगीत सभा होगी।" तब वसुदेवने उससे वहा के गधर्वविद्याके गुरुका नाम पूछा। उसने उसका नाम सुग्रीव बताया। वसुदेवने जाकर सुग्रीव उपाध्यायसे गधर्वविद्या सिखाने की प्रार्थना की। वसुदेवका रूप-यौवन देखकर वह उपाध्याय उसे बडे घरका भद्र नवयुवक समझकर उसपर दया करके उसे गधर्वविद्या सिखाने को राजी हो गया। यों तो वसुदेव स्वय गधर्वविद्यामे पहले ही प्रवीण था, वह अनजान बनकर बेसुरी वीणा बजाने लगा, जिससे वहा के सभी दूसरे सगीतज्ञ हसने लगे। महीना बीतने पर सगीत सभाका दिन आया। वसुदेव भी उसमे भाग लेने गया। प्रतियोगितामे सभी लोग वसुदेवको उपस्थित देखकर चकित हो गये। उन्होने इतना रूपवान सुन्दर पुरुष पहले कभी नही देखा था। वहां सभामे वीणा बजानेवाले, वादित्र और नर्तक थे। फिर निर्मल प्रभायुक्त गधर्वसेना वस्त्राभूषणोसे सुसज्जित सभामे ऐसे आई जैसे वर्षा ऋतुमे बिजली मेघ मण्डलमे निकलती हैं। उसने साक्षात् गधर्वविद्याके समान सभामें प्रवेश किया। जब वह गधर्वविद्यामे बहुत से सगीतज्ञोंको पराजित कर चूकी, तब वसुदेव अपनी बारी पर प्रति-

योगिलामें भाग लेने के लिए श्रेष्ठ सिंहासन या मचपर आ विराजा। उसके सामने जो भी वीणाए और वाजे गधर्वसेनाने रखे, वसुदेवने उन सबमें कोई न कोई दोष निकाल दिया। तब गधर्वसेनाने उसके सामने सुघोषा नामकी महा मनोहर देवोपनीत सप्तदशतन्त्री वीणा बजाने के लिए रखी। कुमारने उसकी परीक्षा की और हर्षित होकर कहा, "यह वीणा निर्दोष हैं। अब जो तू कहे और जो तेरी अभिलाषा हो, वही मैं इस वीणा पर गाऊ और वही बजाऊ। मेरे रूप और गुणोसे यह वीणा मेरे वशमे है और मुझे विश्वास है, कि तू भी मेरे वशमें हो जायेगी। इसलिए हे पण्डिते! कहिये कि मैं क्या बजाऊ ?" गधर्वसेनाने कहा, "जिस दिन विष्णुकुमार मुनि-ने बलिको बाधा, उस दिन तुम्बरु और नारद गधर्व जातिके देवो-ने वीणा बजाकर विष्णुकुमारकी स्तुति की। यदि वैसी वीणा बजाने की तुममे प्रवीणता है, तो बजाओ। यह कथा पुराणोमे प्रसिद्ध है। इसलिए उससे अच्छा बजाने का विषय क्या होगा ?"

बाजे चार प्रकार के होते हैं, (१) तारवाले जैसे वीणा, सितार, सारग आदि, (२) मढे हुए जैसे ढोलक और तबला आदि, (३) कासीके बाजे जैसे मजीरे और नुपुर आदि और (४) फूंकके बाजे जैसे तुरही, बसरी आदि। ये चार प्रकारके बाजे प्राणजीवोके श्रोतोको तृप्त करते है और गधर्व शास्त्रके शरीर कहे गये हैं। स्वर, ताल और पद ये गधर्व के त्रिविध स्वरूप हैं। वसुदेव इन सब बाजोको बजाने मे निपुण और गधर्वविद्यामे अति कुशल था। इस लिए जो स्वर जिस स्थानके योग्य थे, वसुदेवने उन्हे वही पर लगाया और उसने गधर्वविद्याका विस्तार श्रोताओके सामने गाया, जिसे सुनकर सभी विस्मित और दग रह गये। सबने उसके वीणा बजाने की प्रशसा करते हुए कहा कि यह तो गंधर्व जाति-के देवोमे से तुंबरू, नारद या किन्नर देव ही है। ऐसी वीणा बजानेवाला और कौन हो सकता है ? फिर गधर्वसेनाने कहा,

"विष्णुकुमार स्वामीकी स्तुतिके लिए तुबरू और नारदने जैसी वीणा बजाई थी और गाया था वैसे ही आप बजाओ और गाओ।" वसुदेवने उसी तरह वीणा बजाई और गाया। यह सुनकर गधर्व-सेना बहुत प्रसन्न और हर्षित हुई। वह निरुत्तर हो गई। उसके मनकी चिर अभिलाषा पूरी हुई। जैसा वर वह चाहती थी, वसुदेव उससे भी अधिक गुण-रूप-यौवन सम्पन्न था। तीन लोक-मे उसे वसुदेवसे अच्छा वर कहा मिलता ? अब गंधर्वसेनाने जयध्वजा वसुदेवके हाथमें दी, मानो वह अपने हृदयको ही वसुदेवको सौंप रही हो। समस्त सभा वसुदेवकी प्रशसाके गम्भीर नादसे गूज उठी। अब गधर्वसेनाने बड़े अनुरागसे वसुदेवके गलेमें वरमाला पहनाई, जैसे गधर्व देवागना गधर्व देवको वर रही हो।

इसके पश्चात् सेठ चारुदनने विधि अनुसार इन दोनोंका विवाह कर दिया। सुग्रीव और यशोग्रीव चम्पापुराके जो गधर्व-विद्याके दो प्रसिद्ध अध्यापक थे, उन दोनोने भी संगीतमे निपुण अपनी कन्याए वसुदेवको व्याह दी। उन तीनो नव वधुओके साथ वसुदेव बडे आनन्दसे रहने लगा।

छोटे से पापके कारण वसुदेव विद्याधरके द्वारा हरा गया और ऊपर से गिराया गया, पर पुण्योदयसे ही वह महा सरोवरमे गिरने पर भी बच निकला और तीन रानियोका पति बना।

: ६ :

विष्णु कुमार महात्म्य

राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा, "हे प्रभो ! गधर्व-सेनाने जो विष्णु कुमार स्वामीके बलिको बांधने की बात कही थी, वह कथा क्या है ?" गौतम गणधर कहने लगे, "विष्णु कुमारकी कथा सुनने योग्य है। मैं तुम्हे सुनाता हूं। उज्जयनी नगरीमे राजा श्री धर्म और उसकी पटरानी श्रीमती राज करते थे। राजाके चार अति बुद्धिमान मन्त्री बलि, बृहस्पति नमुचि और प्रहलाद थे। एक दिन समस्त शास्त्रोके पाठी अकम्पनाचार्य अपने सात सौ सयमी मुनियो सहित नगरके बाहर उपवनमे पधारे। नगरको समस्त जनता उनके दर्शनोके लिए समुद्रके समान उमड पड़ी। यह देख कर राजाने मन्त्रियोसे इसका कारण पूछा। बलि मन्त्रीने बताया कि नगरके बाहर उपवनमे एक अज्ञानी यति आये हैं जिनके दर्शनको ये अज्ञानी लोग जा रहे हैं। राजा श्री धर्मने भी उन साधुओके दर्शनके लिए जाने की इच्छा प्रकट की। मंत्रियोने दर्शनके लिए न जाने को बहुत कहा, पर राजा न माना और मत्रियोंको साथ लेकर अकम्पनाचार्यके दर्शन-को गया और धर्मकी चर्चा करने लगा। पर आचार्यने पहले ही सब मुनियोको समझा दिया था, कि इस नगरीमें दुर्जनोंका अधिकार है, इस लिए तुम सब मौन रहना। आचार्यके आदेशा-नुसार सब मुनि मौन रहे और किसीने भी राजा या मन्त्रीकी चर्चाका उत्तर न दिया। राजा मन्त्रियों सहित वापिस लौट आया।

"सघके श्रुत सागर नामके एक मुनिने अकम्पनाचार्य-की यह आज्ञा न सुनी थी। वह शहरमे बिहार करके लौट रहा

था। इस लिए राजाके सामने वे मत्री श्रुत सागर मुनिसे चर्चा करने लगे। उनकी सब चर्चा मिथ्या मार्गकी थी। इसपर उस मुनिने उन्हें धर्मके युक्तिपूर्ण सत्य स्वरूपको समझाने का प्रयत्न किया। फिर वह मुनि गुरु अकम्पनाचार्यके पास लौट कर आया और उनसे समस्त वृतान्त कहा। गुरुने कहा कि तुमने उनसे विवाद करके अच्छा नही किया और इससे संघपर विपत्ति आयेगी। श्रुतसागर मुनि वापिस उसी स्थानपर जाकर ध्यानमे बैठ गया, जहा उससे मन्त्रियोका विवाद हुआ था। रातको वे पापी मन्त्री उस मुनिको मारने आये। वनके देवने उन्हें कील दिया। प्रात: जब लोगोने इस घटनाका हाल सुना, तो उन्होंने उन मन्त्रियोंको बडा धिक्कारा। राजाने भी उन्हे दण्ड देकर देशसे निकाल दिया।

"चलते-चलते ये हस्तिनापुर आये। हस्तिनापुरमें उस समय राजा महापद्म चक्रवर्ती राज करता था। उसके आठ कन्याए थी, जिन्हे विद्याधर हर कर ले गये। पर उन्हे राजाके योद्धा सकुशल ले आये और वे साध्विया बन गई। और वे आठो विद्याधर भी साधु बन गये। यह देखकर राजा महा पद्म अपने बडे राजकुमार पद्मको राज देकर छोटे राजकुमार विष्णु कुमार सहित साधु बन गया।

"विष्णु कुमार तप करते-करते अनेक ऋद्धियोका स्वामी बन गया।

"पर राजा पद्मका नया राज्य था। इधर-उधर से शत्रु उपद्रव करने लगे। उसके राज्यमे एक गढपति सिंहबल अपने गढ-की शक्तिके अभिमानसे उपद्रव करने लगा। राजा पद्मको इससे बड़ी चिन्ता हुई। इसी समय बलि आदि वे चारो मन्त्री राजा पद्म-के पास आगये और वे सिंहबलको जीतकर और बांधकर राजा-के पास लाये। राजा उनसे बड़ा प्रसन्न हुआ। ये चारों मन्त्री देश-

कालको समझनेवाले और राजप्रशासनमे निपुण थे। वे राजा पद्मके प्रधान बन गये। जब बलि सिहवलको बाधकर लाया था, तब राजाने प्रसन्न होकर बलिसे एक वर मागनेको कहा। बलिने राजासे एक वचन धरोहरके तौर पर अपने पास रखने का वचन ले लिया कि जब मैं चाहूंगा, तब ले लूंगा।

कुछ समय बीतने पर श्री अकम्पनाचार्य अपने साधु सघ सहित हस्तिनापुरके उद्यानमे वर्षाके चतुर्मासके लिए पधारे। इनके आने का वृतान्त सुनकर चारो मन्त्री अपने पूर्व अपराधसे डरे और उन्हें आशका हुई कि कही ये मुनि हमारे पहले उपद्रवोका दंड राजासे हमे न दिलवादे। पर यह आशका निराधार थी। पर वे उसके निराकरणका उपाय सोचने लगे। मन्त्री बलिने जाकर राजा पद्मसे अपना वर मागा कि मुझे सात दिनका राज दे दो। राजा पद्म मन्त्री बलिको हस्तिनापुरका सात दिनका राज देकर स्वयम् घरमे अदृश्यके समान रहने लगा। अब बलि मन्त्रीसे राजा बन गया और उसने अकम्पनाचार्य और मुनियोपर उपद्रव करने की सोची। इस लिए जहा मुनि ठहरे हुए थे, वहा उनके गिर्द यज्ञ आरम्भ कर दिया। इससे मुनियोको धुंएका बडा कष्ट हुआ। यज्ञ-मे आये लोगोकी जूठी पत्तलो और मिट्टीके मटकने साधुओपर डलवाए। पर वे साधु उपसर्गोके सहनेवाले थे, वे उनको मनुष्यकृत उपसर्ग जान ध्यानमे बैठ गये। उन्होने मनमे यही निश्चय किया, कि यदि इस उपसर्गसे बचेगे तो आहार-पानी लेगे, वरना अनशन और समाधिमरण।

"जब साधु सघ सहित अकम्पनाचार्यपर हस्तिनापुरमे यह उपद्रव हो रहा था, तब विष्णु कुमार मुनिके गुरु अपने सघ सहित मिथिलापुरीमे विराज रहे थे। वे महा दिव्यज्ञानी गुरु दया कर कहने लगे कि अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियोंपर भयकर उपद्रव हो रहा है। गुरुकी यह बात सुनकर पुष्पदन्त नामक क्षुल्लक

श्रावकने व्याकुल होकर उपद्रवका स्थान और उसे दूर करने का उपाय पूछा। इस पर गुरुने कहा कि उपद्रव हस्तिनापुरमें होरहा है और बताया कि मुनि विष्णु कुमारको विक्रियाऋद्धि—शरीरको इच्छानुसार छोटा-बडा करने की शक्ति प्राप्त हो गई है। सो उसके प्रभावसे वह उपद्रव दूर होगा। यह शक्ति इन्द्रमे भी नही हैं। वह पुष्पदन्त क्षुल्लक श्रावक भी विद्याधर था, पर व्रत लेते समय उसने अपनी लौकिक विद्याको तज दिया था, परन्तु धर्मके निमित्त उसको उपयोग करने की छूट रखी हुई थी। इसलिए उस पुष्पदन्त क्षुल्लकने तत्काल विष्णु कुमार मुनिके पास जाकर गुरुका कहा सब वृतान्त बताया। मुनि विष्णु कुमारको अपनी विक्रियाऋद्धि प्राप्तिका पता भी न था। तब उसने परीक्षाके लिए अपनी भुजा पसारी। उसकी भुजा इतनी लम्बी हो गई कि कही भी न अटकी। तब विष्णुकुमार स्वामीने अपनी विक्रियाऋद्धिकी प्राप्तको जाना।

तत्काल विष्णु कुमार मुनि अपने भाई राजा पदमके पास गया। राजा पदमने उसका बडा आदर-मान किया। विष्णु कुमार ने कहा, "हे राजन्! आपने यह क्या किया कि आपके राज्य मे मुनियोपर उपद्रव हो रहा है। कुरुवशमें ऐसा राजा कभी नही हुआ, जिसके राजमे भक्तजनोपर उपद्रव हुआ हो। पृथ्वी पर ऐसा कभी नही हुआ कि दुर्जन पापी लोग तपस्वियोपर उपसर्ग करे और राजा उस उपद्रव को न मेटे। वह राजा किस कामका? जलती अग्नि महा प्रपण्ड है, वह भी जलसे बुझजाती है। पर जब जल ही से अग्नि प्रज्वलित हो, तो आग कैसे बुझे? बिना आज्ञाका राजा वृक्षके ठूठके समान है। हे पदम! इससे तू आप उठकर इस दुराचारी बलिको मना कर। यह तेरा मन्त्री भी पशु समान है, क्योंकि वह सब जीवोंपर समभाव रखनेवाले साधुओंसे भी द्वेष रखता है। ये साधु जलके समान शीतल स्वभाववाले हैं, परन्तु जब जल तपता है, तो वह अग्निके समान जलानेवाला बन जाता है! ऐसे ही ये शीतल स्वभावी साधु कोप करें तो आगके समान

भस्म कर दे। ये महाधीर और सामर्थ्यवान है। इनमें त्रिलोकको उठानेकी शक्ति है। यदि साधु कदाचित क्रोध करे तो प्रलयकी अग्नि के समान भस्म कर दें। इससे बलि आदि मन्त्रियोका नाश न होने से पहले उन्हे कुमार्गसे हटा, देर मत कर।"

"तब राजा पद्मने मुनि विष्णुकुमारसे कहा, 'हे प्रभो ! मैंने सात दिनका राज्य बलिको दे रखा है, इसलिए अब मेरा वश नही चलता। आप ही जाकर उसे समझाओ। वह आपकी आज्ञा मानेगा।" इसपर मुनि विष्णुकुमार बावनेका रूप बनाकर बलिके पास गया और कहने लगा, "तुमने थोडे दिन जीनेके लिए चार दिनका राज पाकर ऐसा पाप क्यो किया ? उन तपोनिष्ठ महा पुरुषोने तेरा क्या अनिष्ट किया? ये तो सबका हित चाहते हैं। जो तपस्वी मन, वचन और कायासे महातप करे, उनसे कौन द्वेष करता है ? इससे तुम उनका उपसर्ग दूर करो। देर न करो। जो काम तुमने किया है, उसे छोडो। बलिने उत्तर दिया, "यदि ये मेरे राज्यसे चले जाये, तो यह उपसर्ग टल सकता है, अन्यथा नही।" इस पर बामन रूप विष्णुकुमारने उत्तर दिया, "ये तपस्वी योगारूढ हैं। चतुर्मासमें गमन नही करते। ये व्रती साधु शरीरका त्याग तो कर देते हैं, परन्तु अपना व्रत भग नही करते। इसलिए तुम यह करो कि मैं बामन हू, मेरे पावसे मापी तीन पग पृथ्वी उनके रहनेको दे दो। मेरी इतनी याचना तो मान लो। बलिने विष्णुकुमारकी यह बात मान ली और कहा कि उस तीन पग पृथ्वीके सिवाय एक पैर भी अधिक न विचरे। यदि वे तीन पैर पृथ्वीसे बाहर विचरेंगे तो मैं उन्हे मारूगा। उस अविनयी, कपटी, सर्प समान महा दुष्ट स्वभाववाले बलिको वशमें करने के लिए विक्रियाऋद्धिके धारक वामन मुनि विष्णुकुमार अपनी विक्रियाऋद्धिका रूप उसे दिखाने लगे। पहले उन्होने अपने शरीरको इतना ऊचा किया कि वह आकाश को छूने लगा। फिर उसके तीनो पैरोंमें समस्त पृथ्वी आकाश और त्रैलोक तक आगये। इस पर समस्त जगतमे, "यह क्या है ? यह

क्या है?" की ध्वनि गूज उठी। देवोंने तरह-तरह के बाजे बजाकर गान करके मुनि विष्णु कुमारकी स्तुति की और हाथ जोड़कर अपनी ऋद्धिको सकोचने की प्रार्थना की। मुनि विष्णु कुमारने अपने शरीरको सकोचा और मुनियोंका उपसर्ग दूर किया। देवतागए बलिको बांधकर दूर डाल आये। देवोंने घोषा, सुघोषा और महा-घोषा वीणाए ससारको दी। इस प्रकार विष्णु कुमार मुनि अकम्पनाचार्य और साधुओंका उपसर्ग दूर करके साधुप्रेमके कर्तव्य-को पूरा करके अपने गुरुके पास गये और समस्त वृतान्त कह सुनाया। विक्रियाऋद्धिको काममें लाने का गुरुसे प्रायश्चित लेकर तब विष्णु कुमारने घोर तप किया और केवल ज्ञानी हुए। फिर वे मोक्ष गये।

मुनि विष्णु कुमारकी कथा साधुकी अतुल्य शक्ति और सकटमे फसे साधुओंके कष्ट निवारणकी कथा है।

: ७ :

चारूदत्त चरित्र

गधर्व सेनाके साथ अपने श्वसुर सेठ चारूदत्तके पास रहते हुए वसुदेवने सेठकी विपुल धन-सम्पत्तिसे विस्मित होकर पूछा "हे पूज्य ! राजाओको भी दुर्लभ इतनी विपुल धन-सम्पत्ति आपने कैसे प्राप्त की ? जो भाग्य पुरुषार्थ आपमे है वह कैसे प्रकट हुआ और यह विद्याधरकी पुत्री गधर्व सेना आपके पास कैसे आई ?— ये सब बातें जानना चाहता हू ।"

सेठ चारूदत्तने कहा, "हे धीर ! यह तुमने अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हे सब कुछ बताता हू । इस चम्पापुरीमे सेठोका एक महा स्वामी भानुदत्त प्रसिद्ध सेठ और उसकी धर्मपत्नी सुभद्रा रहते थे । दोनो सम्यग्दर्शनके धारक अणुव्रतके पालक बडे सुख-चैन से अपना जीवन बिता रहे थे । यो उन्हे न किसी बातकी कमी थी और न कोई चिन्ता, पर सेठानीके कोई पुत्र न था । वह सोचने लगी, मेरे सब कुछ है परन्तु ये सब एक पुत्रके बिना अच्छे नही लगते । गृहस्थका साक्षात् फल पुत्र है और हम उससे वचित है । पुत्र अभिलाषासे वह धर्म, पूजा और दान आदि मे अधिक लग गई । एक दिन एक मुनिसे सुभद्राने पुत्र होने के बारे में पूछा । उस अवधिज्ञानी मुनिने सेठानीपर अति दया कर बताया कि तेरे शीघ्र ही अति श्रेष्ठ एक पुत्र होगा । मुनि तो यह वरदान देकर वहाँसे चले गये । कुछ समय पश्चात् सेठानीके मैं पुत्र हुआ और मेरा नाम चारूदत्त रखा गया । मेरे जन्मपर घरमे बडा उत्सव मनाया गया । जब मैं बडा हुआ, तो मुझे धर्मके व्रत दिलाये गये और सब कलाए सिखाई गईं । मेरे पांच मित्र वराह, गोमुख, हरि-

सिंह, तपोन्तक और मरूभूमि थे । एक दिन हम सब मित्र खेलने-तैरनेके लिए रत्नमालनी नदी पर गये । वहाँ नदीके पुलमे एक विद्याधर और उसकी विद्याधरी क्रीडा कर रहे थे । मैं तो उन्हे देखकर आगे बढ गया, .पीछेसे उनका कोई शत्रु विद्याधर वहाँ आ पहुचा । उसने उस विद्याधरको कील दिया । और उसके पासही तलवार और ढाल लेकर लाल आंखे किये खडा रहा । वह शत्रु विद्याधर हम सब को देखकर विद्याधरीको लेकर वहां से चलता बना । तब उस बचे हुए विद्याधरने मुझे सकेतसे तीन गड़ी हुई औषधियां बताई, जिनसे मैंने उस विद्याधरकी कीलन समाप्त की, उसे चलाया और उसके घाव अच्छे किये । बन्धनयुक्त और घाव रहित वह विद्याधर तलवार और ढाल हाथो मे लेकर अपने शत्रु विद्याधर पर झपटा और लडकर अपनी स्त्री को उससे छुड़ाकर ले आया । अपनी स्त्री सहित मेरे पास आकर वह विद्याधर मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगा 'आपने मुझे मरते को बचाकर प्राणदान किया, इसलिए जो आपकी आज्ञा हो, मैं आपकी वही सेवा करू ।''

वसुदेव सेठ चारूदत्त आत्मकथा बडे ध्यानसे सुन रह थे । तभी सेठ चारूदत्तने उस विद्याधरकी कथा, जैसी उसने सेठको बताई थी वसुदेवको सुनाने लगे । चारूदत्त वसुदेव से कहने लगे "विद्याधर ने बताया था, कि वह वैताड्ये पर्वतकी दक्षिण श्रेणी शिव मन्दिर शहरके राजा महेन्द्र, विक्रम का पुत्र अमितगति था । उसके दो मित्र भूमि सिह और गोरमुख विद्याधर थे । एक दिन अमितगति अपने दोनों मित्रोंके साथ हिमवत पर्वत पर गया । वहां पर्वत पर हिरण्यरोम नामका तपस्वी अपनी सुकुमारिका पुत्रके साथ रहता था । वह सुकुमारिका सरसोंके फूलके समान अति सुकुमार अगोंवाली थी वह उस तापस कन्याको देखकर उसपर अनुरक्त हो गया । तब उसके पिता राजा महेन्द्र विक्रमने तपस्वी से याचना करके अमितगति का विवाह सुकुमारिका से कर दिया । उसका मित्र भूमिसिंह उसकी पत्नी सुकुमारिकाको प्राप्त करनेकी अभि-

लाषा करने लगा, और अमितगतिको उसके मनकी बात का पता भी न लगा। वह बेखबर उसके साथ घूमता रहा। आज जब अमितगति अपनी स्त्री सहित चम्पापुरी के बन में घूम रहा था। तब कुमित्र भूमिसिंह उसे कीलकर सुकुमारिकाको ले भागा। मेरी सहायतासे अमितगतिने उस बन्धनसे छुटकारा पाया और अपनी स्त्री पाई, इसलिए वह मुझसे बडा प्रसन्न हुआ।"

चारुदत ने आगे बताया —"अमितगति विद्याधर मेरे उपकार का बडा आभारी था। उसने मुझे पुत्र के समान प्यार किया और सेवा करने को कहा।" तब मैंने उसे कहा—"आप बड़े हो, विद्याधर हो, आपके दर्शन मनुष्यो को दुर्लभ हैं, पर मुझे सुलभ हुए। इससे बडा और क्या लाभ होगा ? आप मेरी चिन्ता न करे। आप मुझे अपना पुत्र समझे।"

सेठ चारूदतने वसुदेवको बताया कि वह अमितगति विद्याधर उसका नाम, पता और गोत्र आदि पूछ कर अपनी पत्नी सुकुमारिका सहित अपने स्थानको चला गया और मैं चम्पापुरीमे अपने घर चला आया। और मैंने अपने मामा सर्वार्थकी सुमित्रा पत्नीसे जन्मी मित्रवती नामकी पुत्रीसे विवाह किया। परन्तु मैं निरन्तर शास्त्र पढनेमे लगा रहता था, इसलिए अपनी पत्नीसे मेरी बातचीत ही नही ही पाती थी। तब मेरी सास ने मेरी मा को उलाहना दिया कि उस का पुत्र पढा-लिखा मूर्ख है, वह स्त्री-चर्चा ही नही जानता। इस पर मेरी माने मेरे वासनासक्त चचा चारूदत्तको मुझे कामसक्त बनानेका उपाय करने को कहा। मेरा चचा मुझे गणिकाओ की मुखिया कलिगसेनाकी पुत्री बसन्तसेनाके घर ले गया। बसन्तसेना सौन्दर्य, रूप, यौवन बसन्तको भी मात करती थी और गाने, बजाने और नृत्य आदि में अति प्रवीण थी। उसके नृत्यमण्डपमें शृगार विद्यामें निपुण और रसिया अनेक लोग बैठे थे। मैं भी अपने चचा चारूदत्तके साथ वहां जा बैठा। बसन्तसेनाका नृत्य आरम्भ हुआ। वह अपने हाथों और मुखसे

शृंगार आदि कर नवरसों और भाव-विभाव और अनुभावके भेदो को बताने लगी । सबको नृत्य दिखाती हुई वह मेरे सामने विशेष रूपसे हर्ष और अनुरागसे अप्सराके समान नृत्य दिखाने लगी । वह मुझ-पर मोहित होगई । अपनी मा कलिंगसेनाके पास जाकर उसने उससे कहा कि मुझे चारुदत से मिलाओ । मैं उसके बिना किसी औरको अपना पति न बनाऊगी—यह मेरी प्रतिज्ञा है । कलिग सेनाने आदरसन्मानसे चारुदत्तको वशमे कर लिया और फिर उसके साथ मुझे भी अन्दर अपने भवनमे ले गई । उसने हम दोनोंको बडे आदरसे आसन दिया । कलिगसेनाने रुद्रदत्तसे जुएमे उतरासन जीतकर मेरे साथ जुआ खेलना आरम्भ किया । इस पर बसन्त सेनाने माको जुएसे हटाकर स्वय मुझसे जुआ खेलना आरम्भ किया, मैं उसके रूप तथा चातुर्य पर मुग्ध सा बहुत देर उससे जुआ खेलता रहा । मुझे जोरकी प्यास लगी । पर उसने ऐसा मोहिनी चूर्ण डालकर मुझे पानी पिलाया कि मुझे भ्रम हो गया मैं उसपर अनुरक्त हो गया और उसकी माने उसका हाथ मुझे पकडाया । मैं फिर बसन्तसेनाके पास बारह वर्ष तक रहा, मा-बाप-पत्नीको सर्वथा भूल गया । मेरे सभी अच्छे सस्कार जाते रहे । मैंने वहा १२वर्ष में सोलह करोड दीनार उनको भेटकर दिये । जब मेरे घरमे धन न रहा, तब मैं मित्र समान अपनी स्त्री के आभूषण वहा ले जाने लगा । इस कलिंग सेनाने अपनी लडकी बसन्त सेनाको मुझ दीन-हीनको छोड़नेको कहा । मांने बेटीको बहुत समझाया कि मुझे छोड कर अब वह किसी दूसरे धनी आदमीको अपने प्रेम पाशमे फसाये । पर इस बातसे दुखी बसन्त सेनाने एक यही बात कही,"हे माता ! यह तुम क्या बात कह रही हो ? यह चारुदत्त मेरी कुमारावस्था का पति है । उसकी सेवा करते हुए मुझे बारह वर्ष हो गये । उसने भी हमारे लिए अपना सब धन खर्च कर दिया और दूसरा आदमी चाहे कुबेर समान धनी हो, उसे मैं प्रेम नही कर सकती । चारुदत्त-के बिना मैं एक क्षण भी जीवित नही रह सकती । तुम महाकृतघ्न

हो, जो उसके किरोडो दीनार घर मे आने पर भी उसे त्यागनेको कहती हो समस्त कलाओके जाननेवाले नवयुवक और धर्मात्मा पतिका त्याग करना मेरे लिए असम्भव है।"

"पर कलिंगसेना अपनी बेटीका हित कब चाहने वाली थी? वह तो धनकी भूखी थी। वह पतिता मुझे बसन्त सेनासे अलग-अलग रखने लगी और एक रात को नीदमें मुझे घरसे बाहर डाल दिया। जब मेरी आखे खुली, तब मैं अपने घर गया। मेरा पिता भानुदय तो मुनि हो गया था। मेरी मां पतिके वियोग और मेरे व्यसनी हो जानेपर बडी दुखी थी और मेरी पत्नीके दुःखकी तो कोई हद न थी। वे दोनो मुझे देखकर टे-टे कर रोने लगी। तब मैंने उन्हे धैर्य बधाया। फिर मैं अपनी स्त्री के कुछ आभूषणों से कुछ पूजी जमा करके अपने मामाके साथ उशीरावर्त नामक देशमे व्यापारके लिए गया"

चारूदत्त वसुदेवसे अपनी आगेकी कथा कहने लगे, "उशीरावर्त देशमे हमने कपास मोल ली। जब मैं अपने मामा के साथ ताम्रलिप्तपुर को जा रहा था, तब दैवयोग से कपास आग लगनेसे राख होगई। तब मैं मामा को छोड़कर एक घोड़ेपर सवार होकर पूर्व दिशाकी ओर गया था, पर मार्गमें वह घोडा भी मर गया। तब मैं पितयुग नगरमें गया सुरेंद्रदत्त जहा मेरे पिताका मित्र था। उसने मुझे प्रेमसे अपने पास कई दिन सुखसे रखा। फिर मैं वहा से समुन्द्रमे नाव द्वारा व्यापारके लिए गया। जो छहबार समुद्र प्रवेश किया। सातवी बार मेरा जहाज फट गया। मेरा ८ किरोड़ का धन सब समुद्रमे डूब गया। मैं एक लक्कड़पर समुद्र पार करके किनारे पर राजपुर नगर मे गया। वहा एक तापस परिव्रजाकके भेषमें था। वह मुझे रसायनका लोभ देकर बनमें ले गया। उसने मुझे रस्सेसे बांधकर एक गहरे अंधे कुएमे उतारा। मैं वहा रस इक्ट्ठा करने लगा। वहा पहले ही एक दूसरा आदमी उस तापस

का उतारा कुए में पड़ा था। उसने मुझे उसका समस्त रहस्य रहस्य बताया कि वह भी उज्जयिनीका धनी सेठ था और उसका भी जहाज समुद्रमे फट गया था और लकड़ियों पर चढकर इस बनमे आनिकला था। मैं भी इस तापसके चुगलमें फस गया था। देखो, मैं हाड़का पिजरा रह गया हूँ। उसने मुझे गोहकी पूँछ पकडकर कुएं से बाहर निकलने का उपाय बताया। मैंने भी उसे अपना नाम, पता, स्थान और वृत्तात बताये। मेने उसे धर्मका उपदेश दिया। उससे जीव दया, सत्य, चोरी न करने और परिग्रह परिणामके व्रत लिये। फिर मैं उसके बताये हुए उपायसे गोहकी पूँछ पकड़कर कुएसे बाहर निकला। मेरा समस्त शरीर कुएकी दीवारसे छिल गया। बाहर निकलते ही मुझे एक भयकर काल समान जगली भैसा दिखाई दिया। उसे देखकर मैं एक गुफामे घुसा। वहाँ एक अजगर साप सोया हुआ था। भैसे और अजगरमें विषय युद्ध हुआ और मैं अच्छा मौका देख वहाँसे बच निकला। उस बनसे बचकर मैं प्रत्येक गाँव में आया। वहा दैवयोगसे मुझे मेरा चाचा रूद्रदत्त मिला। उसने मुझे धैर्य बधाया और खाना-पानी दिया।"

चारूदत्त वसुदेव को इससे आगे की बात सुनाने लगे, रूद्रदत्त ने स्वर्णदीप उसके साथ चलकर खूब धन लाने की बात मुझे कही। हम दोनो एरावती नदीके उत्तर की ओर गिरिकूट पहाडीको उलाघ कर वेत्रबनमे होते हुए टकण देशमे पहुंचे। रूद्रदत्तने दो तेज चालवाले बकरे मोल लिये, जिन पर चढकर हम अति विषय मार्ग को चलकर पहाड़ीकी चोटीपर पहुंचे। तब पापी रूद्रदत्तने वहांसे स्वर्णद्वीप पहुंचनेकी विधि यह बताई, कि इन दोनो बकरोको मार कर इनकी खालोंमें हम प्रवेश करे। यहांसे बड़ी-बडी चोच और पजेवाले भारण्डव पक्षी उन खालोको मांसके लोभसे द्वीप ले उड़ेगे। मैंने रूद्रदत्तको ऐसी हत्या करनेसे मना किया, पर वह न माना। मेरी आंख बचाकर उसने अपने बकरेको मारकर

उसकी खाल तैयारकी । मारते समय मैंने उस बकरे को जमोकाट-मन्त्र दिया । रूद्रदत्त ने मेरे हाथमे तलवार देकर मुझे उस खालमे डाल दिया और दूसरी खालमे तलवार लेकर वह स्वय बैठ गया । भारण्डव पक्षी हम दोनोको लेकर उड गये । जो पक्षी मुझे ले जा रहा था, सयोगसे वह काना था । वह स्वर्णद्वीप न जाकर मुझे रत्नद्वीप ले गया । उस रत्नद्वीपमे रत्नोकी किरने जगमगा रही थी । वहा एक जैन मन्दिर था और उसमें एक मुनि थे । मैंने मन्दिरकी प्रतिमाके दर्शन किये और मुनिकी वन्दना की ।

चारूदत्तने आगे कहा, "जब मुनिका ध्यान समाप्त हुआ, तब मुनिने मुझे धर्मवृद्धिका आशीर्वाद देकर मुझे मेरा नाम लेकर सम्बोधित करते हुए मेरी कुशल और मेरे वहा जानेका कारण पूछा और बिना किसीकी सहायना मैं वहा कैसे पहुंचा ? "तब चारूदत्त ने नमस्कार करते हुए अपनी कुशल बताते हुए साश्चर्य पूछा—"हे प्रभो ! आपने मुझे पहले कहा देखा है ।" इस पर मुनिने मुझे बताया, "चम्पापुरीके उद्यानमे मेरे शत्रुने मुझे कीला था और तुमने मुझे उससे छुडाया था । मैं अमितगति विद्याधर हूँ । मेरा पिता मुझे राज्य देकर मुनि हो गया । मै राज करने लगा । मेरी रानिया विजयसेना और मनोरमा थी । विजय सेनाके तो गधर्वसेना पुत्री हुई और मनोरमाके सिहयश और वराहग्रीव दो पुत्र हुए । मैं बड़े राजकुमार सिययशको राज्य देकर और दूसरे छोटे राजकुमार वराहग्रीवको युवराज बनाकर अपने मुनि पितासे जैन साधुकी दीक्षा ले ली । हे चारूदत अब तुम बताओ कि समुद्र के बीच इस कुम्भकण्टक द्वीपमे इस कर्कोटक पहाडीपर तुम कैसे पहुंचे ?" मैंने मुनिको अपनी दु ख-सुख मिश्रित समस्त कथा सुनाई । तभी दो विद्याधर आकाशसे उतर कर वहा हमारे पास नीचे आये । वे उस मुनिके पुत्र ही थे । मुनि ने उनको बताया कि मैंने पहले तुम्हे भी बताया था कि चारूदत्तने ही मुझे उस शत्रुसे बचाया था । आज यह यहा आया है । इस पर वे दोनों विद्याधर बड़े प्रेमसे मेरे पास बैठ गए ।

चारूदत्त ने आगे बताया—"इतने मे वहा दो देव आये । उन्होंने शिष्टाचारके विरुद्ध पहले मुझे नमस्कार किया और मुनिको यह रीति-क्रम भग था । सो मैंने दोनों विद्याधरो और दोनो देवोसे इसका कारण पूछा । उन देवोने बताया कि हम दोनोंको जिनधर्म-के उपदेश देनेके कारण चारूदत्त ही हमारे साक्षात् गुरु हैं । तब विद्याधरने उसकी कथा को पूछा । पहले बकरे का जो जीव देव हो गया था, वह कहने लगा, "हे विद्याधर ! वाराणसी मे सोम-शर्मा और उसकी पत्नी सोमिला रहते थे । वह ब्राह्मण वेद व्याकरण और पुराण आदि का विद्वान था । उसकी दो पुत्रिया भद्रा और सुलसा थी । दूसरी पुत्री सुलसा भी व्याकरणादि शास्त्रकी पारगामी थी । ये दोनो विवाह न करके परिव्राजिकाए बन गई । उनकी विद्वता और तप प्रसिद्ध हो गये । उन दोनो बहनोने अनेक वादियों को जीता । याज्ञवल्क नामका एक प्रसिद्ध परिव्राजक घूमता-घूमता उन दोनो को विवाद मे जीतनेकी इच्छासे वाराणसीमे आया । दोनो बहनोमें सुलसा को अपनी विद्वता पर अधिक गर्व था, इसलिए उसने पण्डितोकी सभाके बीच प्रतिज्ञा की, कि वह इस परिव्राजकसे विवाद करके उसे भी जीतेगी । जो बात सुलसा कहती, याज्ञवल्क उसका ही खण्डन करके अपने पक्ष स्थापित कर देता । फल यह हुआ कि सुलसा हार गई । याज्ञवल्कने सुलसाका हाथ पकड़कर कुचेष्टाए करनी आरम्भ की । सुलसाने उसे बहुत मना किया, पर उसने एक न सुनी । सुलसाके याज्ञवल्कसे एक पुत्र हुआ । उस नवजात शिशुको पीपलके वृक्षके नीचे डालकर वे दोनो पापी चलते बने । बडी बहन भद्राने उस ऊचे मु हके शिशुको पीपलके वृक्षके नीचे पडा देखकर समझ लिया कि वह उसकी छोटी बहन सुलसाका पुत्र है । भद्राने उसे उठा लिया और उसका अच्छी तरह पालन-पोषण किया । भद्राने उस बच्चे का नाम पिप्पलाद रखा । यह बालक बड़ा होने पर बहुतसे शास्त्रोका पारगामी विद्वान बना । एक दिन उसने भद्रासे पूछा, "हे माता, मेरा पिप्पलाद नाम क्यो

रखा और मेरा पिता जीवित है कि नहीं ?" इस पर भद्राने उसे उसके मां-बाप की और उसके जन्म की सारी कथा बताई और कहा कि वह उसकी बडी माऊसी है। उसने ही उसे एक धायको लगाकर पाला है। शूलके समान चुभने वाली यह बात सुनकर पिप्पलाद बडा क्रुद्ध हुआ और अपने पिता याज्ञवल्कके पास गया। पिप्पलाद ने विवादमे पिता को जीता। फिर उसने अपने माता-पिता की विनयपूर्वक सेवा-शुश्रषा करके शान्त किया। पिप्पलादने अपना पथ चलाया और वे मा-बाप उसके शिष्य बन गये। वह देव कहने लगा कि मैं भी पिप्पलादका शिष्य था और उसके हिंसा मार्ग को पुष्ट करके नरक-नरक मे घूमा। छहबार बकरेका जन्म पाया और यज्ञों मे होमा गया। सातवी बार भी मैंने टकन नामके देशमे बकरे का जन्म लिया। चारूदत्तने मुझे धर्मका उपदेश दिया, णमोकार मन्त्र सिखाया। उसी धर्मके प्रभावसे मैं देव बना हूँ। चारूदत मेरा गुरु है। इसलिए मैंने उसे मुनिसे पहले प्रणाम किया है।"

तब दूसरे देव ने बताया "मैं उसी बणिक पुत्र का जीव हूँ, जिसे रसायनके लोभी तापस परिव्रजकने धोखेसे कुएमे डाल दिया था और जिसने चारूदतको वहा कुएसे गोह की पूछ पकडकर बचने का उपाय बताया था। कुए मे चारूदतने मुझे धर्मका उपदेश और अहिंसा आदि के व्रत दिये थे। उनके फलस्वरूप ही मैं देव बना हूँ और इसीलिए मैंने 'पहले चारूदतको और पीछे मुनिको नमस्कार किया है।"

फिर उन दोनो देवोने पापमे डूबते प्राणियो को धर्मका उपदेश देकर बचानेवालोके महान् उपकारका हाल बताया। उन्होंने कहा कि जो प्राणी अपने उपकारको भूल जाय, उस जैसा कृतघ्नके समान दूसरा कोई निन्दय नही है। जो पराय उपकार को भूल जाय, या गुणके बदलेमे अवगुण करे, उस समान दूसरा कोई दुराचारी नही। पराये थोडे से उपकारको भी सदा बड़ा मानना चाहिये

यदि उसका प्रति उपकार न भी करसके, तो सदा उसके उपकार को याद रखे, और उसके प्रति सदा अति अच्छे भाव रखे और उससे गर्व न करे। यही कुलवन्त पुरुषोका कर्त्तव्य है।" यह कह कर उन दोनों देवोंने विद्याधरोंके सामने अपनी विभूति और ऐश्वर्य दिखाये।

चारूदत्तने वसुदेवको बताया कि उन देवोने मुझे अग्निमे न जलने वाले वस्त्र और अनुपम आभूषण पहिनाये, कल्प वृक्षों-की माला दी, और देवलोकके सुगध मेरे अगपर लगा। तब उन देवोने चारूदत्त से कहा, "हे स्वामिन ! अब जैसी आपकी आज्ञा हो, वैसा ही हम करे। कहो तो अभी आपको अपार धन देकर चम्पापुरी ले चले।" चारूदत्तने उन्हे वहासे अपने स्थानको जाने और याद करने पर उसके पास आनेको कहा। इस पर उन्होने चारूदत्तकी आज्ञा स्वीकार कर पहले मुनिको और फिर चारूदत्तको नमस्कार कर वहासे प्रस्थान किया।

चारूदत्तने वसुदेवको इससे आगे कहा, "फिर मुनिको प्रणाम कर मैं उन दोनो विद्याधरोके साथ आकाश-मार्गसे उनके शहर शिव मन्दिरमे आगया। वहा उन विद्याधरोंने मुझे बड़े आदर-मान और सुखसे कई दिन रखा। शहरके सभी लोग मेरे यशका गान करके मेरी प्रशसामे कह रहे थे, कि इस नगरीके स्वामीका मैं ही प्राण बचानेवाला हूं। फिर १२ दिन गन्धर्व सेनाकी मा और भाईने मुझे गवर्व सेना दिखाई और कहा, "इसके पिता अमितगति मुनिने बताया था कि चारूदत्तके घर यदु पुत्र वसुदेव गधर्व विद्यामे इसे जीतकर विवाहेगा। अमितगति तो मुनि हो गये इसलिए इस लड़की को तुम अपने साथ ले जाओ। और इस काम को पूरा करो।" मैंने उनकी बात मान ली और उन्होंने दासियो सहित वह लड़की गधर्व सेना मुझे सौप दी। उसके दोनो भाई बहुत से रत्न-सम्पदा और बड़ी सेना लेकर मेरे साथ चम्पापुरी आनेको तैयार हो गये। तब मैंने उन दोनो देवोको याद किया। क्षण मात्रमे वे हँस बिमान

तथा निधि लेकर बहा आ उपस्थित हुए। वे देव हम सबको चम्पापुरी मेरे महल मे लाये। सब नवनिधि और रत्न आदिसे मेर घरको भरपूर कर वे देव मुझे नमस्कार कर वापस चले गये। मैं अपनी माता, मामा, धर्मपत्नी और कुटुम्बियोसे बडे प्रेमसे मिला। घरमें हर्षकी लहर दौड गई। मैंने देखा कि कलिंग सेना गणिका की पुत्री पतिव्रता बसन्त सेना की मेरे परदेश जानेके पश्चात अपनी मा का घर छोड़कर आर्यिकासे श्राविकाके व्रत लेकर मेरी मा के निकट आकर रहने लगी। बसन्त सेनाने मेरी मा और धर्मपत्नीकी हृदयसे इतनी सेवा की कि वे उससे अति प्रसन्न हुई। जगतमे बसन्त सेनाका बडा यश हुआ। मैं भी यह तमाम बात सुनकर बडा प्रसन्न हुआ और मैंने बसन्त सेनाको अंगीकार किया। वेश्या पुत्री होकर भी उसने शीलधर्म को निबाहा। बसन्त सेना भी मुझे पाकर हर्षसे गदगद होगई। अब मैं निधि के प्रताप से दीन-अनाथोंको मुँह मागा दान देकर तृप्त करता हू। इसे किमिच्छा दान कहते हैं अर्थात् जिसकी जो इच्छा हो वही मेरेसे ले जाय।"

आगे चारुदत्तने वसुदेवको अपने विपुल तथा अक्षय धनके बारे मे बताया,—"तुमने इस धनके बारे मे पूछा, सो यह देवोका दिया हुआ है और इस गन्धर्व सेनाका विवाह तुमसे किया है तुम्हारे लिए ही यह विजयार्द्धसे यहा हाई है। इसके भाग्य धन्य हैं जो इसने तुम जैसा पति पाया। मुझे इसकी बडी चिन्ता थी। वह चिन्ता अब दूर हो गई। अब मैं निश्चिन्त हो तप करूगा।

गंधर्व सेना और चारुदत्तकी सम्पूर्ण कथा सुनकर वसुदेव बडा प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा, "धन्य है ! इस निष्कपट और उदार पुरुष को, जिसने अपने अच्छे-बुरे जीवनकी समस्त कथा को मुझे सुना दिया। धन्य है इसके पुण्य, पुरुषार्थ और वैभवको। फिर वसुदेवने भी अपनी सब कथा चारुदत्तको। सुनाई कि राजा अंधक वृष्णिका पुत्र और समुद्र का विजय का छोटा भाई वह वसुदेव कैसे घरसे निकला। दोनो एक-दूसरेकी रहस्य पूर्ण कथा सुन कर बड़े प्रभावित और प्रसन्न हुए।

: ८

वसुदेव का नीलंयशासे विवाह

राजा वसुदेव गधर्वसेना सहित चम्पापुरीमे बडे आनन्द-मगलसे दिन बिताने लगे। फागुन की अष्टान्हिका का पर्व आया। समस्त जनताके हृदयोमे धर्मका उल्लास था। चम्पापुरी तीर्थकर वासपूज्यके पाचो कल्याणकोका पवित्र तीर्थ है। यो तो हर समय ही दूर-दूर से यात्री वहा पूजा करने आते हैं, पर पर्वके दिनोमे विशेष भीड और चहल-पहल रहती है। भगवान वासपूज्यका मन्दिर नगर से बाहर है। यात्री तरह-तरहकी सवारियोमे बैठ कर वहा दर्शन-पूजनको आते हैं। राजा वसुदेव और रानी गाधर्व सेना पूजन-सामग्री लेकर बडे भक्तिभावसे घोडियो के रथ पर सवार होकर मन्दिरके लिए चले। राजाके आगे-आगे बडे-बडे योद्धा जारहे थे।

यदुपति राजा वसुदेवने एक कन्याको भील कन्याके भेषमे नृत्य करते देखा। वह कन्या नीलकमलके पुष्प समान श्यामसुन्दर और अद्भुत वस्त्र पहने ऐसे लगती थी जैसे वह वर्षाकी विभूति है और उसके आभूषण बिजली से चमक रहे हैं। अपने होठोकी लालिमा, कमल समान चरणो और सुन्दर नेत्रोसे वह शरद की लक्ष्मीसी ही लग रही थी। वह अतिरूपवती लडकी जिनेन्द्र भगवान की भक्तिमे लीन नृत्य करती हुई तीर्थकर वासपूज्यके पच कल्याणकोका यश गारही थी। उस नृत्यकारिनी की वादित्रमण्डली और बाजे आदि समयानुसार थे। वह बडे हाव-भावसे नृत्य और अभिनय कर रही थी। राजा वसुदेवकी उसपर जो दृष्टि पडी वही अटक गई। उसने अपने रूप और चतुराई से राजा वसुदेवके मनको मोह लिया। वह भी राजा पर मुग्ध हो गई। उस लड़कीका नाम नीलमयशा था।

रानी गंधर्वसेनाने यह देखकर ईर्ष्या से कुपित हो आंखे कुछ सकोच-कर सारथीको आदेश दिया—"यहा बहुत देर हो गई है अब आगे बढो।" रानीका आदेश पाते ही सारथीने घोडियोको आगे बढाया और सब मन्दिरके द्वार पर पहुच गये।

राजा-रानीने मन्दिरकी प्रदक्षिणा कर उसके भीतर 'नमो जय, नमो जय' कहते हुए प्रवेश किया। वहा तीर्थंकर वसुदेवकी प्रतिमा विराजमान थी। पहले राजा-रानी ने दूध, दही, घी, ईख-रस और जलके पचामृत न्हवन पाठ गाते हुए मूर्तिका अभिषेक किया। फिर उन्होने अष्टद्रव्योसे जिनपतिकी बडी श्रद्धासे पूजा की। पूजाके पश्चात् साष्टाग दण्डवत् करके वे मूर्तिके सामने बैठकर पवित्र णमोकार मन्त्रका जाप करने लगे। पवित्र चित्तसे फिर उन्होंने अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवलीके कहे धर्मकी मगली कही। फिर राजा-रानीने सामायक किया। सामायकके समयमे उन्होने शत्रु-मित्र, सुखःदुख जीवन-मरण और लाभ-हानि आदि सबके प्रति समताभाव होने की भावना की। सामायक करके उन्होने ऋषभ देवसे महावीर स्वामी तक चौबीस तीर्थकरोकी स्तुति पढी। इस तरह राजा वसुदेव और गधर्व सेनाने महाभक्तिसे प्रभुके पूजा स्तवनसे हर्षित हो अन्तिम प्रणाम किया। मन्दिरकी प्रदक्षिणा करके वापस अपने महलमे लौट आये।

गधर्वसेनाने जबसे उस नृत्यकारिनीको देखा था, उसके मन मे ईर्ष्या हो गई। उसकी आखे टेढी-टेढी होरही थी। भौहे तनी हुई थी। वह मान मारे मानिनी बनी हुई थी। राजासे खिन्न थी। राजा वसुदेव उसके मुख और आखोको देखकर सब समझ गया। राजा वसुदेव नर्म पड गया। वह जानता था कि पति नमा, और प्रिया का कोप गया। गधर्वसेना वसुदेवके नम्र होनेसे बहुत प्रसन्न हुई, उसके मान का लोप हो गया। पर बात यहा समाप्त न हुई।

जबसे उस नृत्यकारिनीने वसुदेवको देखा था, वह बडी बेचैन थी। उसे दिनमे चैन न रातको नीद। वह इसी उधेड-बुन मे थी कि किस प्रकार अपने प्रिय राजाको पाये ! अन्तमे उसने एक वृद्ध बिद्याधरीको राजा वसुदेवके पास अपना मनोर्थ सिद्ध करनेको भेजा।

साक्षात् विद्यासी वृद्धा ललाटमे तिलक लगाकर राजाके महलमे आई और एकान्तमे राजासे मिली और उसे आशीर्वाद दिया। इधर-उधरकी बातें करनेके बाद उस वृद्धाने नीलयशाके वशका परिचय देते हुए कहा—"हे राजन् ! इस समय असित पर्वत नामके नगरमे मातगवशका अतिप्रतापी राजा प्रहसित राज करता है। उसकी रानीका नाम हिरण्यवती है, जो सब विद्याओसे परिपूर्ण हैं। और मेरा पुत्र सिहदष्ट्र है, जिसकी स्त्री का नाम नीलाजना है। उनकी पुत्री नीलयशा है। यह लडकी उज्ज्वल यशवाली, कुलवती, शीलवन्ती, कलावन्ती और गुणवन्ती है। तीर्थंकर वासपूज्य के मन्दिर के बाहर नृत्य करते समय उसने आपको जबसे देखा है, वह आपपर अनुरक्ता होगई है और आपके विरहमे अति व्याकुल है। वह न स्नान करती है, न कुछ खाती-पीती है और न बोलती है। उसकी इस दशा को देखकर उसके कुटुम्बके सभी स्त्री-पुरुष व्याकुल हैं। उसके माता-पिता भी चिन्तित हैं। उन्होने कुल विद्याधरीसे पूछा कि इस लडकीके मनमें क्या है ? राजा वसुदेव ने उत्सुकता से पूछा—"कुल विद्याधरीने क्या बताया ?' वृद्धाने कहा "कुल विद्याधरी ने सब हाल बताया और आपका वृतान्त कहा।" तब हम सब ने निश्चय किया कि यह यादवेश्वरके दर्शनोकी अभिलाषावती है। मैं आपको लेने आई हूं। मैं उसकी दादी हूं। हे राजन् ! निमित्तज्ञानीने बताया है कि वह बियोगिनी है। इसलिए आप शीघ्र चलो और उसे विवाहो।' वृद्धाकी मीठी-मीठी मनभाती बातोसे राजा वासुदेवके हृदयमे नीलयशा के प्रति अनुराग तेज होगया। वह नीलयशाके पास जानेका अभिलाषी हो गया, परन्तु

वह तत्काल चम्पापुरीसे जाना नही चाहता था। वसुदेवने वृद्धा विद्याधरीसे कहा, "हे माता! मैं अवश्य आऊंगा, तुम इसमें सन्देह मत करो। तुम जाकर मेरे वचनोसे उसे धैर्य बधाओ।' वह वृद्धा राजाको आशीस देकर तुरन्त आने को कहकर चली गई। उसने जाकर नीलयशाको धैर्य बधाया।

रातको राजा वसुदेव और गधर्वसेना महलमे सो रहे थे। राजा प्रहसित की रानी हिरण्यवती विद्याधरी वेताल कन्याका भयकर रूप बनाकर उनके महलमे आई। उसने वसुदेवको पकड कर खीचा। राजा जाग उठा, उसने दृढ मुट्ठियोसे हिरण्यवतीको खूब कूटा, पर उसने राजाको न छोडा। वह गलीके मार्गसे राजाको श्मशान भूमिमे ले गई। वहा श्मशानमे राजाने बहुतसी विद्याधरियोंको देखा। तब वह हिरण्यवती विद्याधरी खिलखिलाकर हसी और कहने लगी—"मैं हिरण्यवती हू और वेताल विद्या से तुम्हे यहा लाई हू। यहा नीलयशा भी आपकी प्रतीक्षा कर रही है। मैं आप दोनोकी अभिलाषा पूरी करूगी। फिर उसने नीलयशाको कहा—"तेरा प्राण वल्लभ आगया है। अपने हाथोसे इसका पल्ला छू। फिर उसने नीलयशाके हाथमे राजा वसुदेवका हाथ पकडाया। हाथसे हाथ छूते ही, दोनो आनन्द विभोर हो उठे। फिर वे दोनो सबके साथ नगरमे आगये। नीलयशाके पिताने उनका स्वागत किया। समस्त शहरमे उत्सव सा हो गया। फिर एक दिन शुभ-नक्षत्रमे राजाने वसुदेव और नीलयशाका विवाह कर दिया। वे वर-वधु आनन्द पूर्वक रहने लगे।

: ६ :

वसुदेव के और विवाह

एक दिन वसुदेव अपनी ससुराल महलमे बैठे हुए थे । उन्होंने महा कोलाहल सुना । पास ही जो द्वारपालनी थी, वसुदेवने उससे उस कोलाहलका कारण पूछा । द्वारपालिनी कहने लगी—"मैं सब वृतान्त जानती हूं । सो आप सुने । इस विजमार्द्धगिरि में एक शकटामुख शहर है, जिसका राजा विद्याधरोका अधीश्वर नीलवान् है । राजाके नीलनाम का पुत्र और नीलाजना पुत्री है । आपके श्वसुर सिहदष्ट्र का विवाह नीलाजना से ही हुआ था । सिहदष्ट्र और नीलाजना के नीलयशा पुत्री हुई, जिसका विवाह आप से हुआ । परन्तु सिहदष्ट्र और नीलके आपम मे यह वचन था कि "यदि एकके पुत्र हो और दूसरेके पुत्री हो तो, उनके आपसमे विवाह हो ।" नीलके यहा पुत्र नीलकठ हुआ और आपके श्वसुर के पुत्री नीलंयशा हुई । आपस के बचनोके अनुमार उन दोनोका विवाह होना चाहिये था, पर नीलयशाके जन्म समय मुनियोसे उसके वरके बारेमे पूछने पर वृहस्पति नामके एक साधुने बताया कि इसका पति वसुदेव होगा । इससे सिहदष्ट्र ने नीलयशा का विवाह आपसे किया ।"

इस पर वसुदेव ने पूछा—"इस कोलाहलसे इस कथाका क्या सम्बन्ध है ?" द्वारपालिनी कहने लगी—"वही तो मैं बता रही हूं । आज राजा नील अपने पुत्र नीलकण्ठके लिए आपसे जो नीलयशा ब्याही है, उसे मांग रहा है और कह रहा है कि अपना वचन याद करो और उसे पूरा करो । राजा नीलने अपने पुत्र नील-कंठ सहित राजदरबारमे आपके श्वसुरसे विवाद किया । परन्तु

आपके श्वसुर सिंहदंष्ट्रने न्यायसे उन्हे जीत लिया। इस पर ही विद्याधर लोग कोलाहल कर रहे हैं।"

यह सुनकर राजा वसुदेव कुछ मुस्कराया।

शरद ऋतुमे राजा वसुदेव और नीलयशा बड़े सुख-चैनसे दाम्पत्य जीवन बिता रहे थे। एक दिन वे पति-पत्नी हीमत पर्वत-पर घूमनेके लिए ऐसे निकले जैसे मेघ बिजलीके साथ आकाशमे चलता है। पर्वतके सुन्दर वनमे वृक्षोकी शोभा देखते-देखते नीलयशा पति-से कुछ क्षणोके लिए बिछुड गई। उस समय राजा नीलका पुत्र नीलकठ मायासे मोरका रूप बनाकर नीलयशाके पास आया और वह पापी नीलयशाको कन्धेपर चढाकर आकाशमे ले उडा। वसुदेव नीलयशाके बिछुडनेपर बडा विह्वल और दुखी होकर उसे वनमे ढूँढने लगा, पर नीलयशा उसे न मिलनी थी, न मिली। घूमते-घूमते रात हो गई। राजाने रात ग्वालोके यहा बिताई, जिन्होने उसे ठन्डा जल और अच्छा भोजन दिया।

प्रातःकाल वसुदेव चलता-चलता दक्षिण दिशामे गिरतट शहरमें पहुचा। वेदपाठी ब्राह्मणोंके वेदाध्ययनके शब्द से समस्त शहर और सब दिशाए गूँज रही थीं। बडे कौतुकसे राजा वसुदेवने एक मनुष्यसे पूछा कि क्या कोई दानी ब्राह्मणोको महादान दे रहा है, जो यहा इतने वेदपाठी ब्राह्मण इकट्ठे हुए हैं। उस मनुष्यने बताया कि इस शहर में विश्वदेव नामके ब्राह्मणके यहा क्षत्रिय नाम-की धर्मपत्नीसे मनोहर और वेदविद्यामे प्रवीण एक विवाह योग्य अति सुन्दर कन्या सोमश्री है। निमित ज्ञानियो ने बता रखा है कि जो वेदपाठी इसे वेदविद्यामे जीतेगा वही इसको व्याहेगा। इसलिए सोमश्री को वेदविद्या मे जीतनेके लिये ये सब वेदपाठी ब्राह्मण यहाँ इकट्ठे हुए हैं।"

यदुपति वसुदेव उस सुन्दरी सोमश्रीका यश सुनकर उसे वेदविद्या में जीतने को आतुर हो उठा। पर वेदविद्या उसे आती न

थी । इसलिए मालूम करके वह उस नगरमें महा विवेकी ब्राह्मणविद्या के वेत्ता ब्रह्मदत्त अध्यापकके पास वेदविद्या पढने गया । पहले तो ब्रह्मदत्त अध्यापकने उसे जैनधर्म के अनुसार भगवान् ऋषभदेवसे प्रारम्भ होनेवाली वेदविद्याके बारेमे बताया और फिर उसने ब्राह्मणोके अनुसार वेदविद्या की उत्पत्ति बताई । राजा वसुदेवने ब्रह्मदत्त अध्यापकसे शीघ्र ही सब वेदविद्याए सीख ली और सोमश्रीको विवादमे जीतकर उससे विवाह किया । वसुदेव और सोमश्रीका परस्परमे खूब स्नेह बढा और वे दोनो बडे आनन्दसे रहने लगे । सोमश्री राजा वसुदेव की सगति से जिनराजकी महाभक्त बन गई ।

वसुदेवकी विद्याए सीखनेमे बडी रुचि थी । वह हरबात शीघ्र सीख लेता था । इन्द्रशर्मा व्यक्तिके उपदेशसे वसुदेव उद्यानमे रातको विद्या साधने लगा । कुछ धूर्तोंने उसे देखा और पालकीमे बिठाकर पिछली रातमे दूर जा डाला । वहासे चलता-चलता वह तिलक वस्तुक नगरमे पहुचा । वसुदेव उद्यानमे भगवानके मन्दिरके समीप सो रहा था कि राक्षसीविद्याका साधक नरमासभक्षक वहा आपहुचा । उसने वसुदेवको जगाकर कहा कि वह भूखा शेर है और शेरके मुहमे वह अपने आपही आगया है । महाशूरवीर वसुदेव और उसमे मुक्तोंका भयकर युद्ध हुआ । वसुदेवने उसे पछाडकर पांव तले दबा लिया । उस नरभक्षीने उससे प्राणदान मागे । वसुदेवने उससे फिर उस नगरमें न आने और वहासे चले जानेका वचन लेकर दया करके छोड दिया । वह क्रूरनरभक्षी वहासे दूर चला गया ।

दिन निकलनेपर शहरके लोगोने यह जानकर कि उस दुराचारी नरभक्षकको इस नवागन्तुक ने मारा है, वे वसुदेवको रथमे चढाकर शहरमें ले गये । वहा शहरकी बहुत सी कुलवन्ती रूपवन्ती लडकियों से उसका विवाह होगया ।

वसुदेवने वहाके लोगो से पूछा कि यह नरमासका भक्षक दुष्ट कौन है और यह किस तरह नरभक्षी बना ? तब नगरके कुछ

बडे-बूढ़ोंने वसुदेवसे कहा—"कलिंगदेशमें कांचनपुर शहरमें राजा जितशत्रु था। वह अखण्ड आज्ञावाला और प्रजाका पालक था। उसके राज्यमे जीवमात्रकी हिंसा न होती थी। समस्त देशमें सबके लिए अभयदानकी आज्ञा थी, किसी जीवको कोई भय न था। राजाका पुत्र सौदास महापापी और मासभक्षक था। राजाने उसको बहुत धिक्कारा, पर वह सबसे छुपकर महलमे मास खाने लगा। महलमे एक दिन इसके लिए बने हुए मासको बिलाव ले गया। तब रसोइये ने शहरसे बाहर जाकर एक मरेहुए बालकका मास बनाकर सौदासको खिलाया। उस स्वादिष्ट मासको खाकर सौदास बडा प्रसन्न हुआ। उसने रसोइयेसे पूछा, सच-सच बताओ यह मास किसका है? मैंने अनेक जीवोके माम खाया है, परन्तु इसका सौवा-भाग भी स्वाद उनमे न था। डरो मत, जो वात हो, वही कहो।" रसोइयेने उसे बताया कि यह बालकका मास है। तब सौदासने उसे नित्य वैसाही मास पकानेको कहा। रसोइयेने राजकुमारको समझाया कि उसके पिताके राजमे यह काम नही हो सकता और राजकुमार और रसोइया दोनो मारे जायगे। पर वह राजकुमार न माना और चोरी-छिप्पे मृत बालक मगा-मगा कर खाने लगा। कुछ समय पश्चात् राजा जितशत्रु परलोक सिधारे और राजकुमार सौदास सिहासन पर बैठा। अब राजकुमार और रसोइयेकी बन आई। रसोइयेने रसोईमे बच्चोको लड्डू बाटे। किसी-न-किसी बालकको मारकर रसोइया राजकुमारके लिए मास बनाने लगा। इससे शहरमे बच्चोकी हानि होने लगी। किसी प्रकार शहरके लोग इस रहस्य को जान गये और उन्होने राजाको देशसे निकाल दिया। अब सौदास दिनमे तो वनमे रहता था पर रातको व्याघ्रके समान यहा आता था और किसी न किसी मनुष्यको खा जाता था। वह पापी लोगो-का नाशक किसीसे भी जीता न गया। आप महाशक्तिवान हैं, आपने उसे भगाकर हमारा बड़ा उपकार किया है।"

शहरके लोग वसुदेवको वस्त्राभूषण और पुष्पमालाए देकर उसको पूजने लगे।

इसके पश्चात् वसुदेवने अचल ग्राममें समुद्रके एक बडे व्यापारीकी लडकी बनमाला से विवाह किया। फिर राजा वसुदेव ने वेदसामपुर के राजा कपिनश्रुतको युद्धमे जीत कर उसकी राजकुमारी कपिला से विवाह किया। वसुदेवके यहां उससे कपिल नामका प्रसिद्ध पुत्र हुआ। वहा रहते हुए कपिलके भाई और अपने साले अशुमत से वसुदेवकी बडी प्रीति हो गई। एक दिन वसुदेव वनमे हाथी पकडने गया था। वहा नीलयशाका ममेराभाई-नीलकण्ठ विद्याधर जो नीलयशा न मिलने के कारण इनका शत्रु बन गया था, गध हस्तिका रूप धारण करके बनमे से वसुदेवको ले उडा। महायोद्धा वसुदेवने उस नीलकण्ठ मायामय हाथीको मुक्के मारे। इस पर उस हाथीने वसुदेवको ऊपरसे एक उद्यानमे एक सरोवरमे डाल दिया। बसुदेव बिना किसी व्याकुलताके सरोवरसे निकलकर गुहानामा पुरी में गया।

गुहापुरीमे धनुर्विद्यामे प्रवीण पद्मावती राजकन्या थी। उसकी प्रतिज्ञा थी कि जो उसे धनुर्विद्यामे जीतेगा वह उससे विवाह करेगी। वसुदेवने पद्मावतीको भी धनुर्विद्यामे जीतकर व्याहा। फिर वसुदेवने जयपुरके राजाको जीतकर उसकी पुत्रीसे विवाह किया।

इसके पश्चात् वसुदेव अपने साले अश्रुमतके साथ भद्रलपुर गया। वहाके राजा पौण्ड्रके चारुहासिनी पुत्री थी। वह औषधियोके प्रभावसे पुरुषका रूप बना लेती थी। वसुदेवने उसे भी व्याहा। उससे सपौद्र पुत्र हुआ। एक रातको वासुदेव चारुहासिनी और पुत्र समेत सो रहे थे, कि अगारक विद्याधर हंसका रूप बनाकर वसुदेव को ले उड़ा। वसुदेव और अगारक की लड़ाई हुई और अगारकने वसुदेवको आकाशसे गंगामें डाल दिया।

वहांसे निकलकर प्रात वसुदेव इलावर्द्धन नगर गया, जहा एक महाजनकी दुकानपर विश्राम करने बैठ गया। महाजनने भी सत्कारपूर्वक उसे बैठनेको आसन बिछा दिया। उस समय महाजन-को इतना लाभ हुआ, कि वह उसे पुण्यधिकारी समझकर अपने घर ले गया और उससे अपनी लडकी रत्नावती का विवाह कर दिया। ये वहा बड़े सुखसे रहने लगे।

इलावर्द्धनमे रहते हुए वसुदेव एक दिन महापुर शहरमें इन्द्रध्वज पूजा देखने गया। वहा उसने नगरके बाहर बहुत से महल देखे। वसुदेवने किसीसे पूछा कि वहा इतने महल क्यों बनाये गये हैं। तब उसने वसुदेवको बताया कि वहांके राजा सोमदत्तने अपनी राजकुमारीके स्वयवर मे आनेवाले राजकुमारोके लिए ये मन्दिर बनवाये थे। पर वह राजकुमारी किसी कारण ससारसे विरक्त हो गई और आर्यिका बन गई। सब राजकुमार वापस चले गये। वसुदेवने उस बालब्रह्मचारिणी राजकुमारीको "धन्य धन्य" कहा।

वसुदेव बैठे-बैठे इन्द्रध्वज पूजा देख रहे थे कि राजा सोमदत्तकी रानी भी वहा इन्द्रध्वज पूजा देखकर महलको वापिस जा रही थी। उसी समय एक मस्त हाथी अपने बधन का थम्भ उखाडकर साक्षात मृत्युका स्वरूप बनकर मनुष्योंको मारता-मारता वहा आया। वहां बड़ा कोलाहल मच गया। स्त्रियोंके समूह डरसे इधर-उधर भागने लगे। एक लडकी हाथीके भयसे पृथ्वीपर गिर पडी। यह देखकर वसुदेव हाथीके सामने आडटा और सबकी रक्षा करके उसने हाथीको वशमे कर लिया। वसुदेवने उस मूर्छित पड़ी कन्याको धैर्य बधा कर उठाया। वसुदेवके सुखदायक कर-स्पर्श और दर्शन से वह लडकी लजा सी गई और विभ्रीभूत होगई। वसुदेव तो अपने स्थान को वापिस चला गया और उसकी धाय और सहेलिया उस लडकी को अन्त.पुर ले गई।

इस लड़कीका नाम सोमश्री था। इसके पिताका नाम राजा

सोमदत्त, माताका नाम पूर्णचन्द्रा और भाईका नाम भूरिश्रवा था। उसके स्वयम्वरमें अनेक राजा बुलाये गये। रातके समय सोमश्री अपने महल मे बैठी सोच रही थी कि उसका पति कौन होगा। उसी समय उसे जाति-स्मरण हुआ। अर्थात् अपने पूर्व जन्मकी याद आ गई और उसे स्मरण हुआ कि इस जन्ममें भी उसके पूर्वजन्मका पति ही उसका पति वह व्यक्ति होगा जो उसे मस्तहाथी से बचायगा। सोमश्रीने यह समस्त बात अपने पिता सोमदत्तसे एक द्वारपालिनीसे कहलाई। राजाने द्वारपालिनीको वसुदेव का समस्त बात बताते ओर सोमश्री से विवाह करके लाने के लिए भेजा। इस वातको सुनकर वसुदेव वडा प्रसन्न हुआ और उसने सोमश्रीसे विवाह किया।

वसुदेव और सोमश्री सुख से काल बिताने लगे। पर उनका यह सुखी जीवन बहुत दिन तक न चल सका। एक रात जब वसुदेव और सोमश्री सोरहे थे, एक विद्याधर सोमश्री को लेकर उड गया और अपनी वहन वेगवती विद्याधरी को सोमश्रीके स्थानपर छोड गया। जब राजा वसुदेव जागे तब सोमश्रीको वहा न पाकर व्याकुल होकर 'सोमश्री, सोमश्री' पुकारने लगे। सोमश्रीको रूपधारिणी विद्याधरी वेगवती बोली — "मैं आपकी अनुरागी आपकी सेवामे हू।" सोमश्रीके रूपमे वेगवतीको देखकर वसुदेवको वह साक्षात सोमश्री ही लगी। तब वसुदेवने उससे पूछा, "हे प्रिये ! तुम बाहर क्यो गई थी ?" तब वह मायावारिनी विद्याधरी सोमश्री के सदृश बोलती हुई कहने लगी, "हे प्रभो !, मुझे महल मे गरमी लगी इसलिए मैं बाहर चली गई थी।"

वेगवती विद्याधरी बडी कुशल और चतुर थी। उसने वसुदेवको सेवासे मोह लिया। वह वसुदेवके सोनेपर सोती और उसके जागनेसे पहले जाग उठती। वसुदेवको विद्याधरीके रहस्यका गुमान भी न हुआ। पर एक दिन वसुदेव किसी कारण पहले जाग उठा उसने अपनी पत्नी सोमश्री की शकल सूरत और रूप न देखे, बल्कि

वेगवती का और ही रूप देखा। तब वसुदेवने तुरन्त उसे जगाकर पूछा,—"सच बता तू कौन है और यहा इस तरह सोमश्री की तरह रहने का क्या प्रयोजन है ?"

इस पर उस मायाचारिनी विद्याधरी वेगवतीने प्रणामकर उत्तर दिया, 'हे प्रभो !' विजयार्द्धगिर की दक्षिण श्रेणीमे एक सुरनाथ नगर है। उसका राजा चित्तवेग विद्याधर है। उसकी रानी का नाम अगारवती है। उसके मानसवेग पुत्र और मैं वेगवती बेटी हू। एक दिन राजा चित्तवेग अपने लडके मानसवेगको राज देकर तप करनेके लिए बन मे जाकर मुनि हो गया। मेरे भाई मानसवेगने आपकी रानी सोमश्रीको हरलिया और उसे अपने नगरमे ले गया। सोमश्री बडी पतिव्रता अपने शीलमे अखण्ड है। मेरे भाई ने मुझे सोमश्रीको प्रसन्न करने और उसे मानसवेगके प्रति अनुरक्त करनेके लिए उसके पास छोडा। पर मैं उस शीलवती स्त्रीको डिगानेमे असफल रही और अन्त मे उसकी सखी बन गई। मैं उसके शील और सत्यके वश होगई। उसने मुझे सब वृतान्त कहने को आपके पास भेजा है। मैं कुंवारी और नवयुवती तो थी ही, आपका रूप देखकर आपपर मोहित हो गई। चित्त की विचित्र गति है। यदि आप मुझे वेगवतीके रूपमे देखते, तो मुझे स्पर्श न करते। इसलिए मैंने स्वय ही आपको वर लिया। मैं बडे कुलकी बेटी और कुवारी हू। अब आप मेरे पति और मैं आपकी पत्नी हू। जैसे आप सोमश्रीके पति हो, वैसे ही मेरे भी पति हो। ऐसा कहकर वेगवती विनम्र होगई और आखे नीचे करली। फिर उसने सोमश्री के हरणका पूरा वृतान्त बताया।

समस्त बात सुन कर यदुपति बडे खिन्न हुए, क्योकि सोमश्रीका अपहरण और वेगवतीका अदत्तादान अर्थात् बिना विवाह आना दोनो ही बाते अयोग्य और बुरी हुई। पर अब क्या बन सकता था ? अब वेगवती अपने असली रूप से वसुदेव के साथ आनन्दसे पत्नी रूपमे रहने लगी।

वसन्त ऋतु आई । एक दिन कुमार वसुदेव और वेगवती महलमें सो रहे थे, तब वेगवतीका भाई दुष्ट मानसवेग जो सोमश्री-को हरले गया था सोते हुए वसुदेवको भी ले उडा । जब वसुदेवकी आखे खुली और उसने समस्त बात समझी, तब मानसवेगको मुक्के मार मार कर कम्पायमान कर दिया । मानसवेगने वसुदेवको नीचे फेक दिया । वह गगामे जा पडा । वहा एक विद्याधर विद्या साध रहा था । सयोगसे वसुदेव उसके कधेपर आपडा । वसुदेवके प्रतापसे उसकी विद्या सिद्ध हो गई । उस विद्याधरने बसुदेवको प्रणाम किया और अपने नगरको चला गया ।

वहासे विद्याधरोकी कन्या वसुदेवको विजयार्द्धमे नभस्थल नगरमे ले गई । वहा विद्याधर ही विद्याधर थे ', वहा वसुदेवका बडे गाजेबाजेसे स्वागत किया गया, उसे फूलमालाए पहनाई गई । वहा वसुदेवका साम मदनवेगा राजकुमारी से विवाह हुआ । वे दोनो सुखसे रहने लगे । मदनवेगाने वसुदेवको इतना प्रसन्न किया कि एक दिन वसुदेवने उसे कोई वर मागनेको कहा । मदन-वेगाने कहा कि उसका पिता शत्रुके बधन मे है, कृपा कर उसे छुडा दो ।

: १० :

वसुदेव और त्रिशिखर युद्ध

मदनवेगाने राजा वसुदेवसे वर मागा था कि उसके पिता-को शत्रुके बन्धनसे छुडाओ। वसुदेव ने मदनवेगाके भाई अपने साले दधिमुखसे पूछा "तुम्हारा पिता किस तरह बन्धन मे है और वह कैसे छूट सकता है ?" तब दधिमुखने वसुदेवको यह वृतान्त बताया "हे कुमार ! नमि विद्याधरके वशमे अनेक राजा हुए हैं। कई पीढियोके पश्चात् अग्जियपुरका स्वामी मेघनाथ हुआ। उसकी पद्मश्री कन्या थी। किसी निमित्तज्ञानीने राजाको बताया कि इस लडकीका पति चक्रवर्ती होगा। नभस्तिलक नगरके राजा वज्र-पाणिने मेघनाथसे पद्मश्रीको अनेक बार विवाहके लिए मागा, पर राजा मेघनाथने अपनी लडकीका विवाह उससे न किया। इस पर वज्रपाणिने क्रोधमे आकर राजा मेघनाथसे युद्ध किया, पर वह विजय प्राप्त न कर सका और अपने नगरको चला गया। फिर राजा मेघनाथने केवली भगवानकी पूजा करके, उनसे पूछा—हे, प्रभो ! 'मेरी पुत्रीका पति कौन होगा ?" इस पर केवलीकी ध्वनिमे आज्ञा हुई कि हस्तिनापुरके कुरुवंशियोके राजा कार्त्यवीर्य महाबलवानने कामधेनुकेलिए यमदग्नि तपस्वीको मारदिया था और यमदग्निके पुत्र यमराजके समान क्रूर परशुरामने पिताके वैरी कार्त्यवीर्यको मार कर बदला लिया। इतना ही नही, परशु-रामने कई बार क्रोधसे क्षत्रियोका नाश किया। जिस समय परशु-रामने कार्तवीर्यको मारा, उस समय कार्त्यवीर्यकी पत्नी रानी-तारा गर्भवती थी। वह छुपकर निकल गई और बन में कौणिक नामक तपस्वी के आश्रममे शरणके लिए गई। वहाँ वह निर्भय होकर रहने लगी और कुछ महीने पश्चात् ताराराानीने शुभ नक्षत्र-

में आठवे चक्रवर्तीको जन्म दिया वही परशुराम को मारेगा। कौशिक तपस्वीके आश्रममें रानीताराने इस चक्रवर्तीको भूमिगृह मे जन्म दिया था, इसलिए यह सुभूमि कहलाया। सुभूमि की माता-को सदा यह भय रहता था कि कही परशुराम इस बालकको न मार दे, इसलिए उसने बडी सावधानीसे बालक को पाला। केवली-ने राजा मेघनादको बताया कि थोडे ही समय में वह चक्रवर्ती सुभूमि तुम्हारी पुत्री पदमश्रीका पति होगा। केवलीने यह भी बताया कि वह चक्रवर्ती इस समय तपस्वी के आश्रम मे है।

परशुराम क्षत्रियोके लिए यमराजके समान था। सात बार उसने पृथ्वीको क्षत्रीरहित किया और आप उसका एकछत्र महा-प्रतापी राजा बनकर उसका भोग किया है। सयोगकी बात है, कि ज्यो-ज्यो सुभूमि बडा हो रहा था, त्यो-त्यो परशुरामके घरमे अनेक उत्पात हो रहे थे। इस पर परशुरामने निमित्तज्ञानियोसे इसका कारण पूछा। उन्होने उसे बताया, "किसी स्थानमे तेरा शत्रु बडा हो रहा है।" इस पर परशुरामने पूछा कि उसे कैसे मालूम करूं। इस पर निमित्तज्ञानियो ने उसे बताया "तुमने क्षत्रियोके बडे समूह मारे हैं। जिसके भोजन करने पर मरे हुए क्षत्रियो की दाढें दूध बन जाय, वही तुम्हारा शत्रु होगा।" परशुरामने अपना शत्रु जाननेके लिए क्षत्रियोकी दाढे इकट्ठी कराई और दानशालामे रखवाई। जब भोजन करने वाले आते थे, परशुराम उनको डाढोसे भरे पात्र दिखाता, पर किसीके देखनेसे कुछ न हुआ।

मेघनाथ केवली से यह बात सुनकर उन्हे नमस्कार कर तपस्वीके आश्रममे गया और वहाँ सुभूमिको देखा। इस समय सुभूमि शस्त्र और शास्त्र सबमे प्रवीण और अपने प्रतापसे सूर्यके समान बहुत देदीप्तमान दिखाई दे रहा था। मेघनाथ सुभूमिको देखकर बडा प्रभावित हुआ और एकान्त मे उससे समस्त बात कही। और बताया--"तुम ही परशुराम शत्रुको नाश करने वाले हो। अब तुम उद्यम करो।" मेघनाथ और सुभूमि क्षत्रियशत्रु-

परशुरामके घरमे आये। वहा दानशालाके अधिकारियोने सुभूमि-को आसन पर बिठाकर क्षत्रियोकी दाढे दिखाई। सुभूमिके प्रभाव-से वे दूध बनगये। इसपर भोजनशालाके अधिकारियोने तुरन्त जाकर परशुरामको बताया कि तुम्हे मारनेवाला प्रकट हो गया है। परशुराम झटसे हाथमे अपना फरसा लेकर सुभूमिको मारने आया। सुभूमिके हाथमे भोजनका जो थाल था, वह सुदर्शन चक्र बन गया। और सुभूमिने उससे परशुरामको मार दिया।

तब मेघनाथ विद्याधरने अपनी पुत्री पद्मश्रीका विवाह सुभूमिसे किया। क्षमा और मित्रताभाव न होनेसे कार्तवीर्य द्वारा जमदग्नि, परशुराम द्वारा कार्तवीर्य और बहुतसे क्षत्री और सुभूमि द्वारा परशुराम मारे गये। यदि ये क्षमासे काम लेते और सबके प्रति द्वेषभाव के स्थान पर मित्रताभाव रखते, तो न यह शत्रुता बढती और न व्यर्थ इतने शूरवीर ही मारे जाते।"

राजा वसुदेवको मदनवेगाके भाई दधिमुखने बताया—"इसी वशमे उसका पिता विद्युद्वेग राजा हुआ। एक दिन विद्युद्वेगने अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा—"भगवन ! मेरी पुत्री मदनवेगाका पति कौन होगा ?" तब मुनि ने उससे कहा गगामे चण्डवेग नामका विद्याधर विद्या साध रहा है। रातके समय जो आदमी चण्डवेग के कधेपर चढेगा उससे चण्डवेगकी विद्या सिद्ध होगी और वही तेरी पुत्री मदनवेगाका पति भी होगा।" मुनिकी यह बात सुनकर मेरे पिताने गगाके किनारे आपको गगामे चण्डवेगके कन्धो पर पडनेपर आपसे मदनवेगा विवाहदी। पर नमस्तिलक नगरके धनी-राजा त्रिशिखर विद्याधरने अपने बेटेकेलिए मदनवेगा को मागा, परन्तु मेरे पिताने यह बात न मानी। तब त्रिशिखरने युद्धमे मेरे-पिताको पकडकर कैदखानेमे डाल दिया। अब आप अपने श्वसुरको छुड़वाने का उपाय करे। सुभूमि चक्रवर्तीने हमारे बड़ोपर कृपा कर विद्यामय अनेक शस्त्र दिये थे, आप उनको लेकर शत्रुओंको जीते। अपने साले दधिमुख से अपने श्वसुर विद्युद्वेगा के बन्दी

होनेकी समस्त बात सुनकर राजा वसुदेव श्वसुरको छुडानेकेलिए त्रिशिखरसे युद्ध करनेको तैयार हो गया। दधिमुख और चण्डवेगने वसुदेवको अनेक प्रकारके शक्तिशाली महाघातक दिव्यअस्त्र दिये, जैसे ब्रह्मयक्ष आग बरसाने वाला अग्नेयअस्त्र, वरुणाअस्त्र जो जोर की वर्षा करे, और वायु चलानेवाला अस्त्र दिये। बाधनेवाले अस्त्र और बन्धन छुडवानेवाले अस्त्र भी वसुदेवको दिये गये। वसुदेव अनेक प्रकारकी सेना तैयार कर श्वसुर परिवारके अनेक योद्धाओको साथ लेकर त्रिखिरसे युद्ध करनेको तैयार हो गया।

अपने ऊपर आक्रमण होनेकी सम्भावनाका समाचार पाकर त्रिशिखरने अपने नगरसे चलकर नभस्थलपर चढाई कर दी। राजा-वसुदेव यह बात सुनकर बडा हर्षित हुआ कि शत्रु स्वय ही बिना बुलाये उनपर चढ आया। इधरसे वसुदेव श्वसुर कुलकी सेनाको लेकर त्रिशिखरसे लडनेको उसके सामने जा डटा। राजा वसुदेव तेज घोडोके रथ पर सवार था। और उनका साला दधिमुख स्वय उनका सारथी बना। दोनो तरफ प्यादे, घुडसवार और हाथी-सवार शूरवीर योद्धा थे। शस्त्रो की चमक के सामने सूर्यकी-किरणे मन्द पड गई। हाथी घोडोके पावकी गर्दसे आकाश आच्छादित होगया। मारूबाजोकी ध्वनिसे आकाश गूज उठा।

दोनो सेनाओमे लडाई आरम्भ हो गई। शुरू मे साधारण-शस्त्र चलाए गए। बाणोमे अपने सामनेके योद्धाओके वक्तरबन्द छेदे गए, हृदय भेदे गए, सिर काटे गए, पर उनके चन्द्रमा समान उज्ज्वल यशको न भेदा जा सका। सुभटोने अपने सिर तो दे-दिए, पर अपने यशको न जाने दिया। तलवारोकी मारसे बडे योद्धा रणभूमिमे वीरगतिको प्राप्त हुए, पर उन्होने न तो पीठ दिखाई और न अपने प्रताप का ही जाने दिया। शस्त्रोकी मारसे महाज्ञानी शूरवीरोकी आखे भ्रम मे पडगई, परन्तु उनके मनमे भ्रम पैदा न हुआ।

राजा वसुदेवके साथी योद्धा चण्डवेगने त्रिशिखरके कई

शूरवीर पुत्रोको मारकर खेत किया। पहले साधारण शस्त्रोंसे युद्ध हुआ, पर जब उनसे लडाई समाप्त न हुई, तो दोनो तरफसे दिव्य अस्त्रोसे युद्ध होने लगा। पहले राजा वसुदेवने त्रिशिखरपर आग्नेय अर्थात् आग लगाने वाला अस्त्र छोड़ा। त्रिशिखरने उसके मुकाबलेमें वारूणअस्त्र चलाया, जिसने पानीकी वह वर्षाकी कि समस्त आग बुझ गई। त्रिशिखरने वसुदेवपर मोहनी अस्त्र चलाकर उसे मोहित किया। उसके प्रभावको दूर करनेके लिए वसुदेवने चित्तप्रसादअस्त्र चलाया, जिससे मोहनी समाप्त हो गई। इस प्रकार अस्त्र पर अस्त्र पर चले अन्तमे वसुदेवने माहेन्द्र अस्त्र चलाया और त्रिशिखरके सिरको छेद दिया. शत्रु राजा त्रिशिखरका मरना था कि उसकी सेनामें भगदड मच गई। और राजा वसुदेव की विजय हुई।

तब राजा वसुदेवने अपने शूरवीर योद्धाओके साथ त्रिशिखरकी राजधानी नमस्तिलकमे प्रवेश किया और वहासे अपने श्वसुर विधद्वेगको बन्धनसे मुक्त किया। इस विजय और वीरतापूर्ण कामसे वसुदेवके यशको चार चाद लग गये और वह बहुतसे दूसरे राजाओको जीतकर अधिपति बन गया।

: ११ :

राजा वसुदेव : वेगवती मिलन

त्रिशिखरको पराजित करनेके पश्चात् वसुदेव रानी मदन-वेगाके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। उनके यहा महारूपवान् और अतिबली एक पुत्र हुआ, जिसका नाम अनाव्रत था। यह पुत्र महा-विवेकी और बुद्धिमान हुआ।

एक दिन सब विद्याधर अपनी स्त्रियो सहित सिद्धकूट चैत्यालयकी वन्दनाके लिए गए। राजा वसुदेव भी मदनवेगाके साथ वहा गया। वहा विद्याधरोने बडे भक्तिभावसे प्रभुकी पूजाकी और अनेक शृगार करके अपने-अपने स्तम्भोमे लग कर बैठ गए। वे विद्याधर भिन्न-भिन्न जातियोकेथे। उनके रूप-रग और शृगार आदिको देखकर वसुदेवने मदनवेगासे उन विद्याधरोका परिचय पूछा। तब मदनवेगाने वहा उपस्थित सभी विद्याधरोकी जातिया बताई।

कुछ देरके पश्चात् सभी विद्याधर अपने-अपने स्थानोको लौट गए। वसुदेव भी मदनवेगा सहित वापस आगया। एक दिन वसुदेवने मदनवेगाको बेगवती नाम लेकर पुकारा। राजा वसुदेवकी-रानी वेगवतीका वर्णन पहले बताया जा चुका है। मदनवेगा वेग-वतीका नाम सुनकर ईर्ष्यासे क्रुद्ध होकर घर मे बैठ गई और राजा के पास न गई। उसी समय राजा त्रिशिखरकी विधवा स्त्री सूर्य-नखा ने मदनवेगा का रूपबनाकर छलसे राजा वसुदेवसे 'हा' कहा। पर उसी समय सूर्पनखा को आकाश मे वसुदेवका शत्रु मानसवेग दिखाई दिया। सूर्पनखाने यह जानकर कि यह वसुदेवका मारने वाला शत्रु है, वसुदेवको उसे सौप कर वह उड गई। और मानसवेगने उनको आकाशसे नीचे डाला और वह तिनकोके ढेरपर पड़ा और उसे कोई चोट न लगी।

वसुदेवने वहा लोगोके मुहसे जरासधका यशगान सुना और उसे मालूम हुआ कि यह राजगृह नगरहै। वह नगर मे गया और वहा जुएमे एक किरोड दीनार जीते और उनमे से एक कौडी भी अपने पास न रखकर सब दान कर दी। उस समय किसी निमित्त-ज्ञानीने जरासधको बताया कि जो आदमी ऐसा उदार दानी होगा, उसका पुत्र तुम्हारा घातक होगा। यह सुन कर जरासधने द्यूतक्रीडाके स्थानमे अपने नौकर बिठाए, जिन्होने वसुदेवको एक खालमे डालकर पहाडसे नीचे डाला ताकि वह तत्काल मर जाय। तभी वसुदेवकी पत्नी वेगवती वहा आपहुंची और उसे खाल समेत ले-चली। तब वसुदेवने जाना कि यह वेगवती है और चिन्तित हुआ कि जैसे पक्षी सेठ चारुदत्तको ले उडे थे, वैसे ही मुझको भी ले जा रहे हैं और मुझे कष्टोकी कमी न रहेगी। उसने सोचा "ससार मे बन्धुजन, भोगसम्पदा और शरीरकी कान्ति सब दुखदायक हैं। परन्तु प्राणी इस बातको समझता नही। आदमी जो पुण्य-पाप करता है, उनके फलको भोगनेवाला यह प्राणी स्वय अकेला ही है, उसमे दूसरा कोई उसका साझीदार नही है, यह आदमी अकेला जन्म लेता है और अकेला मरता है। कोई इसका साथी नही है। फिर भी यह जीव वृथा कुटुम्बका अनुराग करता है। न यह किसीका है और न कोई इसका हैं। वास्तव मे वे धीर पुरुष सुखी हैं, जिन्होने आत्म-कल्याण किया है और जो समस्त भोगोपभोगको त्यागकर मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होते हैं। हम सरीखे आदमी भोग-तृष्णा रूपी लहरमे डूबे हुए पापकर्म करनेवाले ससार समुद्रमे बारबार झकोले खाते हैं। यह ससारसमुद्र दुख रूप जल से भरा है, इसमे सुख नामको भी नही है।"

इस तरह सोचता हुआ समुद्रविजय का वीर भाई वसुदेव वेगवतीके स्थान पर पहुचा, जहा उससे वसुदेवको खालसे बाहर निकाला। विरहसे दुखी वेगवती अपने पति वसुदेवसे बहुत समय के पश्चात् मिलकर फूट-फूट कर रोने लगी। तब वसुदेवने उसे

प्यार से छातीसे लगाया और बिछडे हुए पति-पत्नी मिलकर बहुत सुखी हुए। वसुदेवने उससे पिछली सब बाते पूछी। वह कहने लगी—"जब आपको शत्रु ले उडा, तब मैंने पहाड की दोनो श्रेणियो में सब वनो और नगरोमें आपको ढूढा। फिर समस्त भारत क्षेत्रमे तलाश किया, पर कही आपको न पाया। तब ढूँढते-ढूँढते मैंने आपको मदनवेगाके पास देखा। पर मैने यह नही चाहा कि आपको उससे अलग करू। फिर त्रिशिखर की विधवा सूर्पनखा ने आपको हरा, क्योकि आपने उसके पतिको युद्धमें मारा था। वह आपको मारना चाहती थी, पर उसने आपको आपके शत्रु मानसवेगको सौप दिया। उसने आपको आकाश से नीचे डाल दिया और आपको जरासिन्धके सेवको ने खालमे बन्द करके पहाड से नीचे डाल दिया। वहासे मैं आपको ले आई। अब हम हीमन्त पर्वत पर हैं और यहा पचनन्द तीर्थ है।

वसुदेवने वेगवतीसे सब वृतान्त सुनकर बडा आश्चर्य किया। उन दोनो को साथ रहते थोडे दिनही हुए थे कि एक दिन राजा वसुदेव हीमन्त पर्वतपर अपनी इच्छासे घूम रहे थे। वहा उसने किसी विद्याधरकी एक रूपवती कन्या नागपाशसे दृढ बधी देखी। तब राजा वसुदेवने बहुत दया करके उसे नागपाशके बधनसे छुडाया। लडकीने कृतज्ञता भावसे उसे नमस्कार करके कहा "हे नाथ, आपकी कृपा से मुझे विद्यासिद्ध हुई है, इसलिए आप मेरे पति हो। मैं गगनवल्लभनगर मे राजा विद्युदष्ट्र के वश मे एक राजाकी बालचन्द्रा राजकुमारी हू। मैं नदीके किनारे पर विद्या-सिद्ध कर रही थी कि एक विद्याधरने मुझे नागपाश से बाध दिया। उससे आपने मुझे अब छुडाया है। पहले हमारे वशमे केतुमती नामकी एक राजकुमारी भी इसीभाति विद्या सिद्ध करती हुई किसी विद्याधरके द्वारा नागपाश मे बाधी गई थी, जिसे पुण्ड-रीक नामके अर्द्धचक्री पांचवे नारायणने बधनमुक्त किया था। वह केतुमती पुण्डरीक की धर्मपत्नी हुई। वैसे ही मैं भी आपकी पत्नी

अवश्य होऊगी । हे नाथ ! जो विद्या मैंने सिद्ध की है, वह देवोको भी प्राप्त होनी दुर्लभ है । इसलिए आप इसे स्वीकार करे ।" पर वसुदेवने वह विद्या स्वय न लेकर उसे बेगवतीको देनेका आदेश दिया । इस आदेशको पाकर बालचन्द्रा आकाश मार्गसे बेगवतीको अपने नगर गगनवल्लभ मे ले आई और उसे अपनी विद्या देकर निश्चित हुई ।

: १२ :

रानी रामदत्ता का न्याय

श्रीगौतम गणधरसे राजा श्रेणिकने पूछा "हे प्रभो ! विद्युदष्ट्र विद्याधर कौन था और उसकी क्या कथा है ?" तब गौतम गणधरने कहा—"गगन वल्लभ नगरमे नमिवंशमे विद्युदंष्ट्र पराक्रमी राजा था । एक दिन पश्चिम विदेहसे एक मुनिको लाकर उसने उसको बडा कष्ट दिया ।" इस पर राजा श्रेणिकने मुनिको कष्ट देनेका कारण पूछा ।

श्रीगौतम गणधरने कहा—"इस जम्बद्वीपमें पश्चिम विदेहमें गंधमालिनी देशमे वीतशोका नगरमें राजा वैजयत रहता था । उसकी रानी सर्वश्री लक्ष्मीके समाग महामनोज्ञ रूपवान थी । राजा के दो पुत्र सजयत और जयत थे । एक बार तीर्थंकर स्वयम्भु विहार करते-करते वीतशोका पुरी आये । राजा वैजयन्तने दोनों पुत्रों सहित तीर्थंकरका उपदेश सुना और साधु बनकर उनके साथ घूमने लगा । वह मोक्ष पा गया । छोटा पुत्र जयत भी पिताके तपको देखकर मुनि बन गया । तप करके उसने देव जन्म पाया । बड़ा राज-कुमार सजयत भी मुनि बन कर वीतशोका पुरीके समीप शमशानमें सात दिनका कठोर तप करने लगा । एक दिन विद्याधर विद्युदष्ट्र अपनी स्त्रियो सहित भद्रशाल बनमें घूमफिर कर गगन वल्लभ नगर को लौट रहा था । सजयत मुनिको देखते ही वह पूर्वजन्मकी शत्रुताके कारण मुनिसे क्रुद्ध होगया और अपनी विद्याके बलसे उसे उठा लिया । उस विद्याधर के सजयंत को विजयार्द्ध की दक्षिण-श्रेणीके पास वरुणागिरि के पास हरिष्वती चण्डवेगा, गजवती, कुसुमवती और सुवर्णवती पांच नदियोंके सगमपर मुनिको रातमे छोड़ा । विद्याधर घर जाकर प्रातःकाल बहुतसे विद्याधरोको इकट्ठा

करके कहने लगा—"आज रातमें मुझे एक स्वप्न आया है कि एक राक्षस हम सबको नष्ट करने आया है। इसलिए आप इकट्ठे होकर उसे मार डालो।" ऐसा कहकर वह विद्युदष्ट्र विद्याधर सब विद्याधरोंको सजयत मुनिके पास ले जाकर उसे कष्ट देने लगा। मुनियो पर जब कष्ट आता है, वे योगसे समाधि लगा लेते हैं। कष्ट टल जाय तो अच्छा, वरना वे उस कष्टको शातिसे झेलते हुए प्राण त्याग देते है। संजयत मुनिने इस कष्ट मे प्राण देकर मोक्ष पद प्राप्त किया।

इसी समय अन्तकृत केवली हुए थे। उनकी पूजाके लिए धरणीन्द्र देव आया। पर जब उसने विद्याधरोके द्वारा सजयत मुनिको कष्ट दिये जानेकी बात सुनी, तो वह उनसे बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने उनको नागपाशमें बाध कर, उनकी विद्या छीन ली और उन्हें समुद्रमे डुबानेको तैयार हो गया। उस समय सातवे—स्वर्ग का स्वामी लान्तवेन्द्र आकर धरणीन्द्र से कहने लगा, तुम इतने जीवोकी हिसा मत करो। तुम्हारी, मेरी, विद्याधर विद्युदष्ट्र और मुनि सजयंत इन चारो में परस्पर शत्रुता है और ये ससारमे भ्रमण कर रहे हैं। यह कहानी लान्तवेन्द्र देव धरणेन्द्र से इस प्रकारमे कहने लगे।

"इस भरत क्षेत्रमे प्रसिद्ध शक देश सिद्धपुर नगरमे सिंहसेन राजा और उसकी रामदत्ता रानी रहते थे। राजा और रानी समस्त कलाओ मे निपुण थे। उनके यहां निपुणमती नामकी धाय बडी निपुण थी। राजा सिंहसेन का पुरोहित श्रीभूति था। उस पुरोहितने अपने आपको सत्यवादी और निर्लोभी प्रसिद्ध कर रखा था। पर था वास्तव में वह बडा झूठा, महालोभी और ठग। इसकी स्त्रीका नाम श्रीदत्ता था। दुष्ट श्रीभूतिने जगतको ठगनेके लिए नगरके चारो ओर पाठशालाए अर्थात् धरोहरघर खोले। जगत में श्रीभूतिके नामकी ख्याति थी, इसलिए उसके विश्वाससे दूर-दूर से आकर लोग उसके पास धरोहर रखते थे।"

धरणीन्द्र ने पूछा, "फिर क्या हुआ ?" लान्तवेन्द्र देवने उसे आगे बताया, "पद्मखण्ड नगरके सुमित्र बनियेने सिंहपुरमे आकर श्रीभूति पुरोहितकी माडशालामे पाच बहुमूल्य रत्न धरोहर रखे। फिर वह सुमित्रदत्त वणिक व्यापारकी तृष्णासे प्रेरित होकर जहाजमे समुद्र यात्रा पर गया, परन्तु दैवयोगसे उसका जहाज फट गया और उसका सब माल डूब गया, परन्तु सौभाग्यवश सुमित्रदत्त वच गया। उसने सिंहपुर आकर श्रीमूर्ति पुरोहित से अपन बहुमूल्य पाच रत्न लौटानेको कहा। पर वह पुरोहित तो महा ठग और भूठा था। उसने धरोहर से इन्कार कर दिया और मुमित्रदत्त वणिक को वहाँ से खेद दिया। नगर मे पुरोहित तो सत्यवादी प्रसिद्ध था ही, सबको उसकी बात का विश्वास था। किसी ने भी उसे भूठी न कहा, उलटा सब वणिकमे ही दोष निकालने लगे। इतना ही नही, चालाक पुरोहित श्रीभूति ने उम वणिकके बारेमे यह प्रसिद्ध कर दिया, कि समुद्रमे जहाज डूबनेके कारण यह वरडाता, कुछ-कुछ बहकता है। फल यह हुआ कि जहा कही सुमित्रदत्त जाकर अपनी बात कह कर न्यायकी माग करता, वही सब लोग पुरोहितकी बोली बोलते और वणिकको भूठा कहकर धिक्कार देते। कहीं भी उसे न्याय न मिला।"

धरणीन्द्र देव ने बहुत चकित होकर पूछा, फिर उस सुमित्रदत्त वणिकने क्या किया ?"

इस पर लान्तवेन्द्रने धरणीन्द्र देव को आगे बताया, "जब सुमत्रदत्त सब जगह न्याय न मिलनेसे निराश होगया, तब उस दग्ध हृदय वणिकने अन्तमें राजाके हां दुहाई देने की सोची। वह राजभवनके समीप एक ऊचे वृक्षपर चढ़ कर जोर-जोरसे पुकारने लगा, राजा सिंहसेन महा दयावान और न्यायी है। रानी रामदत्ता बड़ी दयावन्ती है। इस नगरके सभी लोग भी भले हैं। मेरी बात सुनो और न्याय करो। इसी महीनेके कृष्ण पक्षमे मैंने श्रीभूतिको ईमानदार और सत्यवादी समझकर अपने पांच बहु मूल्य रत्न धरोहर रखे थे। पर वह महा लोभी पुरोहित मेरे रत्न देना नहीं

चाहता, उलटा मुझे ही झूठा बताता है।" इस प्रकार सुमित्रदत्त को प्रातः दुपहर और सायकाल पुकारते-पुकारते कई दिन बीत गये, पर किसीने उसकी बात पर ध्यान न दिया। एक दिन रानीको उस पर दया आगई और वह राजा से कहने लगी, "हे महाराज, पृथ्वी पर सबल और निर्बल सभी हैं। यदि राजा न्याय न करे, तो निर्बलोंकी बलवानोसे कैसे रक्षा हो? इस दुर्बल वणिकके रत्न पुरोहितने ठगे हैं, आप न्यायवान और दयावान हैं, इस लिए इसके रत्न दिलवा दीजिये।" पर राजाने रानीसे श्रीभूति पुरोहितकी बात दुहराते हुए कहा कि जहाज फट जानेसे धनके नष्ट होनेके कारण यह पागल सा हो गया हैं। वृथा चिल्ला रहा हैं। रानीने कहा, "महाराज! जो बैठा होता है, वह कभी कुछ कभी कुछ कहता है। परन्तु यह तो सदा एक ही बात कहता है। एक तो इस का समुद्रमे धन गया, दूसरे पुरोहितने इसके रत्न दबा लिए, इसलिए यह बहुत दुःखी है। आप इसका न्याय करे। रानीके कहनेपर राजाने एकान्त में श्रीभूति पुरोहितसे रत्नो के बारे मे पूछा, पर वह साफ नट गया। तब राजाने रानीको ही न्याय करने का काम सौपा। रानी बड़ी चतुर थी। उसने राजासे कहा कि आप श्रीभूति पुरोहित को जुवे मे लगाले, और वह न्याय का सब काम कर देगी।

रानी रामदत्ताने अपनी चतुर धाम निपुणमती को पुरोहित की स्त्री श्रीदत्ता के पास पांचों रत्न लानेको भेजा, पर उसने अपने पतिके आदेश अनुसार उसे यह कहकर कि वह उसे क्या जाने, उसे रत्न न दिये। तब रानी ने पुरोहितका जनेऊ जूवेमें जीता और धाम को जनेऊ देकर पुरोहितनी के पास रत्न लेने भेजा। पर फिर भी उसने रत्न न दिये। अब अन्त में रानी ने पुरोहित की नाम खुदी अंगूठी जूवे में जीत कर धामको निशानीके तौर पर देकर पुरोहितनीसे रत्न लाने भेजा। इस बार धाम रत्न लानेमें सफल हो गई। उसने रत्न रानी को दिये और रानी ने राजा को दे दिये।

फिर राजाने उन रत्नोंको दूसरे रत्नमें मिलाकर उस सुमित्रादत्त वणिक से अपने रत्न पहचानने को कहा । सुमित्रादत्त ने उनमेंसे अपने रत्न तुरन्त पहचान लिये । इस पर राजा उससे बड़ा प्रसन्न हुआ, उसका बड़ा मान आदर किया और उसे राजामान्य बनाया । राजाने उस दुष्ट ठग पुरोहित श्रीभूति को तीन दण्डों में से एक दण्ड स्वीकार करनेको कहा । या तो वह अपना सब धन दण्डमें राजाको दे या गोबर के तीन थाल खाये या पहलवान की मुट्ठीके प्रहार सहे । श्रीभूति पुरोहितने अन्तिम दण्ड पाना स्वीकार किया । परन्तु पहलवानके मुक्कोंसे उसकी मृत्यु हो गई और उसने बुरे विचारोंके फलस्वरूप मरकर राजाके भण्डार में गधमादन जातिके सापका जन्म लिया और राजाका द्रोही बन गया । राजा सिह सेन ने श्रीभूति पुरोहितके स्थानपर एक और ब्राह्मण धम्मिल-को राजपुरोहित नियुक्त किया । पर वह नया पुरोहित भी अनर्थ करनेमे लग गया ।

पाचरत्नों का स्वामी वणिक सुमित्रदत्त अपने पद्मखण्ड नगर लौट आया । वह जैन धर्म का पक्का अनुयायी बन गया और उसने बहुत धन कमाया । उसने यह इच्छा भी की कि मर कर वह रामदत्ता रानीका राजकुमार हो । पर उसकी पत्नी सुमित्रदत्ताको उसकी इच्छा से विरोध था, इसलिए वह मर कर दूसरे जन्ममे व्याघ्री हुई । जब वह वणिक सुमित्रदत्त एकदिन साधुओके दर्शनके लिए पर्वत पर गया, वहा उस व्याघ्रीने उसको मार कर खा लिया और वह वणिक रानी रामदत्ताके हां सिहचन्द्र नामका पुत्र जन्मा । रानीको सिह चन्द्रसे बड़ा प्रेम था । रानीके हां दूसरा पुत्र पूर्णचन्द्र पैदा हुआ । ये दोनों राजकुमार सूर्य-चन्द्रके समान चमकने लगे । एक दिन राजा सिंह सेन अपने भण्डारमें गया । वहा श्रीभूति पुरोहितके जीव सांप ने उसको डस लिया । विष दूर करनेके लिए गरुड़न्त्रके जाननेवाले गरुड़दत्तको बुलाया गया । उसने अपने मन्त्र-बलसे गंध मादन जातिके सब सांपोको वहां बुलाया । गरुडदत्तने

अपराधी सांपके अतिरिक्त सभी दूसरे सांपोको वहांसे जानेका आदेश दिया। अपराधी सांप वहां रह गया। गरुडदत्तने उस साप को कहा, "हे दुष्ट ! तू अपना विष शीघ्र खीच या अग्निमें प्रवेश कर।" पर राजा सिंहसेन के प्राणोंके हर्ता उस सांपने अग्निमें प्रवेश करना तो स्वीकार किया, पर राजाका विष न खीचा। अग्निमें भस्म होकर उस सांपने चमरी मृगका जन्म लिया और राजा सिंहसेन मर कर शल्लकी बन मे हाथी हुआ और वह धम्पिल राजपुरोहित उसी बन मे बन्दर हुआ।

राजा सिंहसेन की सापके डसने से मृत्यु के पश्चात् उसका बडा पुत्र सिंह चन्द्र राजा सिंहासन पर बैठा और पूर्णचन्द्र युवराज बना। दोनो भाई समस्त प्रजा को सुख से पालने लगे। यह सब कथा लान्तवेन्द्र देवने धरणीन्द्र को सुनाई।

राजा सिंहसेन का श्वसुर और रानी रामदत्ताके पिता पोदनपुर के राजा सुपूर्ण था और उसकी रानी का नाम हिरण्यवती था। ये दोनो राजा रानी जैन धर्मके बहुत भक्त थे। राजा सुपूर्ण मुनि राहुभद्र से दीक्षा लेकर मुनि बन गया और रानी हिरण्वती भी सघकी एक साध्वीके पास आर्यिका बन गई। रामदत्ता की माता आयिका ने अपने पति मुनि से राजा सिंहसेन और वणिक सुमित्रदत्त की कथा सुनी। उसे मुनि से यह जानकर बडा आश्चर्य हुआ कि राजा सिंह सेनकी मृत्यके बाद जब सिंहचन्द्र राजा बन गया, तब भी पुत्र मोह को छोडकर रामदत्ताको वैराग्य न हुआ इसलिए वह अपनी पुत्री विधवा रानी रामदत्ता को सम्बोधने और वैराग्य मार्ग अपनानेको कहने गई। रानी भी साध्वी बन गई और सिंह चन्द्रने भी ससारसे विरक्त होकर स्वामी राहुभद्रसे मुनि दीक्षा ले ली। अब उसका छोटा भाई पूर्ण चन्द्र राजा बन गया। यद्यपि उसने अपने प्राकर्मसे सब शत्रुओको वशमें कर लिया, पर वह सम्यक्त और व्रतसे रहित होने के कारण विषय भोगों में लीन हो गया।

: १३ :

संजवंतस्वामी

जन्म जन्म के सम्बन्ध

मुनि सिह चन्द्रने तप करते-करते चारण ऋद्धि पाई और उन्हें अवधिज्ञान हो गया। तब आर्यिका रामदत्ताने स्वामी सिह चन्द्रको नमस्कार करके अपने, अपनी माता और अपने पुत्रके पूर्व जन्मोकी कथा पूछी।

स्वामी सिह चन्द्रने उनके पूर्व जन्मों की यह रोचक कथा सुनाई :—

"इस भरत क्षेत्रमें कौशल देशमे वर्द्धक शहरमे मृगायण ब्राह्मण था। उसकी दो पुत्रिया मधुरा और वारूणी थी। वारुणी इतनी रूपवती और मदमई थी कि अविवेकी लोग उसे देखते ही विह्वल हो जाते थे। मरने के पश्चात ब्राह्मण मृगायणके जीवने अयोध्या नगरमे राजा अतिबलकी रानी श्रीमतीके पुत्रीका जन्म लिया और उसका नाम हिरण्यवती रखा गया। वह हिरण्यवती इस जन्ममे तेरी मा थी और पूर्वले जन्ममे तेरा पिता था। और ब्राह्मण मृगायणकी बडी बेटी मधुरा, मरने के पश्चात् रामदत्ता हमारी मा हुई और छोटी बेटी वारुणी मर कर उसी बन मे बन्दर हुआ। उसने क्रोधसे कुर्कट सापको मार दिया। वह साप जो वास्तवमें श्रीमूतिका जीव था मरनेके बाद तीसरे नर्कमें गयी। और जगराजके दातोंको हाथीदात और मोती श्रृगालपत भीलने थनमित्र बणिकको वेचे, जिन्हें उसने राजा पूर्ण चन्द्रको बेच दिया। वह राजा बणिकसे बहुत सन्तुष्ट हुआ। राजाने हाथी दांतका सिहासन बनवाया और मोतियोंका हार बनवाया। राजा पूर्ण चन्द्र उस

सिहासन पर बैठता है और हारको पहनता है । हे माता ! ससार की विचित्रता और कर्मोंका फल देखो । कौन कहा से कहा जन्म लेता है ।'' आर्यिका रामदत्ता स्वामी सिह चद्रसे यह समस्त वृत्तात सुनकर महाप्रमादी राजा पूर्ण चन्द्र के पास आई और उसे धर्मोप-देश देकर श्रावकके व्रत दिये ।

मृत्युके पश्चात् राजा पूर्णचन्द्र का जीव उसी स्वर्गमे देव पैदा हुआ जहा राजा सिह सेव का जीव गज की योनि से दान, पूजा, तप और शीलके पालनसे गया था । रामदत्ता आर्यिका भी व्रतो के प्रभावसे उसी स्वर्गमे सूर्यप्रभ नामका देव हुई और सिह चन्द्र मुनि अहिमन्द्र देव हुआ ।

रानी रामदत्ताका जीव सूर्य प्रभ देव वहासे विचयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी मे धारिणी तिलक्र नगरमे अतिबल राजा की सुलक्षण रानी के श्रीधरा पुत्री हुई । इस सूर्य प्रभ देवके जीवका स्त्री योनि-में जन्म लेनेका कारण था, कि उसने देव योनिमें मायाचार किया था, और मिथ्या विश्वास किया था । यह श्रीधरा राजकुमारी अलकापुरीके राजा सुदर्शनसे व्याही गई और पूर्णचन्द्रका जीव देव-गतिसे श्रीधराके उदरसे यशोधरा राजकुमारी जन्मी । इसका विवाह उत्तर श्रेणीमे प्रभाकर पुरके राजा सूर्यावर्तसे हुआ । रानी रामदत्ता के पति राजा सिह सेन का जीव अनेक जन्मों के बाद उसके रश्मिवेग पुत्र हुआ । ससारकी कितनी विचित्र गति है, कि राजा सिह सेनका पुत्र पूर्णचन्द्र यशोधरा विद्याधरी बनी और उसके राजा का जीत्र पुत्र हुआ । इस प्रकार पुत्रसे माता बन गई और जो रानी रामदत्ता राजा सिहसेन की पत्नी थी, वह रश्मिवेगके रूपमे श्रीधरा नाम की नानी बन गई । यह कर्मों की विचित्रता है ।

गजा सूर्यावर्त ने अपने पुत्र रश्मिवेग को राज्य देकर मुनि चन्द्रनुनिसे दीक्षा लेकर मोक्षप्राप्ति के लिए महाव्रत लिये । रश्मि-वेगकी माता यशोधरा और नानी श्रीधरा भी महा साध्वी गुणवती-से दीक्षा लेकर आर्यिका बन गई । एक दिन राजा रश्मिवेग-

सिद्धकूट चैत्यालयके दर्शन करने गया वहा हरिचन्द्र मुनिसे धर्म सुनकर उसने मुनि दीक्षा लेली और वह महाव्रत पालने लगा। वह काचव नाम की गुफा में रहने लगा।

एक दिन उस मुनि की माता और नानी दोनो आर्यिकाए उसके दर्शन करने गुफामे गई और मुनिके पास बैठो गई सयोग वश श्रीभूति पुरोहितका जीव साप, चमरी मृग, कुर्कट सर्प और नारकी जीव बनकर जन्म लेता हुआ इसी गुफामे अजगर हुआ और वह वहा उन तीनों मुनि रश्मिवेग, मा साध्वी यशोधरा और नानी साध्वी श्रीधराको निगल गया। मुनि तो मर कर आठवे स्वर्गमें अर्कप्रभ देव हुआ और अजगर मर कर चौथे नरकमे गया।

यह जन्म-जन्मके सम्बन्धों की कथा यही समाप्त न हुई। आगे पाच रत्नोवाले वणिक सुमित्रदत्त राजा सिहसेन और रानी रामदत्ताके जन्म जन्मान्तरकी कथा बनाई जाती है।

चक्रपुर नगरमें राजा अपराजित और उसकी रानी सुन्दरी रहते थे। उनके घरमे सुमित्रदत्त मर कर रामदत्ताका पुत्र सिह-मुनि व्रत पालन करके देव अहिमिन्द्र होकर पुत्र हुआ और उसका नाम चक्रायुध रखा गया। चक्रायुधकी पत्नीका नाम चित्रमाला था। राजा सिहसेनका जीव गज, देव, विद्याधर रश्मिवेग और फिर देव होता हुआ चक्रायुधके पुत्रके रूपमे जन्मा। उसका नाम वज्रजायुद्ध रखा गया।

पृथ्वीतिलक नगरमें राजा प्रियकर और उसकी रानी अतिवेगा रहते थे। उनके हा रानी रामदत्ताका जीव पहिले श्रीधरा आर्यिका हुई, फिर स्वर्गका देव होकर राजा प्रियकरकी पुत्रीके रूपमें जन्मा। उसका नाम रत्नमाला रखा गया। और उसका विवाह वज्रायुद्धसे किया गया और उनके घरमे यशोधरा आर्यिका-का जीव रत्नायुध नाम का पुत्र हुआ।

राजा चक्रायुद्ध अपने पुत्र वज्रायुद्धको राज देकर और वह

अपने पुत्र रत्नायुधको राजा देकर बारी-बारीसे मुनि हो गये। यह रत्नायुद्ध वास्तवमे पूर्णचन्द्रका ही जीव था। रत्नायुध भूठे धर्म विश्वासके कारण मदोन्मत्त रहता था। इस राजा रत्नायुधका एक अतिप्यारा हाथी मेघनिनाद था। यह हाथी एक दिन जलमे नहानेके लिए नदी पर गया। वहा एक मुनिके दर्शन करते ही उसे अपने पूर्व जन्मोका स्मरण हो गया और उसने श्रावकके व्रत धारण किये। व्रतोके कारण यह हाथी अयोग्य खाना-पानी न लेता था।

हाथीके खाना-पानी न लेनेपर राजा न समझ सका कि क्या कारण है। उसने वज्रदत्त मुनिसे कारण पूछा तब मुनिने कहा —

"एक चित्रकार नामक नगरमे राजा प्रीतिभद्र और उसकी रानी सुन्दरी रहते थे। उनके पुत्रका नाम प्रीतकर था। राजाके मन्त्रीका नाम चित्रबुद्धि, मन्त्रीकी धर्म पत्नीका नाम कमला और उनके पुत्र का नाम विचित्रपति था। राजा का पुत्र प्रीतकर और मत्रीका पुत्र विचित्रपति दोनो ही स्वामी श्रुत सागरसे तप का फल सुनकर तरुण अवस्थामे ही मुनि हो गये। ये दोनो अनेक प्रकारके कठोरतप करते हुए और निर्वाण क्षेत्रोके दर्शन करते हुए अयोध्याजी आये। मन्त्रीका साधु पुत्र नगरमे भोजन करने गया। वहा अति सुन्दरी बुद्धि सेना नामकी एक वेश्याको देखते ही कर्मयोगसे वह निर्लज्ज भ्रष्ट हो गया। पर वेश्याने यह जानकर कि वह निर्धन है, उसे स्वीकार न किया।

अयोध्याका राजा गधमित्र बडा दुराचारी और मासभक्षी था। विचित्रपति साधुने भ्रष्ट होते ही, साधु वेश छोड़ दिया और राजाकी नौकरी करली। मन्त्रीका बेटा मांसके व्यजन बनानेमे बहुत कुशल था। राजाने उसके खानोसे प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार मागनेको कहा। तब विचित्रपति ने वह बुद्धि सेना मांगी। उस असयमी वेश्याका सेवन करके वह मासाहारी मरकर सातवें नरकमें गया। वहासे निकल कर ससारमे बारम्बार जन्म लेता हुआ उनका

जीवन यह हाथी बना और साधुके दर्शनसे इसे अपने पूर्वले कर्मोंका स्मरण हुआ और अब वह अपने पाप कर्मोकी निन्दा करके कर्म-पालन करके शात है। मुनिके मुखसे अपने हाथीके पूर्व जन्मोंका हाल सुनकर राजा रत्नायुध और उसका हाथी मेघनिनाद मिथ्या विश्वासोको त्याग कर श्रावक धर्मको पालने लगे।

"अजगरका जीव चौथे नरक गया था। वहासे निकलकर दारूण भीलकी सी मन्दी से अतिदारुण पुत्र हुआ। और राजा सिहसेन का जीव बज्रायुद्ध मुनि प्रिपगुखड बनमे ध्यानमे विराज रहा था, कि उनको इस महापापी अतिदारुण भीलने कष्ट दिया। मुनि तो कष्ट सहकर मर कर मोक्ष गया, पर वह भील अतिदारूण मरकर सातवे नरकमे गया और वहा उसने मुनि हत्याके पापके कारण भयंकर दुःख सहे। वज्रायुद्ध की रानी रत्नमाला अपने पुत्र रत्नायुद्धके मोहवश आर्यिका न हो सकी। और रत्नायुध और रत्नधारा दोनो मा-बेटा अणुव्रतोके पालनेके फलस्वरूप सोलहवे स्वर्गमे देव हुए।

"घातकी खण्ड दीपमे पूर्व मेरुसे पश्चिमविदेह मे गन्धिला देशमे अयोध्या पुरी है। अयोध्याके राजा अरहदास की दो धर्म पत्निया सुव्रता और जिनदत्ता थी। उन दोनो रानियोके वे सोलहवे स्वर्ग के देवता रत्नायुध और रत्नमाला के जीव क्रमश सुव्रताके बीतमय बलभद्र हुआ और रानी जिनदत्ताके विभीषण वासुदेव हुआ। छोटा पुत्र विभीषण तो पहले नरकमे गया और बडा भाई वीतभय मुनि अनिवृत्तिके पास तप करके स्वर्गमे इन्द्र हुआ। वह मैं हूं और मेरा नाम आदित्यप्रभ है। मैंने पहले नरकमे विभीषणके जीवको बहुत समझाया। उसने सम्यक्त प्राप्त किया। वह नरकसे निकलकर जम्बूद्वीपके विदेहमे गधमालिनी देशमे विजयार्द्ध गिरिमे राजा श्रीधर्मा की रानी श्रीदत्तासे श्रीदाम पुत्र हुआ, जिसे मैंने उपदेश दिया। फिर वह श्रीदाम अनन्तमति स्वामीसे साधुके व्रत लेकर मरने के पश्चात् पाचवे स्वर्गमे इन्द्र हुआ। और भील का

जीव नरक से निकलकर वहा साप हुआ । वह मर कर पहले नरकमें गया । वहांसे निकलकर तिरयच गतिमे बहुत बार जन्म लेता हुआ दुखी रहा । फिर उसने एरावती नदीके किनारे भूतरमण वनमें माली तपस्वीकी स्त्री कनककेसी से मृगश्रंग नामका तापस पुत्र हुआ । यह मृगश्रप मृगके समान मूर्ख पचाजित तप करने लगा । एक दिन मृगश्रंगने चन्द्रप्रभ विद्याधरको आकाशमें जाते देखकर मनमें सोचा कि मैं भी तपके प्रभावसे विद्याधरोकी विभूति पाऊँ । परिणाम यह हुआ कि मृगश्रग मर गया और उसका जीव वज्रदंष्ट्र विद्याधर और उसकी स्त्री विद्युत प्रभाके हा विद्युदष्ट्र नाम का विद्याधर हुआ । और वज्रायुध मुनिका जीव सर्वार्थ सिद्धि गया और वहासे सजयत मुनि बना । और तू मनेन्द्र वहासे सजयतका भाई जयंत हुआ और मरकर तू धरणेन्द्र हुआ ।

श्रीभूति पुरोहित जिसको सिहसेनने एक जन्ममे मारा था । उसने बहुत जन्मो मे वैर का बदला लिया । राजा सिहसेन गजके जन्म के वैर छोड़कर सजयन्तके जन्ममे सिद्ध हुआ । और तू वैरके योगसे बार-बार जन्म लेरहा है । इससे हे धरणेन्द्र । तू वैर की बुद्धि को छोड दे । यह वैर भाधना आवागमनको बढानेवाली है । इसलिए तू किसी से वैर मत कर, और मिथ्यात्व छोड दे ।"

इस प्रकार आदित्यप्रभ देवने धरणेन्द्र को समझाया । धरणेन्द्रने वैरका त्याग कर दिया और सम्यक्त्व ग्रहण किया । धरणेन्द्रने विद्याधरोको जीवनदान तो दिया, पर उनकी विद्या खण्डित कर दी, जिससे वे परकटे पक्षीके समान होगये । विद्याहीन विद्याधरोने धरणेन्द्र से विनती करके पूछा "हे देव ! हमे विद्याकी सिद्धि कैसे हो ?" इसपर धरणेन्द्रने उन्हें बतायाकि तुम सब विद्याधर सजयतकी विशाल प्रतिमा हिमवन्त पर्वतपर स्थापित करो और प्रतिमा के चरणो के पास तप करो । इससे तुम्हें चिरकालमे विद्या की सिद्धि होगी पर विद्युदष्ट्र की सतानकी तीन विद्याएं सिद्ध न होगी । विद्याधरोंने धरणेन्द्रको नमस्कार किया और उसके

आदेशानुसार हिमवन्त पर्वतपर संजयत स्वामी की स्वर्ण रत्नमई प्रतिमा स्थापित की।

लातवेन्द्रका स्वर्गसे मथुरामे राजा रत्नवीर्यकी रानी मेघमालाके मेरु नामका पुत्र हुआ। उसे ही राजाकी दूसरी रानी अमित प्रभाके धरणेन्द्रका जीव मन्दर नाम का पुत्र हुआ। दोनो भाई मेरु और मन्दर तरुण अवस्थामे ही संसारको त्याग कर श्रेयास नाथ तीर्थंकर के शिष्य हुए। बड़ा भाई मेरू केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गया और छोटा भाई मन्दर गणधर हुआ।

यह सजयत स्वामीके चरित्रकी प्रसिद्ध कथा है।

१४.

राजकुमार मृगध्वज और भैंसा

श्री गौतम गणधर राजा श्रेणिक से कहने लगे, "हे श्रेणिक, अब मै तुम्हे वेगवतीसे अलग होनेके बाद का हाल सुनाता हू। वेगवतीके वियोग मे दुखी वसुदेव बन-बन घूमता हुआ, तापसियो-के आश्रम मे पहुचा। वे तापस राजकथा, युद्धकथा और कामकथा मे आसक्त थे। यदुपति वसुदेव उनसे कहने लगे, आप कैसे तापस है, जो इन विषयोकी चर्चा करते हो? ये धर्मकी कथाए नही है। तपस्वी तो तप करते है, मौन रहते है और मोक्षमार्गपर चलते है। ये कथाये तुम्हारे योग्य नही है।" इस पर उन तापसोने कहा, "हे यदुपुरुष! हम नवदीक्षित है। इसलिए चित्तकी वृत्ति चचल है और मौन रहा नही जाता।"

फिर उन्होने वसुदेवको अपने तपस्वी बननेकी यह कथा सुनाई—

"यहाँ श्रीवास्ती नगरीका पराक्रमी राजा ऐणीपुत्र था और उसकी एक पुत्री प्रियग सुन्दरी थी। वह बहुत सुन्दर थी। जब वह विवाह योग्य हुई, तब उसके पिताने उसका स्वयम्वर रचाया। उस स्वयम्वरमे हम सब बडे-बडे राजा बुलाये गये। पर उस राजकन्या-ने स्वयम्वर मे किसीको भी न चुना। इसपर हम राजाओने दुख अनुभव किया और क्रुद्ध होकर राजा ऐणीपुत्र से युद्ध करने को तैयार हो गये। परन्तु जिस प्रकार एक सूर्य हजारों मनुष्यो के नेत्रोको सकुचित कर देता है, वैसे ही उस एक राजा ऐणीपुत्र ने हम सबको युद्धमे शीघ्र ही क्षुभित और परास्त कर दिया। कुछ

स्वाभिमानी राजा तो रणमे लडते हुए वीरगतिको प्राप्त हुए, पर हम जैसे कुछ राजा युद्धसे भागकर वनमे आ बैठे और तापस बन गये। पर हम धर्मका स्वरूप नही जानते, इसलिए आप हमे धर्मका उपदेश दे।"

"राजा वसुदेवने उन्हे मुनिधर्म और श्रावक धर्मका उपदेश दिया और कहा कि यह दोनो प्रकारका धर्म ही मनुष्यके लिए कल्याण-कारक है। राजा वसुदेवके धर्मोपदेशसे वे आपसमें सन्तुष्ट होकर अपनी यथाशक्ति व्रत लेकर अपने-अपने स्थानको चले गये।

राजा वसुदेव प्रियगसुन्दरी का हाल सुनकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे श्रीवास्ती नगरी गया। उसने नगरीके बाहरी उद्यानमे कामदेवके मन्दिरके अगले भागमे स्वर्णका तीन पावका कृत्रिम भैंसा देखा। इस विचित्र भैंसेको देखकर जब वसुदेवने किसीसे उस भैंसे का हाल पूछा, तब एक वृद्ध पुरुषने वसुदेवको बताया, "हे आर्य ! इसी नगरीमें इक्ष्वाकुवशी राजा 'जितशत्रु' का पुत्र मृगध्वज और सेठ कामदत्त रहते थे। एक दिन सेठ कामदत्त गोशाला देखने आया। तब एक दीन-हीन छोटासा भैंसा सेठके पावपर आ पडा। तब सेठ कामदत्तने अपने ग्वालेसे पूछा कि यह क्या बात है। तब ग्वालेने उत्तर दिया, "जिस दिन यह भैंसा जन्मा, उसी दिन वह मेरे पांव पड़ा, जिससे मुझे इसपर बड़ी दया आयी। मैने वनमे एक मुनिको नमस्कार करके पूछा, "हे प्रभो! इस भैंसेपर मेरी अति करुणा का कारण बताइए।" मुनिने उत्तर दिया, "तेरी भैंसके पेटसे इस भैंसेने पाच बार जन्म लिया और तूने पाचों बार मारा। छठी बार इस भैंसके पेटसे इसने फिर जन्म लिया, तब तुम्हें देखकर इसे अपने पिछले जन्मोका स्मरण हुआ और इससे डरकर तेरे पाव पडता है कि तू अब मुझे मत मार।" मुनिकी यह बात सुनकर मैंने इसे पुत्र समान पाला। अब भी यह जीने के लिए तुम्हारे पांव पडता है। ग्वालेके यह वचन सुनकर सेठ कामदत्त दया करके भैंसेको नगरमे

लेआया। और राजासे उसे अभय दान दिलाया। पर राजा जितशत्रुके पुत्र मृगध्वजने पूर्व जन्मके वैरसे भैंसेका एक पांव तोड़ डाला। राजा राजकुमार मृगध्वज के निर्दयतापूर्ण कामसे बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने राजकुमारको मारनेकी आज्ञा की। राजाकी इस आज्ञा को सुनकर समस्त दरबारियो मे चिन्ता पैदाहो गयी। पर राजाका मन्त्री बड़ा बुद्धिमान् था। वह छल और चतुराईसे राजकुमार को वनमे लेगया। राजकुमारने वनमें एक मुनिके दर्शन किये और उनके उपदेशको सुनकर ससारसे विरक्त होकर मुनिदीक्षा लेली। इधर वह भैंसा पाव टूटनेके बाद अठारहवे दिन शुभ भाव करता हुआ मर गया। राजकुमार मृगध्वज भी मुनि बननेके पश्चात् बाईसवे दिन अतिशुभ ध्यानके प्रभावमे केवली हुआ। सभी देव, मनुष्य, चारो योनियोके जीव और राजा जितशत्रु भी केवलीके दर्शन-पूजन के लिए आये।

तब राजाने राजकुमार मृगध्वज और भैंसेके वैरका कारण पूछा। केवली मृगध्वजने उत्तर दिया "पहले नारायण त्रिपृष्ठका शत्रु अलकापुरी का राजा अश्वग्रीव विद्याधरोका राजा और पहला प्रतिनारायण था। राजा अश्वग्रीव का मन्त्री हरिस्मश्रु प्रसिद्ध तर्कशास्त्री पडित था। पर था वह एकान्तवासी और परलोकको न मानने वाला। वह प्रत्यक्ष दिखने वाली बातको ही प्रमाण मानता था, परोक्ष बातको प्रमाण नही मानता था। वह जीवके दृष्टिगोचर न होनेके कारण उसे भी न मानता था। वह पाप-पुण्य तथा परलोकको भी न मानता था। उसका कथन था कि यह देव, नारकी, मनुष्य और दूसरे जीवोंका विकल्प अज्ञानियों ने उठा रखा है। उसकी मानता थी कि जब परलोक है ही नहीं, तब उसके लिए सयम पालना वृथा ही भोगोंका नाश करना है। उसे कुकथाओं में रुचि थी, सदा उन्हे ही सुनता था और भोगादि में आसक्त रहता था। ऐसा धर्मविमुख बुरी चेष्टा वाला वह मन्त्री था। जब त्रिपृष्ठ

नारायण और अश्वग्रीव प्रति नारायण मे युद्ध हुआ, तब त्रिपृष्ठ ने तो अश्वग्रीव को मारा और विजय नाम के बलभद्र ने हरिस्मश्रु मन्त्री को मारा। राजा अश्वग्रीव और मन्त्री हरिस्मश्रु मर गये और दोनोंके जीव नरक गये। बहुत काल तक वे दोनों जगह-जगह जन्मते-मरते रहे। अब अश्वग्रीवका जीव तो मै मृगध्वज राजकुमार हुआ और हरिस्मश्रुका जीव यह भैसा हुआ। पहले जन्म के किसी दोषके कारण मुझे इसपर क्रोध हुआ और मैंने इसकी टांग तोडी थी। अब वही भैसा मरकर अच्छे भावोसे मरनेके कारण लोहित नाम का महा असुर होकर मेरी बन्दना के लिए आया है।" आगे केवलीने कहा— "हे राजन्! इस लोकमें सब जीवोसे मित्र भाव रखना। क्रोध आदमीको अन्धा कर देता है। इसलिए मोक्ष चाहने-वाले व्यक्तिको क्रोधको वशमे करके शात भावको अपनाना चाहिए।"

केवलीके उपदेशको सुनकर राजा और दूसरे स्त्री-पुरुषोने दीक्षा लेकर साधु-धर्म अपनाया। और वह महिषासुर भी कपट रहित हो गया। केवलीका उपदेश सुनकर सब उन्हे नमस्कार करके अपने-अपने स्थान को गये। और मृगध्वज केवली अपनी आयु पूरी करके परमधामको सिधारे। मृगध्वज और उस (भैसे) का चरित्र सुनने और उससे शिक्षा लेने योग्य है, क्योकि उससे धर्मपर सच्चा विश्वास उत्पन्न होता है।

: १५

बन्धुमती; प्रियंगसुन्दरी और ऋषिदत्ता

केवली मृगध्वजके दर्शन करनेके पश्चात् सेठ कामदत्त अपने घर लौट आया । उधर चन्द दिनो पश्चात् केवली मृगध्वजने मोक्ष प्राप्त किया । सेठ कामदत्तने नगरके बाहर अपने मन्दिरके आगे स्मारक रूपसे केवली मृगध्वज की प्रतिमा स्थापित की और उसके ही निकट तीन टागके भैसे की मूर्ति स्थापित की । सेठ कामदत्तने इसी मन्दिरके पास कामदेव और रति की मूर्तिया भी स्थापित की । इसलिए जो दर्शक यहा आते है, उन्हे मृगध्वज और भैसेके दर्शनसे शिक्षा मिलती है ।

उसी सेठ कामदत्त के वशमे इस समय सेठ कामदेव है, उसकी रूप-यौवनसे पूर्ण चन्द्रवदनी पुत्री बन्धुमती है । इस लडकीके पिता ने निमित्त ज्ञानीसे पूछा था कि इस कन्या का पति कौन होगा । तब उस निमित्त ज्ञानीने उस सेठको बताया कि जो आदमी इस मन्दिरके किवाड खोलेगा, वही इसका पति होगा । वृद्धकी यह बात सुनकर यदुपति राजा वसुदेव कामदेवके मन्दिरके द्वारपर गया । उसके द्वार बत्तीस आगल मूसलियोमे बन्द थे । राजा वसुदेव-ने द्वारोको इधर-उधरसे देखकर अपनी चतुराईसे झटसे उन्हे खोल दिया । फिर राजाने मन्दिरके अन्दर जाकर जिन भगवान् का दर्शन-पूजन किया । बाहर आकर उसने केवली मृगध्वज, भैसे, कामदेव और रति की मूर्तिया देखी ।

इतने मे सेठ कामदेवको वसुदेवके द्वारा मन्दिर के द्वार खोले जानेकी सूचना मिल गयी । इससे हर्षित होकर सेठ कामदेवने अपनी पुत्री बन्धुमतीका विवाह वसुदेवसे कर दिया ।

बन्धुमती का पति वसुदेव रतिपतिसे भी अधिक सुन्दर रूपवान है, यह बात समस्त नगर मे प्रसिद्ध हो गयी । राजाके रनिवासके स्त्री-पुरुष और राजकुमारी प्रियगसुन्दरी भी सेठके महलमें राजा वसुदेवको देखने गयी । राजकुमारी प्रियगसुन्दरीके लिए तो वसुदेव उस श्रीवास्ती नगरी मे आया ही था । बन्धुमतीसे तो सयोगवश ही पहिले विवाह होगया । वसुदेव को देखते ही प्रियगसुन्दरी उसपर ऐसी अनुरक्त तथा मोहित हुई कि वह जीजानसे उसकी होगयी ।

प्रियगसुन्दरी और वन्धुमती दोनो सखिया थी । प्रियगसुन्दरी ने उत्सुकतावश उससे उसके पति की प्रवीणताकी बाते पूछी । वसुदेव-की प्रवीणता तथा गुणोकी बाते सुनकर तो प्रियगसुन्दरी और भी बेचैन हो उठी । अब उसे खान-पान कुछ भी नही भाता था ।

एक दिन राजकुमारी प्रियगसुन्दरी अभिमान और लज्जाको छोड वसुदेवसे मिलनेकी तीव्र इच्छासे उसके द्वारपर पहुच गई । वसुदेव राजकुमारीके आनेकी सूचना पाकर बडा चिन्तित हुआ कि अपनी इच्छासे आनेके कारण यह राजकुमारी आदरके योग्य नही है । उसको मारना भी स्त्री हत्याके कारण अनुचित था । वसुदेवने समय टालनेके बहाने प्रियगसुन्दरीको बन्धुमतीके महलमे किसी अलग कमरेमे सुला दिया और स्वय बन्धुमतीवाले कमरेमे सो गया ।

रातमे एक विचित्र घटना हुई, जिससे वसुदेवको बडा आश्चर्य हुआ । ज्वलनप्रभा नामकी नागकुमारी देवी वसुदेवके कमरेमें अचानक आई । उसके नागका चिह्न था और उसके आभूषणो की कातिसे समस्त कमरा प्रकाशित होरहा था । वसुदेवने उससे उसका परिचय पूछा । देवी प्रियवादिनी थी और मीठी बाते करनेमें बड़ी प्रवीण थी । उसने वसुदेवको बताया, "हे धीर वीर ! मेरे आनेका विशेष कारण है ।" वसुदेव ने पूछा—"क्या ? देवी, बताइए,-क्या कारण है ?" देवी कहने लगी—"चन्दनवन नामक नगरमे अति-

पराक्रमा राजा अमोघदर्शन, उसकी रानी चारुमती और उसका पुत्र चारुचन्द्र थे। राजकुमार महानीतिवान्, बलवान्, पुरुषार्थी और नवयौवनसम्पन्न था। उस नगरमे रंगसेना बड़ी गुणवान् और कलावती गणिका थी, जिसकी पुत्री कामपताका अपने नामके अनुसार कामकी ध्वजाके समान सुन्दर थी। राजा अमोघदर्शन यज्ञमार्ग पर श्रद्धा करने लगा। और उसके दरबारमे कौशिकादि अनेक जटाधारी तापस आये। राजाकी आज्ञासे कामपताका नृत्य करने लगी और शीघ्र उसने सब दर्शकोके मनको मोहित कर दिया। फलपत्रके आहारी कौशिक तापसका मन भी विचलित होकर कामपताका पर अनुरक्त होगया। पर यज्ञ विधानसे निवृत्त होते ही राजा अमोघदर्शनके पुत्र चारुचन्द्रने कामपताकाको अंगीकार कर लिया। तब कौशिक तापसने राजाको अपना भक्त समझकर कामपताका अपने लिए माँगी। राजाने उसको कहा कि राजकुमारने उस लडकी को विवाह लिया है, इसलिए वह कामपताकाको उसे देने मे विवश है। तब कौशिक तापसने राजासे कहा कि वह साप होकर राजाको डसेगा। इस प्रकार क्लेश करके वह तापस चला गया। तब राजा डर गया और वह राजकुमार चारुचन्द्रको राज देकर रानी चारुमती सहित तापस होगया। सयोगवश रानीको एक-दो मासका गर्भ था, जिसको कोई भी न जानता था।'' राजा वसुदेव देवीकी बात बडा चकित हुआ सुन रहा था और सोच रहा था कि देवीके असमय यहाँ आनेसे क्या सम्बन्ध है। देवी उसके मनकी आशकाको ताड गयी और बोली, "राजन्! धीरज रखो। मैं शीघ्र अपने यहाँ आनेका उद्देश्य आपको बताऊगी, पर जो मै कह रही हूँ, वह असगत नही है। जरा ध्यान से सुनो।'' राजा वसुदेवने कहा, "हा, हा, कहो। मै ध्यान से सुन रहा हूँ।'' तब देवी ज्वलनप्रभाने आगे कहा, "तापनी के आश्रम मे कुछ समय पश्चात् चारुमतीने एक पुत्री को जन्म दिया, जिसका नाम ऋषिदत्ता रखा गया। जब यह लडकी बडी हुई तो एक दिन वनमे एक चारण मुनिके उपदेशसे

उसने जिन धर्मपर श्रद्धा की। जब ऋषिदत्ता यौवन अवस्थाको प्राप्त हुई, तो बनदेवीके समान सबके मनो और आंखोंको मोहने लगी। इसके पश्चात् एक दिन श्रीवास्ती नगरीका राजा शातायुध का पुत्र शीलायुध वहाँ तापसीके आश्रममे जापहुचा। ऋषिदत्ताने उसे जलपान कराया। वे दोनो रूप-यौवनमे समान थे। आश्रममें कोई था नही। आश्रम की चिरकाल की मर्यादा को तोड़ दोनो प्रेम क्रीडामे प्रवृत्त हो गये। कुछ समय पश्चात् जब राजकुमार शीलायुध अपने नगर को जाने लगा, तब वह तापस-कन्या भयसे उससे कहने लगी, "हे नाथ! यदि मुझे कदाचित् गर्भ रह जाय, तो बताओ मैं क्या करू?" राजकुमार शीलायुधने उसे आश्वासन देते हुए कहा—"हे प्रिये! तुम व्याकुल मत होओ, मै श्रीवास्ती नगरीके इक्ष्वाकु-वशी राजा शान्तायुध का राजकुमार शीलायुध हूँ। तुम पुत्रसहित मेरे पास आ जाना।"

"इस प्रकार ऋषिदत्ताको धैर्य बधाकर उसे छाती से लगाकर राजकुमार शीलायुध आश्रमसे विदा हुआ। कुछ समय पश्चात् जब ऋषिदत्ताके माता-पिता अमोधदर्शन और चारुमती आश्रमको लौटे, तब ऋषिदत्ता से सब बात सुनकर उन्होने उसे धिक्कारा और निर्लज्ज कहा।" वसुदेव के यह पूछनेपर कि आगे क्या हुआ, देवी कहने लगी, "हुआ वही जो होना था। ऋषिदत्ताने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया जो अपने पिता के समान था। पर वह बेचारी ऋषिदत्ता प्रसूति समय ही मर गई।"

"यह तो बडे दुःखकी बात है", वसुदेवने कहा। देवी ज्वलनप्रभा ने कहा, "राजन्! दुःख की बात तो अवश्य है। पर ससारमें जीवन-मरण, यश-अपयश और हानि-लाभ सब कर्माधीन हैं। इनमें किसी का बस नही चलता।"

"फिर उस नवजात शिशुका पालन-पोषण कैसे हुआ?"

राजा वसुदेवने उत्सुकतापूर्वक पूछा। ज्वलनप्रभा देवीने उत्तर दिया, "आगे जो कुछ हुआ वह पहलेकी बातोसे भी अधिक आश्चर्यजनक है। ऋषिदत्ता मरकर चारण मुनिके उपदेश और जिनधर्मकी श्रद्धाके प्रभावसे ज्वलनप्रभा नागकुमारी हुई। वही मैं देवी हूँ। अपने अवधिज्ञानसे मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातोका ज्ञान हुआ और मैं दया करके उस नवजात शिशुके स्नेहवश वनमें अपने माँ-बाप और बालक पुत्र के पास गयी। मेरे माता-पिता शोकसे तप्तायमान थे। मैंने पहले उन्हें धैर्य बधाया। फिर उस पुत्र बालकको गोदीमे उठाया और हिरनीका रूप धारण करके अपने दूधसे उस बालकका पालन-पोषण करके बडा किया। इधर कौशिक तापसने मरकर साप होकर मेरे पिता अमोघदर्शनको पूर्वजन्मके वैरके कारण डस लिया। उसे मैंने अमोघमन्त्रसे निर्विष किया, अमोघदर्शनके क्रोधको धर्मोपदेश से शान्त किया और क्षमाशील किया। राजा मरकर धर्म-प्रभाव से उत्तम गतिको गया।"

देवी ज्वलनप्रभाने आगे कहा, "फिर मै ऋषिदत्ता ! तापस कन्याका रूप बनाकर उस पुत्रको लेकर राजा शीलायुधके दरबारमे गयी। मैंने कहा, "हे राजन् ! यह ऐणीपुत्र आपका पुत्र राजलक्षण-युक्त है। इसे आप स्वीकार करे।" राजा शीलायुधने उत्तर दिया, "मैं तो अपुत्र हूँ। हे तापसनी, बताओ, आपने यह पुत्र कहाँ पाया ? तब मैने उसे समस्त वृत्तान्त आद्योपान्त बताया। राजाने उस लडकेको ले लिया। मैने प्रसन्न होकर राजा शीलायुधके प्रताप और वैभवको खूब बढाया, क्योकि हम देवी-देवताओके लिए कुछ भी कठिन नही है। राजाको भी मैंने जैन धर्मका उपदेश दिया। कुछ समयके पश्चात् राजा शीलायुध अपने पुत्र ऐणीपुत्रको राज्य सौपकर स्वयं मुनि हो गया और फिर स्वर्ग गया। राजा ऐणीपुत्रके घर प्रियग-सुन्दरी महासुन्दर राजकुमारी हुई, जिसने अपने स्वयम्वर मे किसी भी राजकुमारको पति रूप मे न चुना और ससारके विषय-भोगोंसे

विरक्त-सी रहने लगी। पर उसने एक दिन सेठ कामदेवकी लडकी और अपनी सहेली बन्धुमती के साथ आपको देखा। आपको देखते ही प्रियगसुन्दरी आपपर इतनी मुग्ध हुई कि उसने खाना-पीना तक त्याग दिया और एक लडकी के महागुण अभिमान तक को छोडकर स्वय आपके पास चली आयी। आप इसे स्वीकार करे"।

राजा वसुदेव ने ज्वलनप्रभा देवी से कहा, "देवी! आप ही बतायें, मै एक अदत्ता लडकी को कैसे स्वीकार कर सकता हू। यदि उसका पिता प्रसन्नता से इसे मुझे विवाह मे दे, तो मैं ले सकता हूं।" देवी ने कहा, आपकी "यह आशका व्यर्थ है। मै इसके कुल की अधिष्ठता हू। यह राजा ऐणीपुत्र पूर्वजन्मका मेरा ही पुत्र है। जब मैं स्वय इस प्रियगसुन्दरी को दे रही हूं, तब समझ लो कि इसके माता-पिता ने दी है और यह अदत्ता भी न रही।" इतना कहकर देवी ने राजा वसुदेवके हाथमे प्रियगसुन्दरीके हाथको पकडा दिया। उनका पाणिग्रहण हो गया। इसके पश्चात् देवीने राजासे कहा कि वह अमोघदर्शन है, उसका दर्शन व्यर्थ नही जाता, कोई वर मागे।" राजाने उससे कहा कि जब कभी वह देवीका स्मरण करे, तभी उसकी सहायता को आजाय। देवी वचन देकर अपने स्थान को चली गयी।

फिर राजा वसुदेव ने कामदेवके मन्दिरमे प्रियगसुन्दरीसे गधर्व विवाह किया और वे दोनों प्रियगसुन्दरीके महलमे प्रेमपूर्वक सुखसे रहने लगे। राजा ऐणीपुत्रने देवीके द्वारा दोनोंके किये गये विवाह की बात सुनते ही प्रसन्न होकर लोकमें प्रतिष्ठा के लिए इनका विधिवत् प्रकट विवाह कर दिया।

इसके पश्चात् राजा वसुदेव अपनी दोनो नववधुओं बन्धुमती और प्रियगसुन्दरी के साथ आनन्दपूर्वक दाम्पत्य जीवन बिताने लगे।

१६

प्रभावती

कार्त्तिक पूर्णिमाकी चादनीमे रात जगमगा रही थी। राजा वसुदेव और प्रियगसुन्दरी अपने महलमे निद्रामग्न थे। किसी कारण-वश वसुदेव जाग उठे और साक्षात् लक्ष्मी-सी एक रूपवती कन्या-को अपने सामने खडी देखकर उन्होने उमसे पूछा, "हे कमल नेत्रे ! "तुम कौन हो ?" लडकी यह कहकर कि वह जो कोई है, उसे आप जानोगे ही, महलके बाहर चली गई। राजा भी प्रियगसुन्दरीको अकेली छोडकर बाहर लडकीके पास चले गये।

तब लडकीने राजा वसुदेवसे कहा, "भरत क्षेत्रमे विजयार्द्धगिर की दक्षिण श्रेणीमे गन्धार देशके गधसमृद्ध नगरके राजा गन्धार और पृथ्वीके समान वल्लभा रानी पृथ्वीकी पुत्री प्रभावती हूँ। एक दिन मै मानसवेगके सुवर्णनाम नगर गयी। वहा उसकी माता अगारवतीसे मिली। उसकी पुत्री वेगवती मेरी सहेली है। उसकी बाबत मैंने पूछा। तब वेगवती की सखियोने मुझे उससे मिलाया। उससे मुझे मालूम हुआ कि जिस प्रकार चद्रमाका सगम चित्रा नक्षत्रसे है, उसी प्रकार वेगवतीका सगम तथा सम्बन्ध आपसे कैसे हुआ। तब मैने हसीमें उसे कहा कि जैसे चित्रा नक्षत्रका सगम चद्रमासे होता है, वैसे तुम्हारा यादवो के चद्रमा राजा वसुदेव से सगम हुआ। इस पर वेगवती लज्जा से कुछ मुस्कुरा दी। उसी नगरमे आपकी प्रिया सोमश्री शुद्धशील रूपी आभूषणोसे मडित आपका नाम जप रही है। आपका नाम ही तो उसका भोजन है।"

राजा वसुदेव वेगवती सोमश्रीका नाम सुनकर प्रभावतीसे आग्रह करके उनका हाल पूछने लगे। तब प्रभावती ने बताया,

"सोमश्री मानसवेगकी मांके पास ठहरी हुई है। आपके वियोगके महादुःखसे उसके कपोल सफेद पड गये है, मानो उनमे रक्त ही न रहा हो। मानसवेगके वचनो और प्रलोभनोसे वह प्रभावित या डगमगायी नहीं। मानों वह शीलके दुर्गमे बैठी हो। पर आप सोचे कि शत्रुके घरमे कबतक वह इस तरह रह सकती है। इसीसे सोमश्रीने मुझे आपके पास सहायता का सदेश देकर भेजा है। उसने कहा है, "शत्रु मानसवेग की माताने मुझे भली प्रकार सुरक्षित रखा है और अपने पुत्र मानसवेगको बहुत दबाया-समझाया है। अब आप शीघ्र मेरी सुध लो और मुझे इस मानसवेगके फंदेसे छुडाओ। यदि अब भी आप मेरी सुध न लोगे तो आपके वियोगमे मेरे प्राण चले जायेगे। इसलिए यह कठोर उपेक्षा छोडकर मेरी रक्षाका यत्न करो।"

प्रभावतीने आगे कहा, "सोमश्रीने आँखों मे आसू भरकर यह विनती की है। मै आपसे कहकर कृतार्थ हो गई। अब जैसा आप उचित समझे, करें। हा, एक बात और है।" राजा वसुदेवने पुछा, "वह क्या है ?" तब प्रभावती बोली, "यदि आपको यह आशंका हो, कि सोमश्रीका स्थान अगम्य है, तो मै आपकी आज्ञासे जहाँ कहोगे, वही ले चलू गी।"

प्रभावतीकी बाते सुनकर वसुदेवको उसकी सब बातोपर विश्वास हो गया। तब उसने प्रभावतीसे कहा, "हे सोमवदना ! "तू मुझे शीघ्र ही सोमश्रीके पास ले चल।" विद्याधरी प्रभावती राजा वसुदेव की आज्ञानुसार बिजली के समान प्रकाश करके आकाशको उल्लघन करके वसुदेवको स्वर्णनामपुर ले गयी। किसीको खबर भी न हो पाई, और वह राजा वसुदेवको सोमश्रीके पास ले गयी। वसुदेवने देखा कि सोमश्री कान्त के वियोगसे कुम्हलाये कमल पुष्पके समान है। उसके कपोल शोभाहीन और मलिन है। न उसने शरीरका कई दिनसे सस्कार किया। उसके केश रूखे-बिखरे हुए

थे। और होंठ भी पानके रग बिना सूखे-सूखे हैं। गर्मीसे जैसे बेल की कोपलें मुरझा जाती हैं, वैसे पति वियोगकी तपन से सोमश्री का मुख उतरा-उतरा कांतिहीन हो रहा है। राजा उसके तनकी इस दशाको देखकर बडा दुखी हुआ। वसुदेवको देखते ही सोमश्रीकी जान मे जान आगयी। वह उठकर अपने पतिके सामने आयी। राजा वसुदेवने उसे छातीसे लगाया। वे दोनो कुछ रोमाचित हो, ऐसे हो गये जैसे वे एक ही अग हो।

प्रभावतीने उसका सब काम चतुराईसे सफलतापूर्वक कर दिया, इसमे सोमश्रीने उसका हृदयसे आभार माना। प्रभावती अपने स्थानको चली गयी।

राजा वसुदेव रूपपरावर्तनी विद्याके द्वारा अपना रूप बदलकर सोमश्रीके साथ मानसवेगके महलमे कई दिन रहा। जब एक रात को सोमश्री जागी, तब वह वसुदेवको असली रूपमे देख कर शत्रु मानसवेग के द्वारा पतिके मारे जानेके भयसे बडी चिन्तित हुई और रोने लगी। वसुदेवने उससे रोनेका कारण पूछा। सोमश्रीने कहा, "हे नाथ! आपने रूप पलटनी विद्यासे जो रूप परिवर्तित किया था वह न देखकर मै आपका मूल रूप देख रही हू। इससे मुझे शत्रु का भय पैदा हुआ है। इसीसे मैं रो पडी थी।" वसुदेव ने उससे कहा, "हे प्रिये! किसी बातका भय मत कर। इन विद्याओं का यही स्वभाव है कि जागृत दशामें तो शरीरमे रहती है, पर शयन अवस्थामे दूर हो जाती है। इसलिए तू न कोई सन्देह कर और न भय। यह कहकर राजा वसुदेवने फिर अपना रूप वैसा बदल लिया, जैसा विद्या द्वारा पहले दिखाया था।

कुछ दिनोके पश्चात् मानसवेगको यह पता चल गया कि वसुदेव सोमश्रीके पास रह रहा है। वह वैजयन्तीपुरी के स्वामी बलसिंहसे परामर्शके लिए मिला। वसुदेवका पक्ष सच्चा और न्याययुक्त था; पर मानसवेग न माना और युद्धके लिए तैयार

हो गया। बहुतसे विद्याधर वसुदेवकी सहायताके लिए वहाँ आपहुँचे। दोनों पक्षोमे महासग्राम छिड गया। मानसवेगकी बहन वेगवती अर्थात् वसुदेवकी पत्नी और उसकी मा अगारवतीने भी पुत्रीका पक्ष लेकर अपने जवाई वसुदेवको एक धनुप और दिव्य बाणोसे भरे दो तरकश दिये। प्रभावती विद्याधरी युद्धका समाचार सुनकर वसुदेवकी सहायताके लिए वहाँ आपहुची। उसने राजाको प्रज्ञाप्ति विद्या दी, जिसके प्रभावसे वसुदेवने मानसवेगको बाँध दिया। तब अगारावतीने जवाई वसुदेवसे अपने पुत्र मानसवेगके प्राणका दान मागा। इसपर दयावान् वसुदेवने सोमश्री सहित मानसवेगको सोमश्रीके महलमे लेजाकर वहा उसको छोडा। मानसवेगको अब वसुदेवसे बडाप्रेम हो गया। मानसवेग वसुदेव को सोमश्री सहित सोमश्रीके पिताके नगर महापुर ले गया।

सोमश्री अपने माँ-बाप और बन्धुओसे मिलकर बडी प्रसन्न हुई। वसुदेव भी वही रहा। तब मानसवेग स्मरण करनेपर आनेका वचन देकर अपने स्थानको लौट गया। वहाँ वसुदेव और सोमश्री सुखसे रहने लगे। दोनोने वियोगके दिनोकी दुःख-सुखकी बाते एक-दूसरेसे कही।

एक दिन सूर्यक नगरका शत्रु विद्याधर घोडे का रूप बनाकर वसुदेवको ले उडा और उसे गगामें डाल दिया।

वसुदेव गगाको पार करके एक तापसके आश्रम मे पहुच गया। वहाँ उसने उन्मादसे बावली एक नारी को देखा, जिसके आभूषण नरोकी अस्थियोके बने हुए थे। एक तापससे उसकी बावली होने का कारण पूछने पर उसने वसुदेव को बताया, "यह नारी राजा जरासिन्धकी पुत्री केतुमती है और यह राजा यतिशत्रुकी रानी है। एक मन्त्रवादी परिव्राजकने इसे वाद-विवादमे जीत लिया और उसने केतुमतीको क्रोधसे मारा, इसलिए यह बावली हो गयी है। अब यह अस्थियोकी माला पहनकर यहाँ-वहाँ भ्रम रही है।"

राजा वसुदेवको उसका यह हाल सुनकर उसपर बड़ी दया आयी और उसने महामन्त्रके प्रभावसे उसको ठीक कर दिया। यह देखते ही, जरासिंधके नौकर गुप्तचर वसुदेवको पकडकर नगरमे ले गये। जब वसुदेवने उनसे अपना अपराध पूछा, तब उन्होंने उसे बताया "जो आदमी राजाकी पुत्रीका ग्रह उतारकर उसे होशमे लाये वह राजा जरासंधके वैरीका पिता है। इससे तुम्हे मारनेको ले जा रहे हैं।"

उसी समय एक विद्याधर वसुदेवको आकाश मे ले उडा। उस विद्याधरने उसे बताया कि जो विद्याधरी प्रभावती उसे सोमश्रीके पास ले गयी थी, वह उसका पिता भगीरथ है और वह राजाके मनोरथको सिद्ध करनेवाला है। यह बतानेके पश्चात् वह भगीरथ विद्याधर राजा वसुदेवको अपने नगर गधस्मृद्ध लेगया। वहाँके अनेक विद्याधरोने राजाका बडे मान-शानके साथ स्वागत करके नगरमे प्रवेश कराया। फिर शुभदिन और अच्छे लगनमे विद्याधर भगीरथ और उसके कुटम्बीजनो ने वसुदेवका विवाह प्रभावतीसे कर दिया। पति-पत्नीमे पहलेसे ही जो परिचय और प्रेम था, वह अब और बढ़ गया।

कर्मोंकी बडी विचित्र गति है। पापोके उदयसे इष्टमित्रोका वियोग होता है और पुण्यके प्रभावसे वियोग समाप्त होकर उनका मिलाप होता है।

. १७

स्वयम्बर, संग्राम और भ्रातृ-मिलाप

एक बार राजा वसुदेव प्रभावतीके साथ महलमे विश्राम कर रहे थे। उनका शत्रु विद्याधर सूर्य्यक वासदेवको आकाशमे ले उडा। जब वसुदेवने उसे मुक्को से मारा, तब उसने वसुदेवको आकाशसे नीचे डाल दिया। वसुदेव गोदावरी नदीमे गिर पडा। नदीके किनारे पर कुण्डपुर नगर था, जिसका राजा पद्मरथ था। उसकी पुत्रीकी यह प्रतिज्ञा थी कि जो व्यक्ति फूलमाला गूथनेकी प्रवीणतासे उसे रिझायेगा, वही उसका पति बनेगा। वसुदेवने माला गूंथनेकी प्रवीणतासे राजकुमारीको प्रसन्न करके उससे विवाह किया।

वहाँसे एक बार एक नीलकण्ठ वसुदेवको ले उडा और उसे चम्पापुरी के सरोवर मे डाल दिया। सरोवरसे निकलकर वसुदेव नगरमे गया और वहाँ के मन्त्रीकी पुत्रीको ब्याहा।

एक दिन वे दोनो पति-पत्नी जलक्रीडा कर रहे थे, कि वही शत्रु विद्याधर सूर्य्यक उसे फिर ले उडा और गगामे डाल दिया। गगाके किनारेके नगर मलेच्छ खण्डके राजाने वसुदेवसे अपनी जरा नामकी पुत्री विवाह दी। इससे वसुदेवके यहाँ जरत्कुमार महापराक्रमी पुत्र हुआ।

इसके पश्चात् वसुदेवने अवन्तिसुन्दरी, शूरसेना और जीवयशा राजकुमारीसे विवाह किया। यहाँसे वह अरिष्टपुर नगर गया।

अरिष्टपुरके राजाका नाम रुधिर था, जो युद्धमे बडा प्रवीण था। उसके स्वर्ग की देवीके समान सुन्दर मित्रा रानी थी। राजाके बडे पुत्रका नाम हिरण्यनाभ था, जो अनेक नयो का ज्ञाता, रणमे शूरवीर, महापराक्रमी और शस्त्र-शास्त्र विद्याओमे महानिपुण था। राजाकी लडकीका नाम रोहिणी था, जो चन्द्रमाकी रानी रोहिणीके सदृश सुन्दर थी। जब राजकुमारी रोहिणी विवाहके योग्य हो गई, तब उसके पिताने उसका स्वयम्बर रचाया।

स्वयम्बर मण्डपकी सजधज और शोभा अवर्णनीय थी। उसमे रोहिणीके विवाहके इच्छुक हर एक आगतुकके बैठनेके लिए सुन्दर मणिमय सिहासन लगे थे। स्वयम्बर मण्डपमे राजा जरासिंध और राजा समुद्रविजय आदि आये थे। वहाँ वसुदेव भी भाइयोसे अलक्ष्य अपना भेष बदले बाजा बजाने वालोमे हाथमे वीणा लिए बैठा था।

जब राजाओने अपने-अपने स्थान ग्रहण कर लिए, तब सौभाग्य-भूमि स्वयम्बर मण्डपमे अद्भुतशृगारयुक्त राजकन्या रोहिणीने हाथो मे पुष्पमाला लिए सर झुकाये मन्दगतिसे प्रवेश किया। उसके आगे-आगे परिचय देनेमे अतिनिपुण धाय थी। राजबालाके मण्डपमे प्रवेश करते ही शख भेरी और दूसरे बाजोसे मण्डप गूज उठा। सभी राजा और दर्शक अपने-अपने स्थानपर सावधान बैठ गये और सभी की दृष्टि रोहिणीपर पडी, मानो वे सब अपने कमलरूप नेत्रोसे उसका स्वागत और अर्चा कर रहे हो। उसका रूप देखते ही सबके हृदयोमे वाछा रूप व्याकुलता पैदा हुई। हरएककी यही इच्छा थी कि वह उसे वरे। जिस रोहिणीके रूपकी चर्चा सुनने मात्रसे उसे अपनानेकी इच्छा उनके हृदयोमे उत्पन्न हुई थी, अब उसे साक्षात् देखकर तो वह द्विगुणित हो गयी। उसके रूपके वर्णनके श्रवण-मात्रसे ही जो अनुराग रूप अग्नि प्रज्वलित हुई थी, वह उसके दर्शन रूप ईंधनसे और भडक उठी।

स्वयम्बरमण्डपके प्रवेश द्वारके एक सिरेसे राजकन्या रोहिणीने हाथोमे वरमाला लिए धायके पीछे चलना आरम्भ किया । चतुर धाय बडे मीठे वचनोसे आगन्तुक राजाओके वश, पराक्रम, गुणों, नाम तथा स्थान आदिका परिचय देती हुई कहने लगी—"हे राज-कन्ये ! यह वसुधाका राजा जरासिन्ध है । शरत्की पूर्णिमाके चन्द्र सदृश जो श्वेत छत्र इसके सिर पर है वह तीन खण्डको जीतनेसे जो यश इसने पाया है, उस यशका द्योतक है । सब भूमिगोचर विद्याधर इसके आधीन है, मानो स्वय चन्द्रमा रोहिणी देवीका सग तजकर तेरे प्रलोभनवश यहाँ आया है । यदि तेरी इच्छा हो, तो इसे वर ले ।" रोहिणीने उसकी तरफ दृष्टि उठाकर न देखा और आगे बढ गई ।

तब धायने अगले राजा का परिचय देते हुए कहा—"हे पुत्री ! यह सूर्य्यपुर नगरके अधिपति राजा अधक वृष्टिका पुत्र राजा समुद्र विजय अपने भाइयो सहित यहाँ विराजमान है । सभी भाई समस्त गुणोंमे पूर्ण है । यदि तेरी इच्छा हो, तो इनमे से किसीको चुन ले ।" राजकन्या चुपकेसे आगे बढ गई । तब धायने कहा—"हे पुत्री ! यह राजा पाण्डु है । यह विदुर है । यह दमघोष राजा है । ये यशोघोष और दतवक है । यह महापराक्रमी राजा शल्य है, जिसका नाम शत्रुओके मनमे शूलके समान चुभता है । इस प्रकार अनेक राजाओ का परिचय देती हुई धाय आगे बढी । उसके पीछे राजकुमारी रोहिणी थी । फिर राजा चन्द्रवक्र, राजा कालमुख, राजा पुण्डरी-काक्ष, राजा मतस्या, राजा सजय, राजा सोमदत्त अपने पुत्रों सहित धाय के द्वारा परिचित कराये गये । पर रोहिणीके पग कही न रुके । वह आगे बढ गयी । तब धायने राजा असुमति और उसके पुत्रो, राजा कपिल, अधिपति विपुलक्षण, नृपपद्मरथ, राजा सौमक, राजा सौम सौम्यक, देवोके समान राजा दिवक और राजा श्रीदेव-का परिचय उनके वश, नगर तथा गुणोको बताते हुए दिया और कहा कि ये सब राजा उसके सौभाग्य गुणसे आकृष्ट होकर स्वयम्बर-

मण्डपमें पधारे है। धायने उसे समझाते हुए कहा कि वह किसी एकमे अपने चित्तको लगाकर योग्य वरको प्राप्त करे और अपने माता-पिता तथा कुटुम्बी जनोकी चिन्ताको दूर करे। धायने रोहिणीसे कहा—"हे पुत्री ! तेरी विवाह योग्य अवस्था को देख-देखकर चिन्ताके कारण तेरे माता-पिताकी भूख और नीद सब जाती रही है। इसपर राजकन्या ने उत्तर दिया—"हे माता ! तूने जो-जो राजकुमार अब तक दिखाये हैं, उनमें से किसीपर भी मेरा मन अनुरक्त नही हो रहा है। वास्तवमे तो वरको देखने मात्रसे ही हृदयमे स्नेह उत्पन्न होता है, तेरे कहनेसे नही। जैसे मुनिके मनमे न तो राग, न द्वेष मोह होता है, वैसे मेरे मनमे इन राजाओके प्रति किसी प्रकारकी इच्छा नही है। बता मै क्या करू ? अब तुम मुझे इनसे भिन्न कोई ऐसा पुरुष दिखाओ, जिसे विधिने मेरा वर रचा हो।" जब दोनोमे ये बातें हो रही थी, तभी राजकुमारी की दृष्टि वसुदेव पर पडी। वसुदेवके हाथमे मादल और वीणा थी। वह उसे बजा रहा था। बाजोंकी ध्वनि राजकुमारी के चित्तमे जा बसी। उसके पाव वही रुक गये। धाय भी रोहिणीके मनके भाव को समझकर उस वादकका परिचय देने लगी। पर क्या परिचय दे, यह वह न जानती थी। फिर भी धाय बोली, "हे राजकुमारी ! तेरे मनको हरनेमें समर्थ यह राजा हस वीणा बजाने वाला प्रकट हुआ है। यदि तेरा मन इसे स्वीकार करे, तो तू इसे वर ले।" तब रोहिणी अन्तिम निर्णय करनेके विचारसे वसुदेवको सिरसे पावतक ध्यान पूर्वक देखने लगी और राजाओके सभी लक्षणोमे पूर्ण देवोके तुल्य इसे पाकर उसकी तरफ आगे बढी। इन दोनोकी दृष्टि मिलनी थी, कि वे दोनो एक दूसरेपर आसक्त हो गये और दोनोंकी अभिलाषा बढ गयी। तब रोहिणीने वसुदेवके गलेमे वरमाला डाल दी। वसुदेव इससे प्रफुल्लित हो उठा। रोहिणी वसुदेवकी बगलमें बैठी ऐसी लगती थी, जैसे चन्द्रमाके समीप रोहिणी शोभायमान होती है। नये मिलाप से उत्पन्न आनन्द, कुछ लज्जा और कुछ शकासे वह अपने अगको

पतिके अगसे सटकर बैठ गयी। दोनोंने एक नया सुख अनुभव किया।

वरमाला डालनेपर उपस्थित राजाओ, दर्शको और कुटुम्बीजनोके हृदयोमे भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हुई। स्वयम्वरमे जो सुबुद्धि राजा बैठे थे, उन्होने प्रसन्न चित्तसे स्वयम्वरकी मर्यादाको निभाते हुए, रोहिणीके चुनावकी प्रशसा करते हुए कहा, कि इन दोनो का सयोग रत्न और कचनके मिलाप सदृश सुन्दर है। उन्होने कन्याकी निपुणताकी प्रशसा की कि उसने कितना योग्य वर चुना है। उन्होने यह भी कहा कि यह अवश्य कोई बडे वशका राजपुत्र है, पर अपना कुछ छिपाये क्रीडाके लिए घूम रहा है।

पर जो राजा दुर्बुद्धि थे, उन्होने रोहिणीके इस चुनावको अपना अपमान समझा और उसके कामको अयुक्त कहा कि इतने कुलवन्त राजाओके पुत्रोको छोडकर इसने एक वाजत्रीके गलेमें वरमाला डाली है। यह समस्त राजाओका अपमान असह्य है। स्वयम्वरका यह अर्थ नही कि हर कोई पुरुष हर किसी स्त्रीको वरे। यह तो अति प्रसगदोष है। यह क्या कि ऊँच-नीच कुलका विचार ही न रहे? इतने बडे पुरुषोके बीच इस रकको आनेका अवसर क्यो दिया गया? यहाँ अकुलीनका प्रवेश ही अयोग्य है। उन्होंने चुनौती देते हुए कहा, कि यदि यह कुलवत है तो अपना कुल प्रकट करे, बताये, वरना यह नीच है और नीचको यहाँसे निकाल देना चाहिए और यह कन्या किसी राजपुत्रका परिणय करे।

इस पर महाधीर वसुदेव उन क्षुब्ध राजाओं से कहने लगा, "हे क्षत्री पुत्रो! आपमे जो सत्पुरुष हैं और जो मदोन्मत है, वे सब मेरी बात ध्यानसे सुन। स्वयम्वरका यही नियम है कि कन्या जिसको वरनेकी इच्छा करे, उसे ही वरे। यहाँ राव और रंकका विचार नही चलता। कन्याके माता-पिता और भाइयोंको कोप नहीं करना चाहिए। यहाँ किसीकी आज्ञा प्रधान नही है। स्वयम्वरमें कन्याकी इच्छा ही निर्णायक है। चाहे कोई महाकुलवत, रूपवत, भाग्यवान्

या धनवान् हो, या कोई अकुलीन, कुरूप, या दरिद्र हो, जिसे कन्या वरे, वही कन्याका वर होता है। यहाँ कुल या सौभाग्यका नियम नही चलता। इस कन्याने कुल-सौभाग्य निरख कर वरमाला डाली है, या इन्हे बिना जाने, आपको इस वाद-विवादसे क्या प्रयोजन? और यदि इस पर भी आपमे से कोई अपने पुरुषार्थके घमण्डसे शात न हुआ, तो उसे मै अपने बाणोसे शात करूँगा। जब मैं धनुष चढाकर कान तक खेंच कर बाण चलाऊँगा, तब सबको मालूम होगा कि मैं कैसा वीर हूँ।"

वसुदेवकी यह ललकार सुनकर राजा जरासिधने कोप करके सब राजाओसे कहा, "ये वाजत्रीकी विपरीत बुद्धिकी बात है। इसे बाँधो। कन्याका पिता रूधिर अपने पुत्र सहित अविवेकी है, जो इन्होने स्वयम्बर शालामे अकुलीनको आने दिया। इसलिए राजा रूधिरको भी पुत्र सहित पकड लो।"

जो दुर्जन राजा पहले से ही क्रुद्ध बैठे थे, वे राजा जरासिध अर्धचक्रीकी आज्ञा पाते ही महाप्रज्वलित होकर युद्धके लिए तैयार हो गये। परन्तु जो विवेकशील मर्यादा-प्रेमी राजा थे, वे अपनी सेना सहित दूर निष्पक्ष होकर अलग जा खडे हुए। जो राजा रोहिणीके पिता रूधिरके पक्षमे थे, वे विरोधियो को पराजित करनेकी इच्छासे शस्त्रोके साथ लैस होकर तत्काल राजा रूधिरके समीप आ गये। राजा रूधिरका बडा पुत्र राजकुमार हिरण्यनाभ आँखे रूधिरके समान लाल करके अपनी बहन रोहिणीको रथमे चढाकर अपने हथियारबन्द योद्धाओ सहित खडा हो गया। इधर राजा रूधिर अपने योद्धाओको अति मधुर शब्दोमे कहने लगा, "हे सुभटो! आप महारथी है। जैसा आपके योग्य और उचित हो, वैसे ही युद्ध करो।"

उसी समय राजकुमार वसुदेवने अपने श्वसुर राजा रूधिरसे सविनय कहना आरम्भ किया, "हे पूज्य! मुझे दिव्य अस्त्रो और सामान्य शस्त्रोसे पूर्ण एक रथ शीघ्र दो और मुझे आज्ञा करो कि इन

भूपतियोंसे मै किस दिशामें युद्ध करूं। फिर देखे कि वे कुलीन मुझ अकुलीनके बाण कैसे सहारते है।" वसुदेवकी यह बात सुनकर राजा रूधिरने समझ लिया कि यह बडे वशसे उत्पन्न महाशूरवीर पुरुष है। तब राजा रूधिरने वसुदेवको महातेजस्वी घोडोवाला बडा रथ दिया, जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे पूर्ण था। जिस समय वसुदेव रथ पर चढा, उसी समय महाशूरवीर विद्याधर दधिमुख अपने दिव्य रथपर सवार उसके समीप सहायताके लिए आ गया, मानो वसुदेवकी विजयका मनोरथ पूरा करने दिव्यास्त्रो अर्थात् देवोपुनीत शस्त्रोसे देदीप्यमान महामित्र आया है। विद्याधरने वसुदेवको नमस्कार करके कहा, "आप मेरे रथ पर चढे, मै आपका सारथी बनूंगा। आप शत्रुओ के समूहको युद्धमे जीते।" वसुदेव दधिमुखके रथमे सवार हो गया। वह धनुप हाथमे लिये हुए था और कवची-बख्तर-पहने हुए था। रथमे नाना प्रकारके बाण तरकशोंमे लगे थे।

अपने नवपति वसुदेवको शस्त्र सुसज्जित योद्धा रूपमे देखकर रोहिणीने अपने भाग्यको सराहा कि उसका पति केवल अच्छा वाजत्री ही नही है, वरन् वीर सुभट भी है। पर अनपेक्षित रूपसे रण छिड जानेके कारण रोहिणीका मन अनिष्टकी आशकासे भी भर गया। रण आखिर रण है। उसके परिणाम या जय-पराजय की भविष्यवाणी कौन कर सकता है? रणमे क्षणोंमे स्थिति पलटती है। हारता हुआ पक्ष जीत जाता है और जीतता हुआ पक्ष हार जाता है। रोहिणी भी राजकुमारी थी। जवान, सुगठित शरीरवाली बलवती वीरागना थी। उसने भी शस्त्र चलाना, धनुर्विद्या और युद्ध कौशल सीखे थे। युद्धका नाम सुनकर उसकी भुजाएँ फडक उठी। उसका पति लडे और वह देखती रहे? स्वयम्वर मे आये हुए कुछ राजागण अन्यायसे मर्यादा और विवेकको छोडकर उसके चुनावको चुनौती देकर उसके पतिसे लडे और वह सब कुछ सहन करे?

असम्भव । उसने झटसे पतिसे प्रार्थना की, "हे नाथ ! मुझे आज्ञा दो कि मैं भी युद्धमे आपका साथ दूँ । मे आपकी अनुगामिनी अवश्य हूँ, पर इस युद्धमे मै आपसे आगे रहकर अपने युद्ध कौशलसे इन दुर्जनोको परास्त करना चाहती हूँ । इनके अयुक्त व्यवहारका मजा इनको चखाना चाहती हूँ ।" रोहिणीके ये वीरता पूर्ण शब्द सुनकर वसुदेव मनमे बडा प्रसन्न हुआ । पर वे अपने होते उसे किस प्रकार युद्धमे कूदनेकी अनुमति देते ? वसुदेवने रोहणीसे कहा, "प्रिये, इन राजाओका अयुक्त युद्धके लिए तत्पर होना मेरे पौरुष, पराक्रम और वशकुलादि को चुनौती है । अत मै ही इनसे निपटूँगा । तुम नि शक होकर मेरे युद्ध-कौशलको देखो । मेरे होते तुम्हे लडनेकी आवश्यकता नही । तुम तो मेरी विजय और अपने सौभाग्यरक्षाकी भावना करती रहो । यही पर्याप्त होगा ।" पतिके इन वचनोसे आश्वस्त हो, रोहिणी युद्ध देखने लगी ।

रोहिणीके पिता राजा रुधिरकी चतुरगी महान् सेना शत्रुओके विनाशके लिए रणभूमिमे उतर आयी ।

कुमार वसुदेवने शत्रुओके सेनारूपी समुद्र पर एक दृष्टि डाली । सामने शत्रुओंकी सेना समुद्रके समान थी, जिसका पार ही दिखाई न देता था । दोनों सेनाओमे महायुद्ध आरम्भ हुआ । घोडोकी हिनहिनाहट और शखनाद समुद्रकी गरजनाके समान लग रहे थे । हाथी सावार हाथी सवारसे, घुडसेना घुडसेनासे और प्यादे प्यादोसे लडने लगे । रथोमे सवार योद्धा रथोमे सवार योद्धाओसे लड रहे थे । सावन्तोंके बाणोसे आकाश आच्छादित हो गया । आकाश मे इतना गर्द चढ़ा कि सूर्य भी दीखना बन्द हो गया ।

इस भयकर युद्धमे वीर योद्धाओके भी छक्के छूट रहे थे, फिर कायरोंका तो कहना ही क्या ? खड्ग, बाण और गदाओ की मारके कारण रुधिरकी उपरोन्मुखी धाराओसे अधकार छा गया । मस्त

हाथी पर्वतो के समान गिर रहे थे, बडे-बडे घोडे और शूरवीर भूप भी रणमे इधर-उधर पडे थे। सैकडो रथ टूटकर चकनाचूर हो गये।

जब वसुदेवने देखा कि शत्रुओकी सेनासे उसकी सेना दब सी रही है, तब वसुदेव और हिरण्यनाभ दोनों अपनी सेनाको थामने और हिम्मत बढ़ानेको तैयार हुए। फिर इन दोनोने दृष्टि, मुष्टि और बाणोके सघानसे ऐसे बाण चलाये, जैसे शत्रुओने कभी न देखे थे, वे जिसको लगते, वही धडामसे गिर जाता। इनके बाणोंसे शत्रुओकी सेनाका कोई हाथी, घोडा, रथ और मनुष्य न बचा, सबको भेदा। अब तरह-तरहके दिव्य बाण छोडे गये। वसुदेवने अपने बाणोंके शत्रुओके यश-चिह्न छत्रोको और उनके सिरोको उडाया। इधर वसुदेव योद्धाओसे भयानक युद्ध कर रहा था, उधर उसका साला रोहिणीके भाई हिरण्यनाभने शत्रु सेनामे एक बडे राजाके पुत्र पौड्र-कुम्बरसे भयकर युद्ध आरम्भ किया, वे दोनो राजकुमार ऐसे लड़ रहे थे, जैसे शेरके बच्चे आपसमे लडते हो। इधर हिरण्यनाभने पौड्रकुम्बरकी ध्वजा और छत्र उडाये, उसके सारथीको मारा, उसके रथके घोडोको मार गिराया, उधर पौड्रकुम्बरने भी मारे क्रोधके बदलेमे उसकी ध्वजा तथा छत्र गिराये और सारथी और घोडे आदि मारे। इतना ही नही उसने हिरण्यनाभको भी रथपर से भूमि पर डाल दिया।

जब हिरण्यनाभ पृथ्वीपर गिर पडा, तभी वसुदेवभी उसकी सहायताके लिए उसके पास जा पहुँचा। उसने अपने अर्धचन्द्र बाणसे पौड्रकुम्बरका धनुष तोड डाला और फिर हिरण्यनाभको अपने रथमें चढाया। उसने अपने बाणोंकी वर्षासे पौड्रकुम्बरको आच्छादित किया। कुमार पौड्रकुम्बरकी सहायताके लिए जो योद्धा वसुदेवके विरुद्ध आये, उसने अपने तीक्ष्ण बाणोसे उनके बाण भेदे और उन-की सेनाको पराजित किया। इसपर सबने वसुदेवकी वीरताकी प्रशसा की। सबने यही कहा कि ऐसा सुभट अब तक उनके देखनेमें नहीं

आया । एक तरफ अकेला वसुदेव था, दूसरी तरफ अनेक योद्धा । इस पर न्यायवान राजाओने कहा, "आज तक यह अन्याय नही देखा कि एकसे अनेक लडे । एक योद्धासे एक ही योद्धाको लडना उचित है ।" तब जरासिधने धर्मयुद्ध देखनेकी इच्छासे राजाओको आज्ञा दी, "इस कन्या रोहिणीके लिए एक-एक नृप वसुदेवसे लडे । जो इसको जीतेगा वही कन्याका पति होगा ।"

तब दूसरे राजा तो दूर खडे-खडे युद्धको देखते रहे,पर शत्रुञ्जय राजा दन्तवक्र और राजा कालमुख वसुदेवसे बारी-बारीसे युद्ध करने आये । इन सबको वसुदेवने पराजित करके इनको प्राण दान दिये । वसुदेवकी इस विजयसे राजा रूधिर और उसके सभी साथी बडे प्रसन्न हुए, पर विपक्षियो को चिता हो गयी । इसपर जरासिधने राजा समुद्रविजयसे कहा, "हे नृप ! आप शस्त्र-विद्यामे प्रवीण है इसलिए रणमे इस मानीका मान भग करो ।" जरासिध की आज्ञा-पर राजा समुद्रविजय युद्धके लिए तत्पर हो गया, क्योंकि युद्ध और सेनाका यह नियम है, सब आधीन या साथी योद्धा सबसे बडे अधि-कारीकी आज्ञानुसार कार्य करे, इसीका नाम सैनिक अनुशासन है ।

राजा समुद्रविजयने अपने सारथीको अपना रथ विरोधी योद्धा पर चलानेका आदेश दिया, जिसका पालन सारथीने किया ।

राजासमुद्र विजय या वहाँ किसी दूसरे राजाको यह मालूम न था, कि सामनेल डनेवाला वह वीर योद्धा समुद्रविजयका भाई ही है । पर वसुदेवको तो सब कुछ मालूम था । इसलिए अपने पिता तुल्य ज्येष्ठ भ्राताका रथ अपने ऊपर आता देखकर उसने अपने सारथी विद्याधर दधिमुखसे कहा, "देखो, यह मेरा बडा भाई समुद्र-विजय है । इसकी तरफ अपना रथ धीरे-धीरे चलाओ । ये मेरे गुरु-जन है ।इनसे एक रीतिसे युद्ध करना है ।" दधिमुखने कहा कि उनके आदेशानुसार ही सब काम होगा । यह कहकर दधिमुखने राजा समुद्रविजयकी तरफ धीरे-धीरे रथ चलाया ।

इधर समुद्रविजय ज्यूँ-ज्यूँ आगे बढा और वसुदेवको देखा, उसके हृदयमे भ्रातृस्नेह उत्पन्न होने लगा । तब उसने अपने सारथीसे कहा, "इस योद्धाको देखकर मेरे हृदयमे स्नेहके भाव उत्पन्न हो रहे है । इसका क्या कारण है ? मेरी दाहिनी भुजा और नेत्र फडकते हैं । इसलिए मेरा प्यारा भाई मिलना चाहिए । इस मारने योग्य शत्रुको देखकर मेरे हृदयमे ऐसा अनुराग-भाव क्यो पैदा हो रहा है ? ये चिह्न तो भाईके मिलनेके है । पर योग पडा है शत्रुसे रणका । सो यह बात कैसे बने ? देश और काल-विरुद्ध यह मिलाप होता दिखाई नही देता ।"

इस पर सारथीने उत्तर दिया, "हे प्रभो ! शत्रुको जीतनेके पश्चात् बन्धुका अवश्य मिलाप होगा । हे राजन् ! यह शत्रु बडा योद्धा है । अनेक राजा इसे युद्धमे न जीत सके । इसलिए सब राजाओके सामने ऐसे शत्रुको जीतनेसे आपकी प्रशसा होगी । आप जरासिधमे आदर-सम्मान पायेगे ।"

सारथीकी उपर्युक्त बात सुनकर समुद्रविजय बहुत प्रसन्न हुआ और उसने वसुदेवकी तरफ रथको बढवाया । इधर राजाने अपना धनुष चढाया और बाण साधा । उधर वसुदेवने भी अपना बाण साधा ।

समुद्रविजय सामनेके योद्धाको अपना छोटा भाई वसुदेव नही समझता था, इसलिए विरोधी पक्षका योद्धा समझकर उसे सम्बोधित करने लगा, औरोसे रणमे तेरी धनुष बाणकी प्रवीणता हमने बहुत देखी है, वैसी ही प्रवीणता हमे भी दिखाओ । यह ठीक है कि तेरी शूरवीरता रूपी पर्वतपर मानका शिखर शोभायमान है, पर याद रखो, मै राजा समुद्रविजय हूँ । मैं अपने बाणों की वर्षासे तेरे मान रूपी शिखरको आच्छादित कर दूँगा ।"

बडे भाईके शब्द सुनकर वसुदेव कुमारने अपना शब्द और रूप बदल कर कहा, "हे राजेन्द्र ! बहुत कहनेसे क्या होता है ?

आज रणमें आपका और मेरा पराक्रम प्रकट होगा। आप समुद्र-विजय हैं तो मै सग्राम-विजय हूँ। अगर तापको विश्वास न आता हो, तो अपना बाण शीघ्र चलाओ।"

कुमार वसुदेवके ये वचन सुनकर समुद्रविजय बिना जाने छोटे भाई पर बाण चलाने लगा। वसुदेवने बडे भाईके बाणोंको बीचमे ही काट दिया। पर उसने स्वय जो बाण चलाये, वे बडे भाईका अग बचाकर चलाये। बहुत देर तक सामान्य शस्त्रो से युद्ध हुआ, फिर समुद्रविजयने सोचा कि यह सामान्य शस्त्रोसे पराजित होने वाला नही है। तब उसने दिव्य अस्त्र—जैसे अग्निबाण और जलबाण चलाये, जिन्हे वसुदेवने जलबाण और वायुबाणसे रोका। इस प्रकार दोनो योद्धाओमे दिव्यास्त्रोसे महायुद्ध हुआ। जब उसके सभी दिव्य बाणोंको वसुदेवने बीचमे रोक दिया, तब समुद्रविजयने एक और अतिभयकर क्षरुप्रताप बाण छोडा, उसको भी वसुदेवने बीचमे ही काट दिया।

अब वसुदेवने अपने बाणोमे समुद्रविजयके रथको तोडा और उसके सारथी और घोडोको घायल किया, पर बडे भाईके अगका बचाव किया। राजा समुद्रविजय इस योद्धाकी प्रवीणता और युद्ध-कौशल देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी प्रशसा की। अभी तक भी समुद्रविजयने छोटे भाई को न पहचाना और उसपर और अस्त्र चलाये, जिन्हे वसुदेवने फिर रोक दिया।

बहुत देर तक युद्ध करनेके पश्चात् वसुदेवने अपना परिचय बडे भाईको देनेके लिए यह पत्र लिख कर बाणमे बाध कर भाईको भेजा :

"हे महाराज ! मैं आपका सेवक छोटा भाई वसुदेव हूँ, जो छिपकर घरसे निकला था। अब सौ वर्षके पश्चात् आपके चरणोमे आया हूँ और आपके चरणारविंदको नमस्कार करता हूँ।"

इस पत्रको पढते ही भ्रातृ-स्नेहसे उसका हृदय भर आया, उसने धनुष और बाण धरती पर डाल दिये। वह स्वय रथमे उतरकर भाईकी तरफ बढा। तब वसुदेव भी रथसे उतर कर दूरसे ही बडे भाईको प्रणाम करके उनके पाँव पडा। तब राजा समुद्रविजयने उसे उठाकर छातीसे लगाया। दोनो भाई छाती मिलाकर मिले और उनकी आँखोंमे प्रेमाश्रु भर आये। फिर समुद्रविजयसे छोटे और वसुदेवसे बडे दूसरे अक्षोभ आदि आठो भाई वसुदेवसे मिले। इस भ्रातृमिलापको देखकर राजा जरासिध आदि उपस्थित राजा और रोहिणीका पिता रूधिर, भाई हिरण्यनाभ और कुटुम्बीजन सभी प्रसन्न हुए। सबने रोहिणीके सौभाग्यकी प्रशसा की और उसे चिर सुखके आशीर्वाद दिये।

फिर शुभ तिथि और शुभ नक्षत्रमे वसुदेव और रोहिणीका विवाह कर दिया गया। दोनो पक्षोंमे बडा हर्ष मनाया गया। राजा रूधिरके भावभीने आतिथ्यसत्कारके पश्चात् सभी राजा अपने-अपने स्थानको लौट गये। विद्याधर दधिमुख भी वसुदेवसे आज्ञा लेकर उसे प्रणाम कर अपने स्थान चला गया।

सब स्थानो पर वसुदेवके पराक्रम और शूरवीरताकी प्रशसा होने लगी।

वसुदेव नववधु रोहिणी को पाकर उसके प्रेमये इतना अनुरक्त हुआ कि वह अपनी पहली सभी पत्नियो को भूल गया।

वसुदेवके पूर्वजन्मके महातपके पुण्यका ही यह फल था कि उसे रोहिणी सी पत्नी, युद्धमे विजय तथा यश और सब भाई मिले।

१८

बन्धु-बन्धु समागम

एक रात रानी रोहिणी ने चार स्वप्न देखे। (१) चन्द्रमा समान उज्ज्वल वर्णका मदोन्मत्त गर्जता हुआ गजेन्द्र, (२) पर्वत के समान ऊंची लहरो वाला शब्द करता समुद्र, (३) सम्पूर्ण चन्द्रमा और चौथे मे कुन्दके पुष्प के समान सिंह अपने मुख मे प्रवेश करता देखा। प्रात स्नानादिसे निवृत्त होकर वह कमलनयनी अपने पति वसुदेव के पास जाकर उन स्वप्नोका फल पूछने लगी। स्वप्नोका वर्णन सुनकर राजा वसुदेव ने उसे बताया, "हे प्रिये! तुम एक ऐसे महापुरुषको जन्म दोगी, जो गजेन्द्र के समान बडा, समुद्र के समान गम्भीर, पूर्ण चन्द्र के समान अनेक कलाओ का धारक, महाकान्तिवान और अद्वितीय महाधीर योद्धा और पृथ्वीपति होगा। रोहिणी-पतिके मुखसे इस प्रकार स्वप्नोका शुभ फल सुनकर अति हर्षित हो चन्द्रकलासे भी अधिक सुन्दर लग रही थी।

शख नामक मुनिका जीव महा शुक्र स्वर्ग मे देव था। वह वहाँ से चयकर रोहिणीके गर्भमे आया। नौ महीने पूरे होने पर रानीने शुभ नक्षत्रमे सुखपूर्वक चन्द्रमाके सदृश बलभद्रको जन्म दिया। इसके जन्मसे वसुदेव और रोहिणीके परिवारोंमे बहुत हर्ष मनाया गया। जरासिध आदि सभी राजा बहुत प्रसन्न हुए। इस बालक का नाम राम रखा गया। यह बालक माता-पिता आदि सभी कुटुम्बीजनो का अति प्रिय बन गया।

एक दिन समुद्रविजय आदि वसुदेव के सगे-सम्बन्धी राजा रूधिरके महलमे बैठे थे। वसुदेव भी वही उनके समीप था। तब

एक महा दिव्य मूर्ति विद्याधरी आकाशसे उतर कर वसुदेवके पास आकर उसे कहने लगी, "हे देव ! आपकी रानी वेगवती और मेरी पुत्री बालचन्द्रा आपके चरणारविंद का दर्शन चाहती है। वेगवती तो आपकी विवाहिता है ही, पर बालचन्द्रा अभी कुमारी है और वह विवाहकी आकांक्षामे बैठी है। इसलिए आप शीघ्र चलो ओर उससे प्रणय कर उसे सुखी करो। विद्याधरीकी बात सुनकर वसुदेवने बडे भाई समुद्रविजयकी तरफ देखा। बडे भाईने सब बात समझकर वसुदेवको शीघ्र जानेको कहा।

इधर वसुदेव विद्याधरीके साथ गगन वल्लभपुरके लिए चला, उधर समुद्रविजय आदि सब भाई सोर्यपुर चले गये। गगन वल्लभपुर जाकर वसुदेव वेगवतीसे मिला ओर उसने बालचन्द्रासे विवाह किया। नवीन वधु बालचन्द्रा ओर वेगवतीके साथ कुछ दिन सुखसे रहनेके पश्चात् वसुदेव उन दोनोके साथ सोर्यपुर जाने के लिए तैयार हुआ। बालचन्द्राके पिता काचनदष्ट्र और वेगवतीके भाई मानसवेग बहुत द्रव्य देकर बडे आदर सम्मानसे उन्हे विदा किया।

एनीपुत्रकी पूर्वजन्मकी माता नागकुमारीने रत्नोका देदीप्यमान विमान बनाया, जिसमे वसुदेव, बालचन्द्रा और वेगवती आदि जयपुर आकर विद्युद्वेग से मिले। वहासे वसुदेव अपनी पत्नी मदनवेगा को लेकर विमान मार्गसे गधसमृद्ध नगरमे गये। वहामे राजा गधारकी पुत्री प्रभावतीको साथ लिया। इसी प्रकार वसुदेवने नीलयशा, प्रयामा, प्रियगसुन्दरी, बन्धुमती, सोमश्री, रानी रत्नवती, चारुहासनी, अश्वसेना, पद्मावती, पत्नी कपिला और पुत्र कपिल, मित्रश्री, गधर्वसेना, विजय-सेना और उसके पुत्र अक्रूरदृष्टि, रानियोको उनके नगरोसे लेकर राजा वसुदेव कुल्लपुर नगर आया। वहासे पद्मश्री, अवन्ती सुन्दरी, सूरसेना और अपने पुत्र जरा और जीवयशा तथा दूसरी सभी रानियोको उनके स्थानोसे लेकर शीघ्रगामी विमानमे बैठकर सब सूर्यपुर नगर लोटे। सूर्यपुर नगरकी प्रभा सूर्यके

समान देदीप्यमान थी और वह शहर गीत, नृत्य और वादित्रोंकी मधुर ध्वनिसे रागरग मे निमग्न मालूम होता था। वहां ललित-कलाए खूब उन्नति पर थी।

वसुदेव तो विमानमे सभी रानियो तथा पुत्रो सहित नगरके बाहर ठहरा। इधर जो धनवती देवी इनको विमानमे बिठाकर लाई थी, वह राजा समुद्रविजयको वसुदेव आदिके आगमनका समाचार कहने और बधाई देने नगर मे गयी। पत्नियो सहित छोटे भाई के आनेका समाचार सुनकर राजा समुद्रविजय और उसके आठो भाई बडे प्रसन्न हुए और उनके आगमनकी खुशीमे समस्त नगरको सजवाया। फिर राजा समुद्रविजय, उसके सभी भाई और नगरके छोटे-बडे, साधारणतथा विशिष्ट स्त्री-पुरुष वसुदेव आदिके स्वागतके लिए नगर-के बाहर गये। वसुदेवने विमानमे उतर कर बडे भाई समुद्र विजय तथा दूसरे सभी भाइयो को प्रणाम किया। वसुदेवकी सभी रानियोने अपनी जिठानियोके चरणस्पर्श करके प्रणाम किया। जिठानियोने भी देवरानियोको छातीसे लगाया और अनेक आशीर्वाद दिये, कि वे सभी सदा सुहागिन हो, पुत्रवती हो और चिर सुखी हो। सबने परस्परमे यथायोग्य सम्मान किया। कितना प्रेममय मिलन था! वह सबके हृदय मारे हर्षके प्रफुल्लित हो रहे थे।

नगरमे लौटकर वसुदेव भाइयोके साथ अति सुखसे रहने लगा। देवी धनवती समुद्रविजय और वसुदेवसे विदा होकर अपने स्थान को लौट गयी।

सौर्यपुरके सभी स्त्री-पुरुष वसुदेवके वैभव तथा सौभाग्यको देख-कर कहने लगे, कि वसुदेवके धर्माराधनका ही यह फल है, कि उसने अपनी शूरवीरतासे इतने राजाओंको जीता, उनकी पुत्रीया विवाही आन अनेक विद्याधरो और विद्याधारियोको अपना मित्र बनाया।

सौर्यपुरमे तीक्ष्णबुद्धि राजकुमारोने वसुदेवसे शस्त्रविद्याए और कलाए सिखानेकी सविनय प्रार्थना की। वसुदेवने अनेक राजपुत्रोको

विद्या और कलाए सिखानी आरम्भ की। एक बार वसुदेव धनुर्विद्यामे प्रवीण कसादि अपने शिष्योको जरासिधको दिखाने के लिए राजगृह नगर ले गया। जरासिधकी आज्ञासे घोषणा हुई "सिहपुर नगरका महा उद्धत तथा अति प्रवल राजा सिहरथ सिहोके रथ पर सवार फिरता है। जो कोई वीर पुरुष उसे जीवित पकड कर राजाके सामने पेश करेगा, राजा उसे महा सामन्त मानेगा, मानधनसे पुरस्कृत करेगा, रानी कालिदसेनासे उत्पन्न अपनी पुत्री जीवयशा उसे विवाहेगा और जो देश वह मागेगा, राजा उसको वही देश देगा।"

जब वसुदेवने यह घोषणा सुनी, तब उसने अपने सब शिष्य राजकुमारोको इस घोषणाका विस्तृत ब्योरा लानेकी आज्ञा की। ब्योरा मिलते ही वसुदेव सिह रथ पर सवार होकर राजा सिहरथसे लडने गया। वसुदेवके रथके सिह तो विद्यामय अर्थात् जादूके सिह थे और राजासिहरथके रथके सिह पशु थे। दोनोमे भयंकर युद्ध हुआ, पर अन्तमे राजा वसुदेवकी आज्ञासे उसके शिष्य कसने राजा सिहरथको पकडकर बाध लिया। वसुदेवने प्रसन्न होकर उससे इस वीरताकामके पूर्ण बदले कोई वर मांगनेको कहा। राजकुमार कसने अपने वरको भविष्यमे लेने का वचन मागा। वसुदेवने उसकी बात मान ली।

कुछ दिनो के पश्चात् वसुदेवने सिहरथको राजा जरासिघके सामने जीवित बधा हुआ पेश किया। जरासिध सिहरथ को बधा देखकर वसुदेव से बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी पुत्री राजकुमारी जीवयशा को विवाहने के लिए कहा। इस पर वसुदेवने कहा कि उद्धत राजा सिहरथ को पकडने का श्रेय कसको ही है। इसलिए उससे ही जीवयशाका विवाह किया जाय।

तब जरासिधने कसको बुला कर उसका कुल तथा परिचय आदि पूछा। कसने कहा, "हे राजन्! कोसम्बी नगरी मे मद्य-

विक्रेता मंजोदरी मेरी माता है।" यह सुनकर जरासिंघ चिंतित होकर सोचने लगा, कि देखनेमें तो यह राजपुत्र सदृश है, यह कलाली का पुत्र नहीं हो सकता। राजाने तुरन्त कोसम्बीसे मजोदरीको बुलवाया। वह एक मुद्रा और मजूषा (बक्स) लेकर राज दरबारमे उपस्थित हुई।

राजाके पूछनेपर मजोदरीने बताना आरम्भ किया, "हे राजन्! हमने यमुनाके प्रवाहमे यह मजूषा पायी थी। उसमेसे यह बालक निकला। दया करके मैंने इसे पाल-पोस कर बडा किया। हर रोज यह बालक सेकडो उलहने मेरे पास लाता, पर मै उनसे न डरी। यह स्वभावसे निर्दयी और शरारती था और छोटे बालकोके सिर आपसमे भिडा देता था। इतना ही नही, यह वेश्याओकी चोटिया पकड कर खीचता था और उन्हे परेशान करता था। तब लोगोकी शिकायतो पर मैंने इसे घरमे निकाल दिया। फिर यह भिक्षाके लिए विदेश चला गया और किसी से शस्त्र-विद्या सीख कर अब शस्त्र-विद्यामे निपुण बन गया है। इसकी माता यह मजूषा है, मै नही हूँ। इस युवक मे जो गुण-दोष है, उनके लिए मै उत्तरदायी नही, यह मजूषा या यह स्वय है।" यह कहकर मजोदरीने वह मजूषा राजा जरासिंघ को दिखायी।

राजा जरासिंघने मजूषा देखी, तो उसमे राजा उग्रसेनकी मुद्रिका पाई। राजाने मुद्रिका पढी। उसमे लिखा था —"यह राजा उग्रसेन और रानी पद्मावतीका पुत्र जब गर्भमे आया, तभी माता-पिताके लिए भारी पडा। यह अशुभ नक्षत्रमे उत्पन्न हुआ। इसलिए इसको मजूषामे बन्द करके यमुना नदीम बहाया।"

यह पढ कर राजा जरासिंघने जान लिया कि यह तो मेरी बहन पद्मावतीका पुत्र है, इसलिए मेरा भानजा है। इससे राजा अति हर्षित हुआ और उसने अपनी पुत्री जीवयशा को कसके साथ ब्याह दिया।

कसने सोचा कि मेरे जन्म लेते ही मेरे पिता राजा उग्रसेनने मुझे नदीमें बहाया, इसलिए वह मेरा पिता नही, शत्रु है। उसके मनमें पितासे बदला लेनेकी भावना पैदा हो गयी। कसने जरासिघसे मथुराका राज मांगा। राजाने उसको मथुराका राज दे दिया। तब कसने एक बड़ी सेना लेकर जीवयशा सहित मथुरापर चढाई की और अपने पिता राजा उग्रसेनको युद्धमे पराजित करके बाध कर मथुरापुरीके द्वारमें रखा। फिर आप स्वय जीवयशा सहित मथुरामे सुखसे राज करने लगा।

कसने मथुराका राज पानेमे वसुदेवकी कृपा समझ कर उसके उपकारसे उऋण होने और प्रत्युपकारके विचारसे बडी भक्ति तथा आदर-सम्मानसे वसुदेवको मथुरा बुलाया और उनसे अपनी बहन देवकी परणाई। कसने राजा वसुदेवको बडे स्नेहसे मथुरामे ही कुछ समय अतिथि रूपमे रखा।

एक दिन कसके बडे भाई अतिमुक्तक मुनि कसके घर आहारके लिए आये। रानी जीवयशा उन्हे नमस्कार करके चचलभावमे हसने लगी। इतना ही नही, उसने देवकी के रजस्वलापनेके गदे वस्त्र मुनिजीके सामने डालते हुए कहा, "ये आपकी बहन देवकीके आनन्द वस्त्र हैं। इन्हे देखिए।" इससे बढ कर एक मुनि की अविनय और अपमान क्या हो सकता था?

मुनि महाराज ससार स्थितिके जाननेवाले थे। जीवयशाके ये वचन सुनकर वचनगुप्तिको छोड कर कहनेलगे, "यह तेरी बडी मूर्खता है, जो शोकके स्थानपर आनन्द मना रही है। इस देवकीके गर्भ से ऐसा पुत्र पैदा होगा, जो तेरे पति कस और पिता जरासिध दोनोका घातक होगा।"

मुनिकी भविष्यवाणी सुनकर जीवयशा आंखोमें आंसू भरकर पतिसे मुनिके वचन कहने लगी। रानीसे ये वचन सुनकर राजा

कस बड़ा चितित और शकावान हुआ। उसने अपने जीजा राजा वसुदेवके पास जाकर अपना वचन मागा और कहा कि स्वामी मुझे यह वर दो कि देवकीका जापा उसके घर हो। वसुदेवको तो इस वृत्तान्त का कुछ पता था नही, इसलिए उसने अपनी अनुमति यह कहकर दे दी कि यह तो उचित ही है, कि बहन का जापा भाईके घर हो। परन्तु जब अतिमुक्तक मुनिके वचनका पूरा वृत्तान्त देवकी को मालूम हुआ, तब वह शोकातुर होकर पति वसुदेवसे रोकर कहने लगी, "हे प्रभो ! आपके बहुत पुत्र है, पर यदि मेरा पहला पुत्र ही मारा गया तो मै क्या करूगी ?"

राजा वसुदेव और उसकी रानी देवकी दोनो सहकार वनमे चारण ऋद्धिके धारक और अवधिज्ञानी मुनि अतिमुक्तकके पास गये और उन्हे नमस्कार करके उनके समीप बैठ गये। मुनिने उन्हे धर्मवृद्धिका आशीर्वाद दिया।

राजा ने मुनि से पूछा, "हे महाराज, यह कस अपने पिताका वैरी क्यो हुआ ? क्या इस कारणका सम्बन्ध इसके इसी जन्म से है या पूर्वजन्मसे और इसने ऐसा क्या तप किया जिसके फलस्वरूप इसने यह राज-विभूति पायी ? और मेरा पुत्र इस का घातक कैसे होगा ?"

महापुरुषोका स्वभाव जीवोके सन्देह दूर करना है। मुनि अतिमुक्तक वसुदेवका सशय दूर करने के लिए कहने लगे, "हे देवोके प्यारे परम सज्जन ! सुन। इसी मथुरा नगरमे उग्रसेनके राजमें इस कसका जीव पहले भवमे वशिष्ट नामका तापस था। वह पचाग्नि तपमे प्रवीण था। एक पाव पर खड़ा रहता था और अपनी भुजाको ऊपर उठाये रहता था। यू यह तापस ज्ञानसे रहित था, इसने जटाए बढा रखी थी और यमुनाके तटपर तप करता था। मथुरा नगर की पनिहारिया यमुनासे पानी लेने आया करती थीं। उनमे जिनदास सेठकी दासी प्रयग तिलका भी जल भरने गयी।

दूसरी सभी पनिहारियोंने उस दासीको तापस वशिष्ठको प्रणाम करनेको कहा, परन्तु दासीने कहा, "इस पर मेरी भक्ति नही, मैं इसको कैसे प्रणाम करू ?" तब इसकी साथिन पनिहारियो ने हठ करके उस दासीको तापसके पावमे डाल दिया। इस पर उस दासीने कहा, "मैं तो धीवरके पाव पडी हू।" वशिष्ठ तापसने दासीके इन वचनो को अपना अपमान समझा। उसने राजाके पास जाकर पुकार-की, कि जिनदास सेठने मेरी निन्दा की है। राजाने जिनदास सेठको दरबारमे बुलाकर पूछा कि उसने तापसको क्या दुःख दिया है।

सेठ जिनदासने राजाको उत्तर दिया, "हे राजन्! मैं इस तापसको जानता ही नही हूँ, फिर इसे नाराज करनेका कोई प्रश्न नही होता।" तब तपस्वी वशिष्ठने दासीका नाम लिया। इस पर राजाने दासीको बुलवाकर कहा, "हे पापिनी! तूने तपस्वीकी निदा क्यो की और इन्हे नमस्कार क्यो नही किया ?" दासी प्रियगतिलका-ने उत्तर दिया, "हे महाराज! यह तपस्वी नही, धीवर समान कुबुद्धि है। इसकी जटामे अनेक नन्ही-नन्ही मछलियाँ भरी हुई हैं।" जब राजाने तपस्वीकी जटाएँ खुलवायी उनमे से अनेक छोटी-छोटी मछलियाँ निकली। तपस्वी बडा लज्जित हुआ। लोगोने उसका बहुत उपहास किया और कहा कि झूठा ढोगी तपस्वी है।

तब वशिष्ठ तपस्वी कुपित होकर मथुरासे वाराणसी गया और वहाँ गगाके किनारे तप करने लगा। स्वामी वीरभद्र पाच सौ मुनियो सहित वही गगातट पर पधारे। तब एक पुरुषने अनजानेमे तपस्वीकी प्रशसा की कि यह वशिष्ठ नामक तपस्वी घोर तप करता है। मुनिने उस पुरुषको तपस्वी की झूठी प्रशसा करनेसे मना किया कि अज्ञान तप बडाईके योग्य नही है।

मुनिकी यह बात सुन कर तपस्वी वशिष्ठने पूछा, मैं अज्ञानी कैसे हूँ ?" तब मुनिने उससे कहा, "तुम जीवोको पीड़ा देते हो,

इसलिए अज्ञानी हो। पचाग्नि तपमें छोटे जीवोकी हिंसा होती है। इससे सयम नही होता। प्राणियोकी दया ही सयम है। तुम संसार से विरक्त हो गये, परन्तु मिथ्यादर्शन, ज्ञान और चरित्रके कारण अभिमानी हो। और जहाँ अभिमान है, वहाँ ज्ञान नही होता। ज्ञान बिना सयम कहाँ ? प्राण-संयम बिना तेरा तप काया-क्लेश है, शरीरको कष्ट देना है। तुम्हारा सयम-रहित तप मुक्तिके लिए कैसे हो सकता है ? एक जैन धर्ममे ही तप, सयम, ज्ञान, दर्शन और चरित्र है।" स्वामी वीरभद्रने आगे कहा, "हे तपस्वी ! तेरा पिता मरकर साप हुआ। वह ईधनमे जल रहा है।"

मुनिकी उपर्युक्त बात सुनकर तपस्वीने जब कुल्हाडेसे काठको फाडा, तब उसमे साप दिखाई दिया। तब उस वशिष्ठ तपस्वीने अपने तपको अज्ञान-रूप जाना। वह समझा कि उसका पिता भी तप करके स्वर्ग गया है, उसे सांपकी योनिमे देखकर वह दुखी हुआ।

जैन धर्मके ज्ञानमई रूपको समझकर तब उस तपस्वीने वीर-भद्र आचार्यसे मुनि दीक्षा ली। वह दूसरे मुनियो के साथ तप करने लगा, पर उसे भोजन मिलनेमे बाधा पड जाती। आचार्य वीरभद्र ने तब वशिष्ठ मुनिको शास्त्र-पठनके लिए बारी-बारीसे मुनि शिवगुप्त और सुमति मुनिको सौपा। यतिधर्मको जाननेवाला वह वशिष्ठ मुनि जगमे प्रसिद्ध हो गया और अकेला भ्रमण करता हुआ मथुरा आया।

मथुरामे राजा-प्रजा सब मुनि वशिष्ठको गुरु जान कर पूजने लगे। एक दिन वह मुनि आतापन योग धारण करके पर्वतके शिखर पर बैठा था। सात देवांगनाएँ उसके पास आकर कहने लगी, "हे देव ! हमको आपकी जो आज्ञा हो, वही हम करेंगी।" मुनिने उत्तर दिया, "इस समय मुझे कोई आवश्यकता नही है। तुम अपने-अपने स्थान जाओ।" वे सातो देवागनाएँ अपने-अपने स्थानको चली गयी।

फिर वशिष्ठ मुनिने एक माहका उपवास किया। इस अति निस्पृही महा तपस्वीको सभी लोग उपवासके पश्चात् आहार देना चाहते थे। मथुराके राजा उग्रसेनने लोगोको मना किया और कहा कि मुनिको पारणा वह स्वय ही देगा। इसलिए और किसीने तो मुनिको आहार दिया नही और राजा उग्रसेन प्रमादवश तीन बार आहार देना भूल गया। एक बार तो पारणेके समय राजा जरासिंध-का दूत आ गया था। दूसरी बार अग्निके उपद्रवसे विस्मरण हो गया और तीसरी बार हाथीके उपद्रवसे भूल हो गयी। परिणाम-स्वरूप मुनि वशिष्ठ नगरमे भ्रमण करके बिना आहार मिले खेदसे पीडित होकर वनको लौट रहा था। उपवाससे शरीर अति शिथिल होनेके कारण मुनिजी नगरके द्वार पर कुछ क्षण खडे रहे।

उस समय किसीने कहा, "राजाने बडा अन्याय किया कि जो न आप मुनिको आहार दिया और न किसी दूसरेको देने दिया।" ये वचन सुनकर मुनिको बडा रोष हुआ और उसने उन सातो देवागनाओं-को याद किया। वे तुरन्त आ खडी हुई। मुनिने उन्हे आदेश दिया कि "अगले जन्ममे तुम मेरा काम करना।" ऐसा कह कर मुनि नगरसे बाहर चला गया।

मुनिने राजा उग्रसेनको क्लेश देनेका निश्चय किया, कि मैं इसका पुत्र होकर इसे पीडा दूंगा।

मुनि प्राण तजकर राजा उग्रसेनकी रानी प्रभावतीके गर्भमे आया। जिस दिनसे वह गर्भमे आया, उसी दिनसे माता-पिताको क्लेशकारी हुआ। एक दिन राजाने रानीका क्षीण शरीर देखकर पूछा, "आपको क्या दोहला उपजा है ?" रानीने उत्तर दिया, "हे नाथ ! इस गर्भके कारण मुझे जो दोहला हुआ है, न वह समझमें आता है और न कहने योग्य है।" राजाके आग्रह पर रानीने आंखोमे आंसू भरकर गद्गद् वाणीसे कहना आरम्भ किया, "हे प्रभो ! इस

गर्भके दोषसे मुझ पापिनको दोहला हुआ है, कि आपका पेट चीरकर आपका रक्तपान करूँ।" तब राजाने अपने शरीरके समान पुतला बनवाकर उसमे रस भरकर रानीकी इच्छा पूरी की। तब नवे महीनेसे रानीने एक पुत्रको अशुभ नक्षत्रमे जन्म दिया, उस बालकका टेढा मुख था और भृकुटी चढी हुई थी। ज्योतिषियोने बालकको माता-पिताके लिए हानिकर बताया। राजाने उस बालकको कासेकी मजूषामे बन्द करके यमुनामे बहा दिया। उस मजूषाको कोसाबी नगरीमे मजोदरी मद्यकारनीने पकडा और उसमे जो बच्चा निकला, उसका नाम कस रखा। इससे आगे की बात आप जानते ही है। उस दुष्टने अपने निश्चयानुसार पिताको पकड कर बन्द रखा है। अब तेरा पुत्र उसके पिता उग्रसेनको छुडायेगा।"

यह सब कथा अतिमुक्तक स्वामीने राजा वसुदेवसे कही। इसके पश्चात् मुनि राजा वसुदेवको उसके पुत्रके विषयमे कहने लगे, "इस देवीके सातवाँ पुत्र नवाँ नारायण होगा। शख, चक्र, गदा और खड्ग धारक तेरा यह पुत्र कसादिक शत्रुओंको मार कर तीन खण्ड का स्वामी होगा। इससे बडे छह पुत्र होगे। उनको मृत्यु ही नही। उसी जन्मसे मोक्षगामी होगे। हे राजन्! आप चिन्ता न करे। सात पुत्र देवकीसे होंगे और जो एक पुत्र रोहिणीसे होगा, वह बलभद्र होगा।"

इतना कहकर स्वामी अतिमुक्तक राजा वसुदेवसे इन सब पुत्रोके पूर्व जन्मोकी बात कहने लगे,

"इसी मथुरा नगरमे राजा सूरसेन था। उसके राजमे भानु नामका एक सेठ बारह करोड रुपयेका स्वामी था। उसकी पत्नीका नाम यमुना था। उस सेठके सात पुत्र (१) सुभानु, (२) भानुमित्र, (३) भानुसेन, (४) सूर, (५) सूरदेव, (६) सूरदत्त और (७) सूरसेन थे। इनकी पत्नियोंके नाम (१) कालिन्द्री, (२) तिलका, (३)

कान्ता, (४) श्री कान्ता, (५) सुन्दरी, (६) द्विती और (७) चन्द्र-कान्ता थे। कुछ समयके पश्चात् सेठ भानुने अभयनन्दि गुरुसे और सेठानी यमुनाने साध्वी जिनदत्तासे दीक्षा ले ली।

"माता-पिताके त्यागी बन जानेके पश्चात् ये सातों भाई जुए और वेश्यागमनके दुर्व्यसनोमे फँस गये और सब धन नष्ट कर दिया। फिर वे चोरी करनेके लिए उज्जयनी गये। रातको छहो बडे भाई, सातवे छोटे भाई सूरसेनको महाकाल मसानभूमिमे छोडकर नगरमे गये। जाते समय वे छोटे भाईसे कह गये कि यदि वे मारे जायँ या पकडे जायँ तो वह वहाँसे भाग जाय। जो धन वे चोरी करके लायेंगे, वह बराबरका बाँटकर उसका भाग भी उसे देंगे। यह कहकर वे चोरी करने चले गये।

"उस समय उज्जैनका राजा वृषभध्वज था। उसकी रानी कमला और एक पुत्र दृष्टिमुष्टि बडा योद्धा था। राजकुमारकी पत्नीका नाम वप्रश्री था, उनके पुत्रका नाम वज्रमुष्टि था। इस राजकुमार वज्रमुष्टिका विवाह राजा विमलचन्द्र और रानी विमला-की राजकुमारी मगीसे हुआ था। यह मगी बहू अपने पति वज्रमुष्टि की तो बडी प्रिया थी पर सासकी सेवामें सुस्त थी। इससे उसकी सास उस बहूसे रुष्ट रहने लगी और वह कोई ऐसा उपाय सोचने लगी, जिससे किसी प्रकार उसके पुत्रका मन उससे फिर जाय या वह मर जाय।

"एक दिन वज्रमुष्टि वसन्तोत्सवमे वनमे घूमने चला गया और मगीकी सासने घडेमे एक साँप रखवाया और बहू मगीसे कपट करके कहने लगी, घडेमे उसके लिए मोतियोकी माला है, उसे निकालकर पहन ले। ज्योही मंगीने घडेमे हाथ डाला, साँपने उसे डस लिया। मंगी साँपके विषसे मूर्छित हो गयी। सासने बहूको नौकरोंसे महा-काल मसानमें डलवा दिया।

"रातको जब वज्रमुष्टि घर लौटा, तब वह सब वृत्तान्त सुनकर अपनी प्रिया पत्नी मगीको बड़े स्नेहवश ढूँढने महाकाल मसानमे गया। उसके एक हाथमे खड्ग और दूसरे हाथमे दीपक था। राजकुमार वज्रमुष्टिने मसानमे वरधर्म मुनिको योगासन लगाये देखा। राजकुमार उन्हे तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करके कहने लगा, "हे पूज्यपाद ! यदि मैं अपनी स्त्रीको पाऊँगा, तो मैं सहस्रदल कमल से आपकी पूजा करूँगा।" यह कहकर वज्रमुष्टि अपनी स्त्रीको ढूँढने गया और उसे पाकर मुनि महाराजके पास ले गया। मुनिके चरणारविन्दके प्रसादसे मगी निर्विष हो गयी। वज्रमुष्टि मगीको मुनिके निकट छोडकर और उसके लौटने तक वही ठहरनेको कहकर स्वय सुदर्शन नामक सरोवरसे कमल लेने चला गया।"

मुनि अतिमुक्तकने राजा वसुदेवसे आगे कहा, "इतनेमे मसानमे एक घटना और हुई।" राजा वसुदेवने आश्चर्यसे पूछा, "हे प्रभो ! वह क्या घटना थी ?"

मुनि अतिमुक्तकने आगे कहना आरम्भ किया, "वज्रमुष्टिके सरोवर पर जानेके पश्चात् सातवाँ भाई सूरसेन वहाँ मसानमे आया। उसने वहाँ वज्रमुष्टिकी स्त्रीको देखा और उसे रानीसे स्नेह हो गया। तब उसने अपने मनमे सोचा कि इस नारीके पतिकी इसके प्रति कितनी प्रीति है, यह तो शायद मै न देख सकूँ, पर इस नारीकी अपने पतिसे कैसी प्रीति है, इसकी परीक्षा लेनी चाहिए। तब उसने उसे अपना महा सुन्दर रूप दिखाया और अपने मीठे वचन सुनाये। वह पापिनी मगी उसका रूप देखकर और मीठे वचन सुनकर कामाग्निसे बेचैन हो गयी। मगीने उसको कहा, "हे देव ! आप मुझे अगीकार करो।" सूरसेनने उस स्त्रीसे कहा, "तेरे पतिके जीते जी मैं तुझे कैसे स्वीकार कर सकता हूँ ? तेरा पति महा बलवान योद्धा है। उससे मै डरता हूँ।" तब उस स्त्रीने कहा, "हे नाथ ! आप भय मत करो। मैं उसे खड्गसे मार दूँगी।" सूरसेनने उससे

कहा, "यदि तू उसे मार देगी तो मै तुझे अगीकार कर लूंगा।" ऐसा कहकर सूरसेन उस स्त्रीके कामको देखनेके लिए छिप कर बैठ गया।

राजा वसुदेवने मुनिसे पूछा, "तब उस मगीने क्या किया ?" मुनि अतिमुक्तकने कहा, "हे राजन्! जब व्यक्ति पापके मार्ग पर अग्रसर हो जाता है, तब वह कितना आगे चल सकता है, इसकी कोई सीमा नही। जब वज्रमुष्टि लौटकर मुनिको कमल चढा कर नमस्कार करने लगा, तब मगीने उसे मारनेके लिए खड्गसे वार किया, पर सूरसेनने उसके हाथको पकड़कर वज्रमुष्टिको बचा लिया। इस नारीके चरित्रको देखकर सूरसेन ससारमे विरक्त हो गया और मगी अपने दोषको छिपानेके लिए मूर्छा खाकर धरती पर गिर पडी। तब उसके पति वज्रमुष्टिने उससे पूछा, "हे प्रिये! तू क्यो डरी? यहाँ तो भयका कोई कारण नही है।" वज्रमुष्टि इस प्रकार पत्नीका धैर्य बँधाकर और मुनि वरधर्मको नमस्कार करके मगी-सहित घर लौटा। कुछ देर पश्चात् सूरसेनके छहो भाई चोरीका बहुत-सा धन लेकर वहाँ आये। उन्होने उस धनके सात बराबर हिस्से करके सूरसेनसे अपना भाग लेनेको कहा। तब सूरसेनने अपना भाग नही लिया और भाइयोसे कहा कि यह ससारी जीव स्त्रियोके लिए धन कमाता है, पर स्त्रियोकी चेष्टा और काम तो मैने अति निकटसे देख लिये। उसके भाइयोंके यह पूछने पर कि उसने क्या देखा, सूरसेनने वज्रमुष्टि और मगीका रातका सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस वृत्तान्तको सुन कर उन्हे भी ससारसे विरक्ति हो गयी और उन्होने वरधर्म मुनिसे जैनमुनि दीक्षा लेली और चोरीके धनको अपनी स्त्रियोके पास भेज दिया।

"कुछ दिनोके पश्चात् ये मुनि गुरु वरधर्मके साथ उज्जैन आये। वज्रमुष्टि राजकुमारने इन्हे देखा। उसने इनसे अपनी स्त्री मंगीका सब वृत्तान्त सुनकर और इनके त्याग तथा वैराग्यसे प्रभावित हो मुनि बन

गया। उन सातों भाइयोकी स्त्रियाँ भी अपनी सासकी गुरुआनी जिनदत्ता आर्यिकासे दीक्षा लेकर साध्वी बन गयी। ये भी उज्जैनमें पधारी। तब मगी भी इनका वृत्तान्त सुनकर ससारको निंद्य समझ कर अपने दुश्चरित्रकी निंदा करके गृह त्याग कर आर्यिका बन गयी।

"ये सब महा तप करके प्रथम स्वर्गमे देव हुए। वहाँसे चल कर भरत क्षेत्रमे विजयर्द्धि गिरिकी दक्षिण श्रेणीमे नित्यलोक नगरमे चित्रकूल राजाकी मनोहरी रानीके उदरसे सात भाइयोमे बड़े भाई सुभानुका जीव चित्रांगद पुत्र हुआ और छह भाई इन ही माता-पिताके तीन युगल पुत्र हुए। उनके नाम गरुडकान्त, सेन, गरुडध्वज, गरुड़वाहन, मणिचूल और हेमचूल थे। ये सातो ही राजकुमार अति सुन्दर और समस्त विद्याओके पारगामी थे। पर एक घटना देखकर जवानीमें इन सातों भाइयोको ससारसे विरक्ति हो गयी।"

राजा वसुदेवने मुनि अतिमुक्तकसे वह घटना पूछी। मुनि श्रीने वह घटना यो बतायी, "मेघपुरके राजा धनजय और रानी सर्वश्रीकी पुत्री धनश्री राजकुमारी थी। वह अपने रूप, यौवन और गुणोके कारण जगतमे प्रसिद्ध हो गयी। उसका स्वयम्वर रचाया गया, जिसमे सभी विद्याधरोके पुत्र धनश्रीके द्वारा चुने जानेकी इच्छासे सम्मिलित हुए। पर धनश्रीने मामाके पुत्र हरवाहनके गलेमे वरमाला डाली। तब सभी उपस्थित राजा क्रोधमे भर गये और कहने लगे कि उनको स्वयम्वरमे व्यर्थ निमन्त्रित करके अपमानित किया गया क्योकि राजा धनजयकी इच्छा तो राजकुमारी हरवाहनको देने की थी। फिर वे क्रुद्ध राजा राजकुमारीको पानेके लिए आपसमे लडने लगे। युद्धमे अनेक सामन्तोको मौतके घाट उतारा गया। युद्धमें इस दृश्य तथा इसके कारणको देखकर चित्रकूलके सातो पुत्रोंने इन विषयो को पापका कारण समझ कर भूतानन्द केवली से मुनि व्रत लिये।

"सात्तो भाई घोर तप करके स्वर्गमें गये। स्वर्गसे चल कर चित्रांगद नामका बडा भाई हस्तिनापुरमे सेठ श्वेतवाहन और उसकी

पत्नी बधुमतीके यहाँ पुत्र हुआ, जिसका नाम शख रखा गया। और छोटे छह भाई इसी नगरमे गगदेव राजा और उसकी रानी नन्दयशा के तीन युगल पुत्र हुए। इनके नाम (१) गग, (२) गगदत्त, (३) गगरक्षक, (४) नन्द, (५) सुनन्द और (६) नन्दिसेन थे।

"इसके पश्चात् रानी नन्दयशाके चौथे गर्भमे सातवाँ पुत्र आया वह आगामी जन्ममे कृष्ण होगा। यह गर्भस्थ बालक रानी नन्दयशा का पूर्वजन्मका विरोधी है। इसलिए इसके जन्म लेते ही, रानी नन्दयशाने इसको तज दिया। उस नवजात त्यक्त शिशुको रेवती धायने पाला। सब उसको निर्नामिक—बिना नामका कहने लगे। बडा होने पर निर्नामिक और सेठके पुत्र शखमे स्नेह बढ गया। भविष्यमे वह निर्नामिक बलभद्र होने वाला था। और शख नारायण होने वाला था।

"एक दिन निर्नामिक और शख वनमे गये। जनता भी वहाँ गयी हुई थी और निर्नामिकके छहो बडे भाई वहाँ भोजन कर रहे थे। शख द्वारा निर्नामिकका परिचय भाइयोसे करानेपर उन्होने उसे भी भोजनमे सम्मिलित होनेको कहा। परन्तु नन्दयशाने उसे देखते ही क्रोधसे लात मारी। निर्नामिक और शख दोनोको नन्दयशाके इस दुर्व्यवहारसे बडा दुख हुआ।"

वसुदेवने अतिमुक्तक स्वामीसे कहा, "महाराज यह बहुत जरूरी बात थी। फिर क्या हुआ ?"

स्वामी अतिमुक्तक आगे कहने लगे, "बात तो निःसन्देह बुरी थी। फिर निर्नामिक और शख द्रुमषेण अवधिज्ञानी मुनिसे एकान्तमे निर्नामिकके पूर्व जन्मका हाल पूछने लगे। मुनि द्रुमषेणने उन्हे बताया, "गिरनार नगरमे चित्ररथ महा गुणवान राजा और उसकी कनकमालिनी रानी रहते थे। परन्तु राजा कुबुद्धियो की कुसगतिसे मासाहारी बन गया। उसका अमृतरसायन रसोइया मास आदि भोजन बनानेमे बड़ा प्रवीण था। राजाने उससे प्रसन्न होकर उसे दस गाँव पुरस्कारमे दिये।

'एक दिन राजा चित्ररथने सुधर्म मुनिसे मासभक्षणके दोषोंपर उपदेश सुनकर अपने आपको बहुत धिक्कारा । वह राजा राजकुमार मेघरथको राजपाट सौंपकर तीन सौ राजाओं सहित मुनि हो गया और मेघरथने श्रावकके व्रत लिये । नया राजा अमृतरसायन रसोइये-पर बडा क्रुद्ध हुआ और उसके पास एक गाँव छोडकर शेष सब गाँव छीन लिये । यह रसोइया सुधर्म मुनिसे द्वेष करने लगा, क्योंकि उसके विचारमें इस मुनिने उसकी आजीविका छिनवायी थी । उस रसोइयेने एक श्रावक होनेका ढोंग रचा और मुनि सुधर्मको विषके समान कडुवी तुम्बीका आहार दिया । इससे मुनि महाराजकी मृत्यु हो गयी और वे अहमिन्द्र देव हुए और रसोइया मरकर तीसरे नरकमें गया । वहाँ बहुत दुःख भोगकर वह वनस्पति योनिमें गया और फिर उस रसोइयेका जीव मलय देशके पलाश ग्राममें यज्ञदत्तकी यक्षला स्त्रीके गर्भसे यक्षलिक पुत्र हुआ । उसी यज्ञदत्तका दूसरा पुत्र यक्षस्थावर हुआ ।

"एक दिन ये दोनों भाई यक्षलिक और यक्षस्थावर गाडी भरकर जा रहे थे । मार्गमें एक सर्पनी आयी । छोटे भाईके बहुत मना करने पर भी बडे भाईने गाडी सर्पनीके ऊपरसे चलायी । इससे सर्पनीका फन टूट गया । वह मर कर पाप कर्मोंकी कमीके कारण मनुष्य गतिमें पैदा हुई ।

"उस सर्पनीका जीव श्वेताबिका पुरीमें वासन राजाकी वसुन्दरी रानीसे नन्दयशा पुत्री हुई । बडी होने पर नन्दयशाका विवाह राजा गगदेवसे हुआ । इधर कुछ समय पश्चात् यक्षलिक मरकर नन्दयशा के गर्भसे निर्नामिक नामका पुत्र हुआ । पूर्व जन्मके विरोध तथा वैरके कारण नन्दयशा अपने ही पुत्र निर्नामिकसे द्वेष करने लगी । यह निर्नामिक उसी रसोइये अमृतरसायनका जीव है । मुनि-हत्याके पाप-कर्मोंके योगसे इसने कुगतियोंमें महा दुःख भोगे है ।"

यह कथा मुनि द्रुमषेणने निर्नामिक और उसके मित्र शंख, राजा गगदेव आदिको सुनायी । ससारके जीवोके इस पापपूर्ण विचित्र

व्यवहार और माँको अपने पुत्रसे द्वेषकी कथा सुन कर राजा अपने देवनन्द राजकुमारको राज देकर दो सौ नृपो सहित मुनि हो गया। राजाके छहो बडे बेटे, छोटा बेटा निर्नामिक और सेठका पुत्र शख भी ससारसे विरक्त होकर मुनि हो गये और तप करने लगे।

"रानी नन्दयशा, रेवती धाय और बन्धुमती सेठानी इन तीनो ने सुव्रता आर्यिका से व्रत लिये।

"निर्नामिक मुनिने कठोर तप करके नारायण पदका कर्मबन्ध बाधा और ये सब देवलोक चले गये। रेवती धायका जीव भद्रलपुर मे सुदृष्टि सेठकी अलका स्त्री हुई। रानी नन्दयशाका जीव देवकी हुई। गग आदि इस जन्ममे इस देवकीके पुत्र होंगे और इसी जन्मसे मोक्षगामी होगे। अलका सेठानीके यहाँ तीन युगल मृतक पुत्र होगे। इन्द्रकी आज्ञासे देव सेठानीके तीन युगल मृतक पुत्रोको यहाँ लायेगे और तेरे पुत्र भद्रलपुरमे सुदृष्टि सेठके घर अलका सेठानीके नवयौवन युक्त पुत्र होगे।"

यह कथा अतिमुक्तक स्वामी वसुदेवको सुना रहे थे। स्वामीजी ने राजासे कहा, "तेरे छहो पुत्रोके नाम (१) नृपदत्त, (२) देवपाल, (३) अनिकदत्त, (४) अनिकपाल, (५) शत्रुघ्न और (६)यतिशत्रु होगे। ये छहो राजकुमार हरिवश आकाशके चन्द्रश्री नेमिनाथ बाईसवे तीर्थकरके शिष्य होगे और निर्वाण प्राप्त करेंगे। इन छहों पुत्रोके जन्मके पश्चात् देवकीके चौथे गर्भमे निर्नामिक मुनिका जीव सातवाँ पुत्र कृष्ण होगा, जो नवाँ वासुदेव है।"

अतिमुक्तक स्वामीसे वसुदेव इस प्रकार कसके पूर्व जन्मों, तपके के प्रभावसे वैभव, अपने वलदेव, वासुदेव और उन तीनों युगलोके इस प्रकार आठ पुत्रो और देवकी स्त्रीके पूर्व जन्मोकी कथा और इस जन्मका प्रताप सुनकर बड़ा हर्षित हुआ। राजा वसुदेव और भी परम धर्म श्रद्धावान होकर मथुरामे सुखसे राज करने लगा।

●

: १६

महाउपवास

गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे कहा, "हे श्रेणिक ! देवकीके पति वसुदेव अपने वशमे जिनेन्द्र तीर्थकरके जन्मकी बात सुन कर बहुत हर्षित हुए और अतिमुक्तक स्वामीसे पूछने लगे, "हे नाथ ! मैं हरि-वश के तिलक जिनेन्द्र देवका वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। कृपा कर सुनाइए।" तब मुनि अतिमुक्तकने कहना आरम्भ किया, "इस जम्बुद्वीपमे सीतोदा नदीके दक्षिण तट पर पद्मा नामक विदेह क्षेत्रमे स्यघपुर नगरमे अर्हदास राजा राज करता था। वह महाजैन धर्मा-वलम्बी था। उसकी रानीका नाम जिनदत्ता था, वह पूजन आदिमे बडी प्रवीण थी। एक रात उसने स्वप्नमे (१) लक्ष्मी, (२) गज, (३) सिह, (४) सूर्य और (५) चन्द्र देखे। रानीने शुभ नक्षत्रमे अपराजित पुत्रको जन्म दिया। यह राजा पृथ्वी पर अपने पराक्रमके कारण सुप्रसिद्ध और अजेय था। उसके माता-पिताने उसकी युवावस्था में चक्रवर्तीकी प्रीतिमती महा गुणवन्ती राजकुमारीसे उसका विवाह कर दिया। राजकुमार अपराजितने और भी बहुत से विवाह किये।

"एक दिन राजा अर्हदास अपने पुत्र और परिवारके साथ श्री विमलनाथ तीर्थंकरकी वन्दनाके लिए बनमे गये। उनके उपदेशके प्रभावसे अर्हदास अपराजित राजकुमारको राज्यभार सौप कर बहुतसे राजाओके साथ मुनि बन गये। एक दिन राजा अपराजितने सुना कि श्री विमलनाथ तीर्थंकर और उसके पिता मुनि अर्हदास गंधमादन पर्वतसे मोक्ष गये हैं। राजा अपराजितने यह समाचार

सुनकर तीन दिनका उपवास किया और निर्वाण कल्याण की भक्ति की और नगरके मन्दिरोमें पूजा की। अपने महलमे राजा अपनी रानीको धर्मोपदेश दे रहा था। उसी समय दो मुनि वहाँ पधारे। राजा-रानीने हाथ जोडकर उन्हे नमस्कार किया। राजाने मुनियोसे पूछा, "हे प्रभो! मुनियोका देख कर जिन-धर्मियोके मनमे हर्ष उत्पन्न होना पुरानी स्वाभाविक रीति है। पर आपको देखकर मेरे हृदयमे स्नेह उपजा है। सो कृपा कर बताइए कि क्या आपका और मेरा कोई पूर्व-सम्बन्ध है?"

तब उन दोनो मुनियोमे से बड़े मुनि कहने लगे, "हे राजन्! मैं तुम्हे हमारे और तेरे पूर्व-सम्बन्धों की बात सुनाता हूँ। पुष्करार्द्ध द्वीपमे पश्चिम विदेहमे विजयार्द्ध गिरिकी उत्तर श्रेणीमे एक नगर जयपुर है। वहाँका राजा सूर्यप्रभ सूर्यके समान प्रभावान है और धरतीके समान मनको हरनेवाली उसकी रानी धारिणी है। उस रानीके तीन पुत्र (१) चिंतागति, (२) मनगति और (३) चपलगति हुए, जो महापुरुषार्थी थे और आपसमे बडे स्नेहसे रहते थे। उसी उत्तर श्रेणीमे एक दूसरा नगर अरिजय था। वहाँके राजाका नाम भी अरिजय ही था। उसकी रानीका नाम अतीतसेना था। उनकी पुत्री का नाम प्रीतिमती था, जो अनेक विद्याओंमे निपुण और अपने गुणों तथा रूपके कारण पृथ्वी पर प्रसिद्ध थी। यद्यपि अनेक राजे-महाराजे उससे विवाह करनेके अभिलाषी थे, पर वह प्रीतिमती नारी जीवन-की निन्दा करती थी और उसे विवाह करना स्वीकार न था।"

राजा अपराजितने कहा, "प्रभो! बडी विचित्र थी वह राज-कुमारी।" बडे मुनिने कहा, "राजन्! इसम विचित्रताकी क्या बात है? विवाह न तो मनुष्य जीवनका ध्येय है और न इतना आवश्यक है कि विवाह जरूर किया जाय। क्या तुमने बाल ब्रह्मचारियों और बाल ब्रह्मचारिणियोका उल्लेख नही सुना है?"

"सुना है, महाराज !" राजाने उत्तर दिया। तब मुनिने कहा, "एक दिन राजकुमारी प्रीतिमतीने अपने पिता से कहा, "हे पिता ! मुझे एक वचन दो।" पिताने उसे ससारसे पराङ्मुख जानकर कहा, "एक तपका वचन छोड कर जो वर मागेगी, मै तुझे वही दूँगा।" तब राजकुमारीने कहा, "मेरी तो तप करनेकी ही इच्छा है। पर यदि आप मुझे वह आज्ञा न दे, तो मुझे यह वचन दे कि जो मुझे चलनेमे जीत लेगा, वही मेरा पति होगा, दूसरा नही।" राजाने बेटी की यह बात मान ली।

"इसके पश्चात् राजाने सब विद्याधरोको बुलाया और कहा, "हे समस्त विद्याधरो ! तुममे जो विद्याधर चलनेमे मेरी पुत्रीको जीतेगा, उसी से मै अपनी पुत्रीको परणाऊँगा। मेरी पुत्री और विद्याधरोमे से जो सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करके और जिन भगवान् की पूजा करके पहिले आकर मुझे आशीष देगा, वही जीतेगा। और जो जीतेगा वही इसे व्याहेगा।"

राजाके इतना कहने पर चलनेकी प्रतियोगिताकी तैयारी हो गयी। सब विद्याधर, राजदरबारी, और नगरके प्रतिष्ठित व्यक्ति इस प्रतियोगिता को उत्सुकतापूर्वक देखने के लिए वहाँ इकट्ठे हो गये। राजकुमारीकी चलनेकी निपुणता को सब जानते थे। उस समय राजा सूर्यप्रभु और रानी धारिणीके तीन पुत्र चितागति आदि चलनेके लिए तैयार होकर मैदानमे आ गये। राजा अरिजय वहाँ प्रतियोगिता और उसके परिणामको देखनेके लिए आ खडे हुए। दौड आरम्भ हो गयी। दौडनेका आदेश होते ही वे तीनो भाई राजकुमारी प्रीतिमतीके साथ दौडने लगे। सब दौडे पर वह प्रीतिमती सबसे आगे निकल गयी। वह इनसे बहुत आगे निकलकर सुमेरुकी प्रदक्षिणा देकर भद्रसाल वनमें जिन-प्रतिमाकी पूजा करके शीघ्र वापिस आ गयी। दौड़के श्रमसे राजकुमारी थकी हुई थी। पसीनेकी बूँदे उसके मुख पर मोतियोके समान चमक रही थी। उसने आकर पिताको

नमस्कार किया और आशीष दी। राजाने आशीषको आँखो तथा मस्तिष्क पर चढाया और अपनी पुत्रीको विजयपत्र दिया और ससार के भोगोसे विरक्त होकर तप करनेकी अनुमति भी दे दी।

"पिताकी अनुमति प्राप्त करनेके पश्चात् प्रीतिमती निवृत्त नामकी साध्वीसे बहुतसे व्रत लेकर आर्यिका बन गयी। इधर प्रतियोगिता मे हारे हुए चितागति आदि तीनो भाइयोने दमवर स्वामीसे मुनि-दीक्षा ले ली। वे कठोर तप करके चौथे स्वर्गमे देव हुए।

"स्वर्गसे चलकर मनोगति और चपलगति दोनो भाइयोके जीवोने गगनवल्लभ नगरमे राजा गगनचन्द्र और उनकी रानी गगन-सुन्दरीके मनोगतिका जीव तो अमितवेग पुत्र हुआ और चपलगति-का जीव अमिततेज नामका पुत्र हुआ। वे दोनो भाई पुण्डरीकणी-पुरी मे श्री स्वयप्रभ तीर्थकरसे अपने पूर्व जन्मोका हाल सुनकर मुनि हो गये। और चितागतिका जीव राजा अर्हद्दासका अपराजित पुत्र हुआ। इस अपराजितका जीव अबसे पाँचवे जन्ममे भरत क्षेत्रमे हरिवंश तिलक श्री अरिष्टनेमि या श्री नेमिनाथ बाईसवाँ तीर्थंकर होगा। अब अपराजितकी आयु केवल एक महीना शेष है। इसलिए उसे आत्म-कल्याण करना उचित है।"

इतना कहकर वह मुनि वहाँसे विहार कर गया। मुनि की यह बात सुनकर राजा अपराजितने आठ दिन तक भगवान्की पूजा की और फिर उसने अपने प्रीतिकर राजकुमारको राजकाज सौपकर ससारके विषय-भोगोसे विरक्त होकर प्रायोपगमन नामक सन्यास धारण किया और आराधना करने लगा।

मुनि अपराजितका जीव तप करके सोलहवे स्वर्गमें गया। फिर वहाँसे हस्तिनापुरके परम धर्मात्मा राजा श्रीचन्दकी श्रीमती रानीसे सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र पैदा हुआ। कुछ समय पश्चात् राजा श्रीचन्दने

अपने पुत्र सुप्रतिष्ठको राज सौंपकर सुमन्दिर मुनिसे मुनि-दीक्षा ले ली और मोक्ष गया।

राजा सुप्रतिष्ठने एक महीनेका उपवास करनेवाले मुनि यशोधरको विधिपूर्वक श्रद्धाके साथ भोजन दिया। कार्तिककी पूर्णमासीको राजा सुप्रतिष्ठ अपनी रानियो सहित बैठा था, कि उन्होने उल्कापात देखा और इससे उन्होने राजलक्ष्मीको विनश्वर समझा। राजा ससारमे विरक्त हो गया। उसने अपनी स्वनन्दा रानीसे उत्पन्न सुदृष्टि राजकुमारको राजभार सौपकर सुमन्दिर मुनिसे कई हजार राजाओके साथ मुनिके महाव्रत लिये। उन्होने अपने ज्ञान, चरित्र और तप आदिको बढाया और सब शास्त्रोका खूब अध्ययन किया। इन्होने कठोर-से-कठोर इतने तप किये कि इनका शरीर सूख कर काटा हो गया।

· २०

कृष्ण-बालक्रीडा

मुनि अतिमुक्तकसे अरिष्टनेमिका चरित्र सुनकर वसुदेव और देवकी मुनिको नमस्कार कर अपने घर वापस आये। कुछ दिनोंके पश्चात् देवकीको प्रथम गर्भ रहा। देवकीने दो युगल पुत्रो, नृप और देवपालको जन्म दिया। परन्तु इन्हे कसका भय नही था क्योकि प्रबल महायक की सहायतासे सब भय नष्ट हो जाते है। वसुदेवके सहायक तो धर्म और इन्द्र आदि देव थे। फिर उसके पुत्रको क्या भय होता ? इन्द्रकी आज्ञासे नैगम नामक देव उन दोनो युगल पुत्रोको भद्रलपुरमे सुदृष्टि सेठकी धर्मपत्नी अलका सेठानी के युगल मृतक पुत्रोसे बदल लाया और वे दोनो मृतक बच्चे देवकीके प्रसूतिगृहमे रख दिये। कस देवकीके प्रसवका समाचार सुन कर प्रसूतिगृहमें आया और उसने मृतक युगलको पाँव पकड कर उठा कर शिला पर दे मारा।

फिर देवकीको दूसरा गर्भ रहा, जिससे अनीकदत्त और अनीकपाल युगल पुत्र उत्पन्न हुए। इनको भी देव भद्रलपुर जाकर सुदृष्टि और अलकाके मृतक युगल पुत्रोसे बदल लाये। इस युगलको भी कसने पत्थरपर दे मारा। इसके पश्चात् तीसरे गर्भसे देवकीने शत्रुघ्न और यतिशत्रु युगल पुत्रोको जन्म दिया। उन्हें भी देव पहले के समान अलकाके मृत युगल पुत्रोसे बदल लाया। कसके हाथो उनका भी वही हाल हुआ।

वसुदेव देवकीके ये छहो पुत्र भद्रलपुरके सेठ सुदृष्टिके घरमें निर्विघ्नतापूर्वक पलने लगे। ससारमे जिनका पुण्य रक्षक होता है,

उन्हें हानि पहुँचानेमे कोई भी समर्थ नही होता । जैसे-जैसे ये बालक बडे होते गये, वैसे-वैसे सेठ सेठानीके यहाँ अतुल्य लक्ष्मी बढती गयी । उनका घर अपूर्व वस्तुओसे भरने लगा । सेठकी विभूति राजाओकी विभूतिको भी मात करने लगी ।

रानी देवकी माताकी ममता और पुत्रोके वियोगसे चिंतित रहने लगी । तब वसुदेवने उसे आश्वासन दिया कि उसके सब पुत्र भद्रल-पुरमे सेठके घर आनन्दपूर्वक है । पतिके वचनोसे आश्वस्त होकर देवकी की काति दूजके चन्द्रमाकी कलाके समान बढने लगी ।

एक रात देवकीने सात स्वप्न देखे, जिनमे (१) सूर्य, (२) पूर्ण-चन्द्रमा, (३) दिग्पालो द्वारा लक्ष्मीका स्नान, (४) आकाशसे उत-रता विमान, (५) देदीप्यमान अग्नि, (६) देवताओ की ध्वजा और (७) रत्नराशि थे । इसके पश्चात् रानीने अपने मुखमे सिंहको प्रवेश करता देखा ।

प्रात जब देवकीने इन स्वप्नोका फल अपने पति वसुदेवसे पूछा, तब उसने रानीको बताया कि इन सभी वस्तुओके गुणोसे युक्त एक महाप्रतापी, अधकार नाशक, चन्द्रमाके समान कातिवान तथा सुन्दर, राज्याभिषेक योग्य, देवलोकसे आनेवाला है । वह महा तेजवान, देवताओ से प्रशसित, गुणरत्न-राशियुक्त और निर्भय जगत्पति होगा । स्वप्नो-के फलको सुन कर देवकी बहुत हर्षित हुई ।

देवकीके गर्भकी वृद्धिके साथ-साथ जगतका आतप मिटने लगा, पृथ्वीका सुख बढता गया । सब जीवोकी धर्ममे प्रवृत्ति हो गई । कस बहिनके गर्भके दिन गिन रहा था । परन्तु वह नारायणके गुण नही गिन सकता था । उसने यही सोचा कि वह कृष्णको न मार सकेगा ।

वह जानता था कि नवे महीने पुत्र होगा, परन्तु वासुदेवका जन्म सातवे महीने ही रातके समय हो गया । नवजात शिशु शख, चक्र तथा गदादि शुभ लक्षणोका धारक अति देदीप्यमान, इन्द्र

नीलमणि समान श्याम सुन्दर था और देवकीके प्रसूतिगृहको अपनी दीप्तिसे चमका रहा था। कृष्णके जन्मके साथ ही मित्र-बांधवोके घरो में कल्याणकारक शुभ निमित्त होने लगे और शत्रुओके घरोमे भयके कारण अशुभ निमित्त होने लगे। इस नारायणके जन्मके प्रभाव से सर्वत्र प्रकाश-ही-प्रकाश हो गया। इतना ही नही सात दिनकी अखण्ड वर्षा भी उस समय हुई।

ऐसी वर्षामे रातके समय वसुदेव और बलभद्र नवजात शिशु-वासुदेवको लेकर घरसे निकले। बलभद्र की गोदीमे बच्चा था और वसुदेव उसपर छत्र लगाये हुए था। कंसके सुभट सोते ही रह गये। उनमे से कोई भी न जागा। नगरके द्वारके पहरेदार भी सोते रहे। कृष्णके चरण-स्पर्शसे द्वारके दृढ किवाड स्वय खुल गये। सयोगसे मेहकी एक बूँद बालककी नाकमे गयी और उसे जोरकी छीक आई। उस द्वारके ऊपरले खण्डमे कसका पिता उग्रसेन कैद था। उसने छीककी आवाज सुनकर आशीर्वाद दिया कि तू चिरकाल जीवे और निर्विघ्न रहे। तब बलभद्रने उग्रसेनसे कहा "हे पूज्य ! इस समस्त रहस्यको गुप्त रखना। यह बालक ही बडा होकर आपको बन्दीगृहसे छुडायेगा।"

राजा उग्रसेनने फिर आशीर्वाद देते हुए कहा "मेरे भाई देवसेन की पुत्रीका यह पुत्र शत्रुको मालूम हुए बिना सुखसे रहे।" उग्रसेनके इन शुभ वचनोको सुन कर वसुदेव और बलभद्र बालकको लेकर मथुरा नगरसे बाहर चले गये।

नगरका रक्षक बैलका रूप धारण करके सीगो पर दीपक रख कर इनके आगे-आगे प्रकाश दिखा कर मार्ग दिखाने लगा। आगे यमुनाका तीव्र प्रवाह था। कृष्णके प्रतापसे यमुनाके मध्यमे मार्ग हो गया और जल प्रवाह भी कम हो गया। तब ये सब वृन्दावनके घाटसे यमुना पार करके गोकुल गाँव गये। वहां नन्द गोप-ग्वाला

और उसकी पत्नी यशोदा गोपी रहते थे। उन्होने उन गोप दम्पति को बालक सौंप कर समस्त रहस्य बताया और उसे सावधानता-पूर्वक पालनेको कहा। इस बालकको देखने मात्रसे ही सबकी आँखो-में ठण्डक पड़ जाती थी। नन्द और यशोदाको सब बातें अच्छी प्रकार समझा कर उन्होने कृष्णको उनके पास छोड़ दिया। उसी समय यशोदाके पुत्री जन्मी थी। उन्होने सबके विश्वासके लिए उसे लाकर देवकीको सौपा।

निर्दयी कस देवकीकी प्रसूतिका समाचार सुन कर प्रसूतिगृह में आया। देवकीके पास पुत्री देख कर कसने मनमे सोचा कि यह कन्या तो मुझे मार नही सकती। इसका पति कोई राजकुमार मेरा शत्रु हो सकता है। यह सोच कर उस पापीने उस कन्याकी नाक दबा कर चपटी कर दी। इस समस्त दृश्यको देख कर देवकीको बहुत दु:ख हुआ। पर वह क्या करती? कस सन्तुष्ट होकर अपने घरमे लौटने लगा।

कुछ समय पश्चात् गोकुलमे कृष्णके जातकर्म सस्कार तथा नामकरण सस्कार हुए। उसका नाम कृष्ण रखा गया। वह बडा पुण्याधिकारी बना और नन्द-यशोदाकी अद्‌भुत प्रीति प्राप्त करने लगा। उसके गदा, खड्ग, चक्र, अकुश, शख तथा पद्म आदि प्रशस्त लक्षण थे। उसका मुख अरुण वर्णका और महासुन्दर नीलकमल सदृश शोभायमान था। गोकुलकी गोपियाँ उसके मुखको देख-देखकर तृप्त ही न होती थी। गोपियोके स्तन दूधसे भरे थे और हरएक गोपीकी यह इच्छा थी, कि वह कृष्णको दूध पिलाये।

एक दिन वरुण नामक निमित्त ज्ञानीने कससे कहा "हे राजन्! आपका शत्रु किसी नगरी, वन या गाँवमे बडा हो रहा है। अतः उचित कार्यवाही करे।" तब कसने अपने शत्रुका नाम-स्थान आदि जाननेके लिए तेला-तीन दिनका उपवास किया और पूर्व जन्ममे सिद्ध की हुई सात देवियोको स्मरण किया। वे तुरन्त कसके पास

आकर कहने लगी "हे राजन् ! अब हम आपका काम करनेको तैयार है। बलदेव और वासुदेवको छोड़ कर, जिसे आप कहे उसे ही मार दे।" इस पर कसने कहा—"मेरा प्रबल बैरी किसी स्थान मे बड़ा हो रहा है, उसे ढूंढ कर मारो, उस पर दया न करना।"

कसका यह आदेश सुनकर वे सातो देवियाँ उसके शत्रुको ढूंढने गयीं। कृष्णको ढूंढने पर सबने बारी-बारीसे अनेक रूप बना कर उसे मारनेका प्रयत्न किया, पर कृष्ण या यशोदाने उन देवियोको मार भगाया और कृष्ण उनसे बच गया।

नन्द और यशोदा पुत्र कृष्णका बाल्यावस्थाका पराक्रम देख कर बहुत आश्चर्य करने लगे। उन्होने सोचा कि यह सामान्य मनुष्य न बनेगा, वरन् कोई महापुरुष होगा। घर-घरमे उस बालककी प्रशसा होने लगी। देवकी बलभद्रसे कृष्णकी इन बालक्रीडाओको सुनकर अपने पुत्रको देखनेके लिए उपवासका बहाना बनाकर गोकुलमे आयी। देवकी कृष्णके सुकण्ठ द्वारा गाये गीतो और गायोकी घटियो-की मधुर ध्वनि सुन कर परम सतुष्ट हुई। कृष्णके सुरीले मधुर गीत तो देवियो तकके मनको हरनेवाले थे, फिर देवकीकी तो बात ही क्या थी ? देवकीने कृष्ण और बलभद्र दोनोके महा मनोहर रूप-को देख कर विशेष हर्ष अनुभव किया। जब देवकीने कृष्णके रूप-स्वर आदिका वृत्तान्त अपने पति वसुदेवको सुनाया तो वह भी बहुत प्रसन्न हुआ।

अब बलभद्र नित प्रति जाकर कृष्णको अनेक कलाये तथा गुण सिखाने लगा और तीक्ष्ण-बुद्धि वह बालक सब बातोको तुरन्त सीख लेता था। विनयवान शिष्य पर ही गुरुके वचन प्रभाव डालते हैं, दूसरे पर नही। इस प्रकार हरिने बलभद्रसे विद्या अभ्यासका काल व्यतीत किया और उसने कुमार अवस्थामे प्रवेश किया।

कुमारावस्थामे कृष्ण निर्विकार, परदारा का त्यागी, विषयानु-राग-रहित और ब्रह्मचारी हुआ। गोपियाँ कृष्णके निकट अनेक रास

विलास तथा नृत्य करने लगी। कृष्ण भी देवोंके समान उनके साथ नृत्य और गान करने लगे, पर क्या मजाल कि मनमे जरा भी विकार हो। जैसे सोनेकी अँगूठीमें हीरेकी मणि शोभा देती है, वैसे ही कृष्ण गोपियोंमें शोभा देते थे।

सभी स्त्री-पुरुषोका अनुराग हरिमे बढने लगा और यदि वे इसको न देखती तो विरह उत्पन्न हो जाता था।

कसके सिर तो कृष्णके भयका भूत सवार था। जब वह उसे ढूँढने और मारनेके उपायोमे विफल हो गया, तब कस स्वय उसे तलाश करने व्रजमे घूमने लगा। इधर नन्द और यशोदाने जब यह समाचार सुना तो वे कृष्णको लेकर वनमे चले गये। वहाँ एक रूक्षनेत्रवती विकराल-मुखी राक्षसनी कृष्णको देख कर अट्टहास करके अपनी कायाको बढा कर उसकी ओर खाने के लिए दौडी। पर कृष्णने अपने पराक्रमसे उसे दूर भगा दिया। मार्गमें सालमली वृक्षोके थम्मो की इतनी बडी पक्ति थी कि वह मनुष्योसे उठ नही रही थी। कृष्णने उन थम्मोंको उठाकर मण्डप पर रख दिया। पुत्रके ऐसे वीरतापूर्ण पराक्रम देखकर नन्द-यशोदा निश्शक हो गये, कि इसको मारनेमे कोई समर्थ न हो सकेगा। फिर वे अपने घर लौट आये।

इधर कस व्रजमें घूम कर मथुरा मे आया। मथुरामे देवालयमें तीन रत्न अकस्मात उत्पन्न हुए, वे सिहके आकारके पायोवाली नागशय्या, पांचजन्य शख और अजितज्य धनुष थे। किसी निमित्त-ज्ञानीने कसको बताया—"जो आदमी नागशय्या पर चढेगा, धनुष चढायेगा और शखको बजायेगा, वही तेरा शत्रु होगा। इसलिए कंसने अपने शत्रुको ढूँढनेके लिए नगरमे डौंडी पिटवाई, कि जो व्यक्ति नागशय्या पर चढेगा, धनुषको चढायेगा, और शंखको बजायेगा, उसीके साथ वह अपनी पुत्री अपराजिताका को विवाह देगा और जो कुछ वह मांगेगा, वही उसे मिलेगा।

इस घोषणाको सुनकर अनेक राजकुमारोने ये तीनो काम करने-का प्रयत्न किया, पर सब असफल। उसी समय जरासिधका पोता भानुकुमार गोकुलमे आया। कृष्णके पराक्रमको जानकर और उसकी सामर्थ्यको प्रत्यक्ष देख कर भानु इन कामोको करनेके लिए उसे मथुरा लाया। भानुके साथ मथुरा आकर कृष्ण महाभयंकर तथा डरावने फनोवाले नागोकी शय्या पर चढ गया। उसने मायामयी नागोके मु हसे निकलते हुए धुए और भयकर अग्निकी ज्वालासे प्रज्वलित धनुषको इस प्रकार चढाया और शखको इस प्रकार बजाया कि दमो दिशाए गूंज उठी और समुद्र गरजने लगा। ये काम किये तो थे कृष्णने, पर प्रकट किये भानुके किये हुए। सभी भानुके महात्म्यकी प्रशसा करने लगे पर लोगोके मनमे शका थी। कुछ कहते थे कि ये काम भानुने किये है और कुछने कहा कि एक सांवरे लड़केने किये है। तब भानुकुमारने कमके भयसे अपने नौकरोके साथ कृष्णको गोकुल वापिस भेज दिया। वह स्वय शय्या और धनुषके पास चुस्त होकर खडा हो गया।"

यह कथा गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको सुनाई और कहा, "हे श्रेणिक ! कृष्णके गर्भमे आनेसे पहले ही कम उसका महाबैरी बन गया, पर उसका बाल भी बाका न कर सका, क्योंकि कृष्णने पूर्व जन्ममे जिन धर्मका पालन किया। वही धर्म उसका सहायक था।"

२१

कंस-वध

शरत् ऋतु आई। उसकी शोभा अवर्णनीय थी। इस ऋतुमे कृष्णका यश तो बढने लगा पर कसका मद मन्द पड गया। जब कसने कृष्णकी समस्त क्रीडाओका वर्णन सुन लिया, तब कृष्णके नाशके लिए उसने गोकुलके ग्वालोको नागदह सरोवरसे सहस्रदल कमल लानेकी आज्ञा दी। उस सरोवरमे महाविकराल नाग कुमार देव रहता था। इसलिए उसमे कोई भी स्नान करनेको नही जा सकता था। कस समझता था कि जो कोई भी उस सरोवरसे सहस्र-दल कमल ले जायगा, मेरा वह शत्रु नाग कुमार से मारा जायगा, और यदि बचकर आ गया तो उसे मै मार दूगा।

जब कसका आज्ञापत्र गोकुलमे आया, तब सब गोपो आदिको चिन्ता हुई कि उस कमलको कौन लाये। पर कृष्ण सहस्रदल कमल लानेको तैयार हो गया। इधर नागने अपनी मणियोसे अग्निकी फुलगनिया कृष्णको जलानेके लिए निकाली, उधर माधव उछल कर उसके सिर पर जा सवार हुआ। कृष्णने अपने पाँवसे नागको कुचला और सहस्रदल कमल लेकर बाहर आ गया। जो गोप-गोपियाँ और बलभद्र सरोवरके किनारे चितित खडे थे, वे हरिको बाहर विजयी आता देख कर हर्षसे नाचने-गाने लगे और "धन्य-धन्य" के नारे लगाने लगे। भुजगोको भुजाओसे जीत कर कमलको लेकर पवनके समान उड़ते हुए शीघ्र ही मुकन्द आ गये। गोप भी अनेक कमल लाये, उनको बाँध कर कसके पास भेजा। कंस क्रोधसे जल उठा, उसके मु हसे बहुत गर्म सांस निकल रही

थी। उसने सभी ग्वालोको मल्लयुद्धके लिए मथुरा आनेकी आज्ञा दी। उधर उसने अपने पहलवानोको इकट्ठा किया। कस किसी न किसी तरह कृष्णको मारना चाहता था।

इधर वसुदेवने अपने पुत्र अनावृष्टिसे मत्रणा करके उसे अपने बडे भाई समुद्रविजयको सब समाचार देने और चतुरगी सेना लेकर सहायताके लिए बुलानेको भेजा। यह समाचार सुनकर राजा समुद्र विजय अपने सब भाइयो तथा सेना-सहित दुष्ट कसको जीतने वसु-देवके पास आया।

उन्होने अपने आनेके असल उद्देश्यको छिपा कर यह प्रकट किया कि वह बहुत दिनोसे बिछडे अपने छोटे भाई वसुदेवसे मिलने आया है। वे सब वसुदेवके पास गये। कस भी मनमे अनेक शकाए लिये हुए उनको मथुरामे लाया। सबको डेरो मे ठहराया और उनका बडा आदर किया। उनके भोजन आदि का प्रबन्ध किया। कसने बाहरसे कपट पूर्वक स्नेह प्रदर्शित किया, पर उसके मनमे तो द्वेषाग्नि जल रही थी। इसलिए उसने गोकुलके गोपोको मल्लयुद्धके लिए पत्र लिखा।

इधर बलभद्रने कसकी सब चाले समझ कर सब गोपोको प्रेरणा देकर मल्लयुद्धके लिए तैयार किया। और यशोदाको धमका-कर कृष्णको स्नानकरके शीघ्र तैयार करने और भोजन बनानेको कहा। फिर बलभद्र और कृष्ण नदीके किनारे गये। वहा एकान्त मे बलभद्रने कृष्णसे कहा, "हे कृष्ण! तू आज उदास क्यो है? तेरे मुहसे लम्बे-लम्बे उच्छ्वास क्यो निकल रहे है। तेरी आखोमे आसू क्यो हैं? तेरा चेहरा मुरझाये कमल सदृश कातिहीन क्यो दिख रहा है?" तब कृष्णने बलभद्रसे कहा, "हे आर्य! मै आपको अपने दु:ख का कारण बताता हूं। आप मेरे शास्त्र पढ़ानेवाले गुरु, महा पडित और लोक-व्यवहारको जानने वाले हो। आप दूसरो को

मार्ग बतानेवाले और महाविवेकी हो, फिर आपने मेरी पूज्य माता यशोदाको जो तिरस्कारपूर्ण वचन कहे, वे आपके योग्य न थे।" ये-वचन कृष्णने बलभद्रको उलहनेके रूपमे कहे।

कृष्णकी इन बातो को सुनकर वसुदेव उसे छातीसे लगा कर, गद्गद् वाणी और हर्षके आसू बहाते हुए कृष्णसे पीछेका सब वृत्तान्त कहने लगा। बलभद्रने कृष्णको बताया, "हे कृष्ण! राजा जरासिंध की पुत्री जीवयशा कससे व्याही गई। जब कसके बडे भाई मुनि अतिमुक्तक आहारके लिए उसके घर आये, तब जीवयशाने मुनिके सामने तेरी असली माता देवकीके गन्दे वस्त्र डालकर उनसे अविनय तथा अशिष्टताका व्यवहार किया। इस पर मुनिने भविष्यवाणी की कि देवकीका सातवा पुत्र नवा नारायण उसके पति कस और पिता जरासिधको मारनेवाला होगा। इस पर कसने देवकीकी समस्त सन्तानको होते ही मारनेका निश्चय किया।" इसे आगे बलभद्रने कृष्णको उसके छह भाइयो अर्थात् तीन युगलोके भद्रलपुरकी सेठानी अलका के मृतक तीन युगलो से बदलने और कृष्ण को यशोदाकी लडकीसे बदलनेकी सब बाते बताई। इसके अतिरिक्त कृष्णको मारनेके लिए कसने जो-जो उपाय किये वे सब बलभद्रने कृष्णको सुनाये। इन सब बातोको सुनकर कृष्णको कसपर अति क्रोध उत्पन्न हुआ। फिर बलभद्रने कृष्णको आगे बताया कि जब कसने मल्ल-युद्धके द्वारा उसको मारनेका उपाय निकाला है। बलभद्र कृष्णको पीछेकी ये सब घटनाएँ और वृत्तान्त बताकर महापापी कसके प्रति उसको भडकाना और क्रुद्ध करना चाहता था।

बलभद्रके ये वचन सुनकर कृष्णने कसको मारनेका निश्चय किया। अब तक उसका यह विचार था कि उस जैसा सामन्त, योद्धा और शस्त्र विद्या प्रवीण गोपोके कुलमे क्यो पैदा हुआ? आज उसे रोहिणीके पुत्र अपने बडे भाई बलदेवसे यह मालूम हुआ कि वह हरिवशी है और क्षत्री कुलका है। उसे यह सुनकर गर्व हुआ कि वह

उस वंश-का है, जिसमें तीर्थकर श्री मुनिसुव्रत नाथ जी हुए और बाईसवे तीर्थकर श्री सोमनाथ जी होगे। उसे अब मालूम हो गया कि देवकी उसकी माता और वसुदेव उसके पिता हैं। उसे समुद्र विजय और बलभद्रसे अपने सम्बन्ध भी ज्ञात हुए। उसको अब यह मालूम हुआ कि नद और यशोदा उसको पालने-पोसने वाले धर्म-के मा-बाप हैं। अब वह समझा वह गोपीपुत्र नही, क्षत्री पुत्र है। भेडोंके बीच पले हुए सिंह-पुत्रको जैसे सिंह पुत्र होनेका ज्ञान होने-पर अपना असली वंश, कुल, रूप और शक्ति मालूम हुए। उसका मुख-कमल हर्ष और आनन्द से चमक उठा। दोनो भाई जन्म जन्मान्तरके स्नेहसे आपसमे छातीसे छाती मिला कर मिले।

फिर वे यमुनामे स्नान कर घर आये और भोजन किया। बलभद्रने अपनी रुचि अनुसार भोजन किया और कृष्णने गायोका घी, दूध और मिठाइया खाईं। इसके पश्चात् बलभद्रने पीताम्बर और पुष्पमालाए पहनी।

बलभद्र और कृष्ण दोनो मल्ल युद्ध विद्यामे अति निपुण थे। वे महाभयकर मल्लका भेष धारण करके मनमे कसको विध्वस करनेका निश्चय करके गोपोके साथ मथुराकी ओर चले। बलवान इतने कि चरणो की चोट करे, तो पृथ्वी दहल जाये।

अभी वे मार्गमे ही थे, कि कसके पक्षके तीन असुरोने उन पर आक्रमण किया। उनमे से एकने नागका, दूसरेने गधेका और तीसरेने भयानक घोडेका रूप बना रखा था। कृष्णने सबको भगा दिया। फिर केसी नामके असुरने उन पर आक्रमण किया। उसे भी सबने भगा दिया।

फिर बलभद्र और कृष्ण आदि नगरके द्वारपर आये। द्वार पर आते ही दो मस्त हाथी उनके सामने आये। मदके झरनेसे उनके कपोल भीज रहे थे। कंसकी आज्ञासे महावतने इन दोनों हाथियोंको

इन पर चढाया। दोनो भाई इन हाथियोको देखकर हर्षित हुए। दोनों भाई मल्ल युद्धकी रगभूमिके महा निपुण मल्ल थे। चम्पक नामक हाथीके सामने तो राम, जिनको बलदेव कहते है, गये और दूसरे पादभरके सन्मुख फनिरिपु नागको दमन करनेवाले दामोदर अर्थात् कृष्ण जा डटे। दोनो भाइयोने इन गजोसे युद्ध किया। हाथी अति बलवान थे और उनको मारना हर एक योद्धाके लिए आसान न था। पर उन दोनो वीरोने थोडी ही देरमे उन दोनोके दात उखाड दिये। वे दन्तहीन हाथी दहाडते-भागते नगरमे गये।

इधर वे दोनो वीर अपने गोप साथियो सहित नगरमे गये। अपने कधोसे महा मल्लोको धकेलते ये अखाडेमें पहुचे। उस अखाडे या रग भूमिका वर्णन करना बडा कठिन है। रगभूमिके द्वार कमलोकी कोपलोसे मडित शोभा दे रहे थे। कमलो पर भौंरे गु जार कर रहे थे। बडे-बडे राजा और विशिष्ट पुरुष मल्ल युद्धका कौतुक देखनेके लिए बैठे थे। हरि और हलधर अर्थात् कृष्ण और बलभद्र गरज रहे थे। खम ठोक-ठोक कर अपने चरणो और भुजदण्डोके पुट्ठोकी चेष्टा कर रहे थे। विविध प्रकार की मल्लविद्या की कला और दृढ दृष्टि और दृढ मुट्ठिया दिखा रहे थे। इनके प्रवेश करते ही उनकी चेष्टाओसे रगभूमिकी शोभा बढ गई। सब सावधान होकर बैठ गये। बलदेवने वसुदेवको आँखके सकेतमे सब कुछ बता दिया और कहा "हे हरि ! यही बैरी कस है। इसके पास जरासिधके आदमी है। और ये समुद्रविजय आदि तेरे ताऊ और ये उनके बेटे तेरे भाई है।" उन सबने एक दूसरेको देखा।

अब कसने मल्लोको मल्लयुद्ध आरम्भ करनेकी आज्ञा दी। आज्ञाको सुनते ही सबने अपनी-अपनी जोडीसे युद्ध करना आरम्भ कर दिया। अनेक पहलवान खम ठोक रहे थे और गरज रहे थे। उन योद्धाओंके मल्लयुद्धसे वह रगभूमि बड़ी रमणीक लग रही

थी, जैसे जगली भैसे क्रोधसे आपसमे लडते है, वैसे ही ये मल्ल आपसमें लड रहे थे।

इसके पश्चात् दुष्ट कसने चाडुर नामक मल्लको कृष्णसे लड़ने-की आज्ञा दी। चाडुर मल्लका वक्षस्थल पर्वतकी भारी भित्तिके समान विस्तीर्ण था, और उसकी भुजाए महादृढ थम्भ के समान थी। वह प्रतिदिन अनेक दंड-बैठक लगाता था। स्वामीकी आज्ञा पाते ही चाडुर आगे बढा, उसके साथ ही कसकी आज्ञासे विष समान विषम दृष्टि वाले दूसरे मल्ल मुष्टिको कृष्णसे लडनेका आखसे इशारा किया। उसका अभिप्राय था, कि वे दोनो इकट्ठे होकर भूधर-कृष्ण को मारे। वे दोनो मल्ल कृष्णपर टूट पडे। उन दोनो मल्लोके नख महाकठोर, महा तीक्ष्ण और अति विकराल थे। मुट्ठियां बांधे हुए वे मल्ल सिंहके समान भयंकर आकारवाले और स्थिर चरणोवाले थे। कृष्ण चाडुर मल्लके सामने आ डटा और बलभद्र दूसरे मल्ल मुष्टिके सामने। मुष्टि मल्लकी मुट्ठियोकी चोट वज्रघातके सदृश थी। दोनो जोडियोका मल्ल युद्ध होने लगा। मुष्टि मल्लको अपनी तरफ आते देखकर बलभद्र बोला, "बैठो, बैठो।" ऐसा कहकर बलदेवने मुष्टिको एक थपेड़ मारी और उसके प्राण तत्काल निकल गये। बलभद्र समान शलाका पुरुषसे तो देव भी नही लड सकते थे, फिर उस मुष्टि मल्ल जैसे मनुष्यकी तो बात ही क्या? फिर कृष्णने चाडुर मल्लको अपनी भुजाओ मे इतने जोरसे भीचा कि उसके मुखसे रुधिरकी धारा बह निकली और तत्काल उसके प्राण निकल गये। यद्यपि वह चाडुर इतना सशक्त, महाबलवान और गर्ववान था कि कोई मनुष्य उसे जीत नही सकता था, परन्तु हरि पर उसका कोई जोर न चला। कृष्ण स्वय हरि था। वह सिह और इन्द्रके समान शक्तिशाली था। चाडुर और मुष्टि मल्ल दोनो एक सहस्र सिहो और एक हजार मस्त हाथियोसे भी अधिक बलवान थे, पर उन दोनोको बलभद्र और कृष्णने तुरन्त मौतके घाट उतार दिया।

अब कस स्वय रगभूमिमे उतर पडा। उसके हाथोंमें तीक्ष्ण शस्त्र थे। रगभूमिमें कसके आते ही वह चलायमान हो गई। समुद्रके सदृश गरजता हुआ कस कृष्णपर टूट पड़ा। तब महाबली कृष्णने लपककर कसके हाथसे खड्ग छीन कर म्यानमे डालदी। अब बडे क्रोधसे कृष्णने उसको टागोसे जोरसे पकड़ कर चारो ओर घुमाया और पत्थरपर पटक कर मारा। कृष्णने हस कर उससे पूछा, "बस, इसी बलपर इतना गर्व था ?" कसके पछाडे जाते ही, उसकी समस्त सेना युद्धके लिए तैयार हो गई। इस पर कुटिल भृकुटि बलभद्र अकेले ही उनके सामने आ डटा। महल का खम्भा उखाड कर वह योद्धाओ पर टूट पडा। वज्रपात समान खम्भ के वारोसे बलभद्रने बहुतसे योद्धाओंको मार दिया। बलदेव वासुदेवसे भला कौन लड सकता था ? तब कसके सब योद्धा सामन्त रगभूमिसे भाग खडे हुए।

कसके योद्धाओके पराजित होनेके पश्चात् जरासिधकी जो महा सेना कसके आधीन थी, उसके बडे-बडे राजा और योद्धा युद्धके लिए तैयार हो गये। यादवो पर उनकी विषम दृष्टि थी और वे समुद्रके समान गरज रहे थे। चारो दिशाओसे सामन्त रगभूमिमे आ डटे। यद्यपि वह समस्त सेना कसके लिए लडनेको सावधान और तत्पर थी, पर बलभद्र और कृष्णके सामने वह ठहर न सकी।

विजयी बलदेव और कृष्ण मल्लके वेषमे लगर-लगोटे कसे हुए समस्त आभरणोसे युक्त रथमे बैठ कर माता-पिता देवकी-वसुदेवके महलमे गये। वहा समुद्रविजय आदि सभी ताया-ताई आदि उपस्थित थे। हलधर और हरिने अनुक्रम से समुद्रविजय आदि आठो ताऊओ-के चरण स्पर्श किये, फिर सब ताइयोके पॉव पडे। सबने उन्हे छातीसे लगाकर आशीर्वाद दिये। चिरकालके विरहसे हृदयमे जो आताप उपजा था, उसे शात करनेके लिए यह मिलन जलधाराके समान था। ऐसे प्रफुल्लित वदन पुत्रका सयोग सबके लिए सुखदायक

हुआ। देवकी और वसुदेव भी पुत्र कृष्णका मुख देखकर अतुल सुखको अनुभव करने लगे। यशोदाकी पुत्री जिस पुत्रीकी नाक कसने दबाकर चपटी की थी, वह कृष्णको देखकर आनन्द विभोर हो गई। कितना स्नेहपूर्ण भावभीना वातावरण था वह ! कृष्णने घर आते ही उग्रसेनको बधनमुक्त किया। कसके भय और शकासे मुक्त समस्त नगरवासियो के हृदय उत्साहसे भर गये। पर कसके समस्त कुटुम्बीजन और उसकी पत्नी जीवयशा आज विधवा हो गई थी। मुनि अतिमुक्तककी भविष्यवाणी सत्य हो गई। इसके पश्चात् कसका दाह-सस्कार कर दिया गया।

कसके दाह-सस्कार आदिके पश्चात् जीवयशा अपने पिता जरासिंधके पास रुदन-विलाप करती हुई गई। अति व्यथाके कारण उसका हाल बेहाल था। उसका कण्ठ रुका हुआ था।

कसवधके पश्चात् सभी यादव अपनी सभामे बैठे हुए थे। उसी समय मथुराके सभी निवासियोने आकाश मे एक विद्याधरको मछली जैसी लीला करते देखा। वह विद्याधर अतिशीघ्रगामी और मीन जैसी गति वाला था। वह सुकेत नामक विद्याधरका दूत था। उस दूत विद्याधरका शरीर अति उज्ज्वल तथा वस्त्र अति निर्मल थे। उसके शरीर पर चदन आदिका लेप था। वह दूत विद्याधर रथुनुपुर चक्रवाल नगरसे मथुरा आया था। जब वह दूत आकर द्वारपर खडा हुआ, तभी द्वारपाल उसे राज सभामे अन्दर ले गया। राज-दरबारमे सभी यादव अपने-अपने स्थानपर विराजमान थे। दूतने सबको नमस्कार करके राजा समुद्रविजयको सम्बोधित करते हुए कहा, "हे नरेन्द्र ! मेरी विज्ञप्ति सुनिये। विजयार्द्ध गिरिमे दक्षिण श्रेणीमे रथुनुपुर चक्रवाल नगरका राजा सुकेत विद्याधर है। वह राजा नमि-विनमिके कुलकी ध्वजा समान है। वह सब विद्याधरोका स्वामी है। उसने वीर शिरोमणि कृष्णके सभी पराक्रमोका हाल सुना है, कि उसने किस प्रकार देवोपुनीत धनुषको

चढाया और नागशय्यापर आरोहण किया। कृष्णके पराक्रमोको सुनकर वे उसको अति प्रेम करते हैं। उसकी सत्यभामा पुत्री विवाह-योग्य, सर्वगुण-सम्पन्न और अतिरूपवान है। राजाने मुझे कृष्णके साथ उसके विवाहकी प्रार्थना करने भेजा है। कृपया इसकी स्वीकृति दे दीजिये।"

समस्त यादवोंने दूतके इस मनोहारी वक्तव्यको सुना। तब समुद्रविजय ने कृष्ण को आदेश दिया "तुम राजा सुकेत की पुत्री सत्यभामा से ववाह करो।" अपने ताऊ समुद्रविजयके इस आदेश-को सुनकर कृष्णने अति प्रसन्न हो दूतसे कहा, "हे भद्र ! आपका विवाह-सन्देश सुनकर हमारे पूज्य राजाने मुझे जो आदेश दिया है, वह मुझे स्वीकार है। राजा सुकेत तो वास्तवमें कुवेरके सदृश हैं, जिसकी पुत्री सत्यभामा रत्नधाराके समान है। यदि वह रत्नधारा-वृष्टि बन कर मुझ रत्नाचल पर बरसती है तो इससे अधिक प्रसन्नता की बात मेरे लिए क्या हो सकती है ? राजा सुकेतकी दी हुई वह रत्नराशि लक्ष्मी बन कर मेरे गृहकी शोभा बने।" ऐसे प्रिय और मीठे वचन कह कर दूतका यथोचित आदर सम्मान तथा आतिथ्य करके विदा किया गया।

यदुवश कुल तिलक राजा समुद्रविजय और कुमार कृष्णकी स्वीकृति पा कर दूत अपने उद्देश्य सिद्धिसे बहुत हर्षित हुआ। उसने जाकर राजा सुकेतसे कहा—"नमस्कार नरेन्द्र ! बधाई स्वीकार हो। आपकी मनोकामना पूरी हो गई। राजा समुद्रविजय और कृष्णने कृष्णके साथ सत्यभामाके विवाहके प्रस्तावको बडे हर्षसे स्वीकार किया है। बलदेव और कृष्ण इस पृथ्वीपर प्रकाशपुंज हैं। उनके सामने सबका तेज फीका पडता है। मैं उनके गुणोका वर्णन नही कर सकता।"

विद्याधर दूतके मुखसे कृष्णके रूप, कांति, प्रताप, धर्मज्ञता और गुण सुनकर राजा सुकेतके आदेशसे उसका छोटा भाई रतिपाल

अपनी पुत्री रेवती और अपने भाई सुकेतकी पुत्री सत्यभामा इन दोनोको लेकर मथुरा आया। रेवतीका विवाह बलभद्रसे और सत्यभामाका विवाह कृष्णसे किया गया। सत्यभामा राजा सुकेतकी रानी प्रभाकी पुत्री थी। इन दोनो विवाहोंकी शोभाका क्या वर्णन किया जाये? बलभद्र और कृष्णके ये प्रथम विवाह थे। यादव-परिवार, मथुराके नर-नारियो और राजा सुकेत के कुटुम्बमे हर्ष और उत्साहका समुद्र लहरे मार रहा था। इनके विवाहमे स्वय विद्याधरियाँ सुन्दर वस्त्राभूषणोसे सुसज्जित अपने सुकोमल, लचीले सुन्दर और नृत्य कर्मोंमे प्रवीण शरीरोसे नृत्य करके सभी उपस्थित नर-नारियो को रिझा रही थी। नृत्य करते-करते उनके कोमल शरीर शिथल हो गये, वस्त्र, अगियाए और केशोके बन्धन ढीले पड गये। उनके नूपुर के समधुर शब्दमे विवाहमडप गु जायमान हो रहा था।

बलभद्र और कृष्ण वरके मणिमडित वस्त्राभूषणोमे इतने सुन्दर और प्यारे लग रहे थे, कि उनकी रूप-छविको देखकर वर-पक्ष और कन्या पक्ष के सभी नर-नारी आनन्द विभोर हो रहे थे। बलभद्रकी माता रोहिणी और कृष्णकी माता दवकीके सुख और आनन्दका तो ठिकाना ही न था।

सत्यभामा और रेवती अपनी अनेक कलाओ, विद्याओ, गुणो और चतुराईसे आदर्श बन्धुओके समान अपने पतियो—कृष्ण और बलभद्रके मनको मोहने लगी। वे समयानुसार उचित कर्तव्य करती। इनके सद्व्यवहारसे इनके सास-श्वसुर सभी प्रसन्न थे।

उधर जीवयशा अपने पतिके वधसे अति दुखी, बदलेकी कलुष भावनाओसे पूर्ण, अपने रुदन-विलाप, बिखरे केशो और मुरझाये शरीर आदिसे समुद्र के समान अपने पिता जरासिधके मनमे क्षोभ उत्पन्न करनेमे सफल हो गई। उसने यादवोके दोषो और अपराधो

का पिताको बताते हुए कहा, "हे पिता! समस्त पृथ्वीके आप स्वामी है और आपके होते हुए मेरा पति मारा जाय, मै विधवा बन जाऊँ! यह आप कैसे सहन करेगे? आप उनसे बदला ले। जब तक यादवोके रुधिरको उनके सिरोके सरोज पात्रमें भर कर पतिको पानी न दूगी, मुझे सन्तोष न होगा, मेरा क्रोध शात न होगा।" पुत्रीके दुःख और विलापसे दुखी जरासिध जीवयशाको कहने लगा, "हे पुत्री! तू शोकको त्याग दे। जीवके पूर्वोपार्जित कर्म प्रबल होते है। किसीका किया कुछ नही होता, जो होनी होती है, वह होती है। भवितव्यके आगे किसीका वश नही चलता। यादवोका बुरा होनहार है, जो उन्होने उन्मत्त होकर तेरे पतिको मारा है। वे अवश्य मरना चाहते है। उन मूर्खोने यह नही सोचा कि कसकी पीठपर उसका श्वसुर जरासिध है। तेरे ही चरणोकी वे शरण आये और तेरे लिए ही कटक बने, तो समझले कि उनका नाम कोई न सुनेगा। उनका कुल, रूप तथा बल बहुत ही बढ गया है। उसीका घमण्ड उन्हे हो गया है। अब तुम ही उन्हे मेरे क्रोध रूपी दावानलमे भस्म हुआ देखना।"

पिताके इन सान्त्वनापूर्ण तथा आश्वासनदायक शब्दोको सुनकर जीवयशाकी क्रोधाग्नि बुझ गई।

राजा जरासिधने कालके सदृश अपने पुत्र कालयवनको यादवो के नाशके लिए सेना सहित भेजा, पर वह सत्रह बार आक्रमण करनेपर भी उन्हे न जीत सका। हार कर वह मालावर्त पर्वत पर भाग गया।

राजकुमार कालयवनके हार कर भागनेका समाचार सुनकर राजा जरासिध बडा चिंतित हुआ। अब उसने अनेक युद्धोके विजेता अपने भाई पराजितको यादवोसे युद्ध करने के लिए भेजा। यादव शत्रुओंके समूहको नष्ट करनेका अभिलाषी अपराजित यादवोपर

प्रबल काल रूपी अग्निके समान प्रज्वलित अपनी सेनाको प्रेरित करके आगे बढा। अपराजितने यादवोसे बहुतसे युद्ध किये, पर कृष्णके बाणोंकी मारको वह सहन न कर सका और हारके कष्ट निकालनेके लिए वीर शय्या पर सदाके लिए सो गया।"

यह समस्त कथा गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको सुनाई। अन्तमे उन्होने कहा कि जैन धर्मकी मेघधारासे इस पृथ्वी पर अनेक प्रकारके फल उपजते है। यह धर्म जल धारा लक्ष्मी और कीर्तिको उत्पन्न करती है और मोक्ष देती है। धर्म सबको हर्ष तथा सुख देता है।

श्री नेमिनाथ जन्म

गोतम गणधर स्वामी राजा श्रेणिकको तीर्थंकर नेमिनाथके गर्भ और जन्मका वर्णन सुनाने लगे।

पहले यह कहा गया था कि राजा समुद्रविजयके घर नेमिनाथ तीर्थंकरका जन्म होगा। राजा अधक वृष्टिके दस पुत्र थे, जिनमे सौर्यपुरका राजा समुद्रविजय सबमे बडा था। उसकी रानीका नाम शिवदेवी था। नेमिनाथके गर्भमे आनेसे छह महीने पहले ही देव राजाके घरमे रत्नोकी वर्षा करने लगे।

एक दिन रातके पिछले पहरमे रानी शिवदेवीको सोलह स्वप्न दिखाई दिये। पहले स्वप्नमे रानीने मद झरता, चिघाडता और कैलास पर्वतके समान वर्णवाला श्वेत हाथी देखा। दूसरे स्वप्नमे ऊँचे सीगो, लम्बी पूंछ और दीर्घ कधोवाला सफेद बैल देखा। तीसरे स्वप्न मे रानीने सफेद रंगका दहाडता हुआ और उज्वल दाढोवाला सिह देखा। चौथे स्वप्नमे रानीने लक्ष्मी देखी जिसको हाथी कलशोसे स्नान करा रहे थे। पांचवे स्वप्नमे आकाशमें दो निर्मल पुष्पमालाएँ देखी। रानीने छठे स्वप्नमे अन्धकार नाशक चन्द्रमा देखा। सातवे स्वप्नमे रानीने सूर्य और आठवे स्वप्नमे मछलियोका जोडा देखा, जो जलमें क्रीडा कर रहा था। नवे स्वप्नमे रानीने कमलके पत्तोसे ढके दो जलपूर्ण कलश और दसवे स्वप्नमे पवित्र जलपूर्ण निर्मल सरोवर देखा। ग्यारहवे स्वप्नमे रानीने मूँगा-मोती पूर्ण ऊँची तंरगोवाला

समुद्र और बारहवे स्वप्नमें महासुन्दर मणि आदिसे जडा हुआ सिहासन देखा। तेरहवे स्वप्नमे रानी शिवदेवीने एक सुन्दर विमान देखा। और चौदहवे स्वप्नमे पातालसे निकलता नागेन्द्रका भवन देखा। पन्द्रहवे स्वप्नमे रानीने बहुत ऊँची रत्न राशि देखी, जिसके प्रकाशसे आकाशमे नाना रगोका इन्द्रधनुष बन गया और सोलहवे स्वप्नमे राजा समुद्रविजयकी प्रिया शिवदेवीने महापवित्र कातिवाली निर्धूम अग्नि देखी। इन स्वप्नोके अन्तमे रानीने एक श्वेत हाथीको अपने मुख मे प्रवेश करते देखा।

कार्तिक सुदी छठके दिन रानी शिवदेवीने अपने गर्भमे तीर्थंकर नेमिनाथको धारण किया। इन स्वप्नोके पश्चात् "जय, जय" शब्दो और मगलगानसे जागृत और आलस्य रहित होकर रानी प्रात. मगल-स्वरूप वस्त्राभूषण पहनकर स्वप्नोका फल पूछने राजाके समीप गयी। राजाने बडे प्रेम और आदरसे रानीको सिहासन पर बिठाया। रानीके द्वारा इन सोलह स्वप्नोका फल पूछनेपर राजा समुद्रविजयने कहा, "हे प्रिये! तू त्रिभुवनके स्वामी तीर्थंकरको जन्म देगी। तेरा पुत्र भगवान्, महतोका महत और जगत्रयका गुरु होगा। तू धन्य है। मैं इन सोलह स्वप्नोका फल सक्षेपमे तुम्हे बताता हूँ। शुक्लवर्णका हाथी देखनेका यह फल है, कि तेरा पुत्र सब मे श्रेष्ठ सबका एकाधिपति और सर्वोत्कृष्ट होगा। श्वेत वृषभ देखने का अभिप्राय यह है. कि तेरा पुत्र कलक रहित बुद्धिवाला, अपने गुणोसे अपने कुल और तीन लोकको शोभित करनेवाला, धर्मरथको और मोक्षमार्गको चलानेवाला होगा। स्वप्नमे सिह देखनेका फल यह है, कि तेरा पुत्र अत्यत वीर्यका धारी मिथ्यादृष्टियोके मदको हरनेवाला, अद्वितीय वीर और तपोवनका ईश्वर होगा। तुमने जो अभिषेक करती लक्ष्मी देखी है, उसका आशय यह है, कि जन्म समय सुरेन्द्र तेरे पुत्रका अभिषेक करेंगे। दो पुष्पमालाए देखनेका फल यह है, कि तेरा पुत्र सुगन्धित शरीरका धारक, अनन्त दर्शन-ज्ञानका धारक, लोक

और अलोक का ज्ञाता-द्रष्टा होगा और जो तूने स्वप्नमे चन्द्रमा देखा है, उसका अभिप्राय यह है, कि तेरा पुत्र जिनेन्द्र चन्द्र जगतका अधकार हरनेवाला होगा। सूर्यको स्वप्नमे देखनेसे तेरा पुत्र अपने प्रचण्ड तेजसे समस्त तेजस्वियोके तेजको जीत कर जगतमे तेजोनिधि होगा। और अन्तर बाह्यके अधकारको नष्ट करेगा। हे मृग नेत्रे! मछलियोके जोडेको देखने का फल यह होगा, कि तेरा पुत्र इन्द्रियो-का भोग-उपभोग त्याग कर सिद्ध लोकमे अनन्त सुखरसका भोक्ता होगा। हे प्रियभाषिणी! दो पूर्ण कलशोको स्वप्नमे देखनेका फल यह है, कि तेरा घर नव निधिसे पूर्ण होगा, तेरे पुत्रके सब मनोरथ पूरे होगे और उसके प्रभावसे जगत आनन्दरूप होगा। अनेक कमलोसे भरा जो सरोवर तूने देखा है, उसके परिणाम-स्वरूप तेरा पुत्र समस्त लक्षणोसे मण्डित होगा, महा ज्ञानी, तृष्णा रहित और मोक्षगामी जीवोकी तृष्णा दूर करके स्वय निर्वाण प्राप्त करेगा। गम्भीर समुद्र देखनेका फल यह है, कि तेरा पुत्र समुद्र समान गम्भीर बुद्धि होगा और अनेक भव्य जीवोको अमृत रस पिलायेगा। रत्नोका सिहासन स्वप्नमे देखनेका फल यह है, कि उसके सिहासनको सब सेवेगे और जो सबके द्वारा पूज्य सिहासन है, तेरा पुत्र उस पर विराजेगा। विमानको देखनेका फल यह है, कि जयत नामक विमान से प्रभु तेरे गर्भमे आयेगे और हे प्रिये! तूने जो नागेन्द्रका भवन निकलता देखा, उससे तेरा पुत्र मति श्रुति और अवधि तीन ज्ञानका धारक होगा। रत्नराशिको देखनेके कारण तेरा पुत्र गुण रत्नोकी राशिका धारक होगा। तूने जो निर्धूम अग्नि स्वप्नमे देखी, उसके फल-स्वरूप तेरा पुत्र शुक्ल ध्यान रूप अग्निसे समस्त कर्मोको भस्म करेगा। ऐसे पवित्र चरित्रवाले जिनेन्द्र सूर्यको जन्म देनेसे तू अपने वशको, अपनेको, मुझे और इस जगतको पवित्र करेगी!''

रानी शिवदेवी अपने पति के मुखसे स्वप्नोके ये फल सुन कर चित्तमे अति हर्ष मनाने लगी। इतना ही नही, वह यह मानकर

कि सर्वगुण सम्पन्न पुत्र उसकी गोदमें आ गया है, जिन-पूजा आदि प्रशसा-योग्य शुभ क्रियाए करने लगी।

जब प्रभु गर्भमे आये, तब माता शिवदेवीके गर्भकी और ही प्रभा हो गयी। न उसकी त्रिवली भग हुई और न उष्ण श्वास निकले। न उसे आलस्य हुआ और न उसके होठोंका रग फीका पडा। इनके गर्भमे आते ही माता शिवदेवीका मन समस्त जीवोकी दयासे भर गया, मनमे निरन्तर तत्त्वोका विचार रहने लगा। उसके वचन सब जीवोके हित भाषणमे और जीवोका सन्देह निवारणमे प्रवृत्त रहने लगे। उसका शरीर व्रतरूपी आभूषणोंसे सज गया और विनयके पोषणमे प्रवृत्त रहने लगा।

राजा समुद्रविजय महासमुद्रकी लीला, रग और रूपको धारने लगा। माता-पिता सभी सुर-नर और विद्याधरोके पूज्य बन गये। राजा-रानीका परस्पर स्नेह खूब बढ गया।

नौ महीने पूरे होने पर शुभ तिथि बैसाख शुक्ला त्रयोदशीको चित्रा नक्षत्रमे रात्रिकी शुभ वेलामे रानी शिवदेवीने मोक्षदाता, जगत मे प्रकाश करनेवाले, जीवोका मन हरनेवाले जगदीशको जन्म दिया। भगवान् नेमिनाथ हरिवशके आभूषण, तीन ज्ञान रूप नेत्र और एक हजार आठ गुणो को धारण करनेवाले थे। उनका शरीर नीले कमल समान श्यामसुन्दर, कातिमान था और वह दशो दिशाओं और प्रसूतिगृहको जगमगाने लगा था। जिनेन्द्र चन्द्रके जन्मसे जगत-मे हर्षका समुद्र लहरे मारने लगा और समस्त लोक हर्षसे नाच उठा। जन्म समय दैवी शख, ढोल, सिह-नाद तथा घण्टे शब्द करने लगे। इन्द्र आदिके सिहासन और मुकुट कम्पायमान होने लगे। तब वे अपने ज्ञानसे भगवान्के जन्म कल्याणकको समझकर आनन्द विभोर हो उठे। उन्होने भरत क्षेत्रकी तरफ प्रस्थान किया। विशुद्ध

दृष्टिवाले अहिमन्द्र देवने प्रभुके जन्मको जानकर सिंहासनसे उठकर सात पग जाकर जिनराजके चरणारविन्दको नमस्कार किया।

सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्रानियो सहित ऐरावत हाथी पर सवार होकर देवाधिदेव तीर्थंकरके दर्शनको आये। भगवान् के जन्मके समय देवियाँ नाना प्रकार के आभूषणोसे सुसज्जित माता शिवदेवीके निकट श्वेत छत्र लिये खडी थी। और सिर पर चवर डुला रही थी। इन्द्रने आकर शचि नामक इन्द्रानीको प्रभुको प्रसूतिगृहसे लाने की आज्ञा दी। देवीने एक मायामयी बालक माताके पास छोडकर माता शिवदेवी और नवजात शिशु तीर्थंकरको नमस्कार करके उस पुत्रको अपने कोमल करो से लाकर इन्द्रको सौप दिया। फिर वे भगवान्को ऐरावत हाथीपर सवार करके सुमेरु पर्वतपर लाये और वहाँ पाण्डुक शिलापर सिंहासन पर भगवान्को बिठाकर पूजा, स्तवनो, गीतो और नृत्यके बीच उनका भक्तिपूर्वक स्वर्णमय कलशोमे भरे दूधसे महाअभिषेक किया। जन्म कल्याणकका यह दृश्य अति अद्भुत और भक्तिभावपूर्ण था। फिर अभिषेकके पश्चात् भगवान्को सुन्दर वस्त्र, आभूषण और पुष्पमालाएँ पहनायी। तब उनका नाम अरिष्टनेमि रखा। फिर सबने भगवान्की प्रदक्षिणा की।

सुरपतिने जिनेन्द्र भगवान्की स्तुति करते हुए कहा, "हे त्रिलोकीनाथ! आप बिना पढाये सकल श्रुतिके पारगामी, मति, अवधि निर्मल ज्ञानके धारक, मोहनिद्रा-रहित हो। आप समस्त जगत्को देखते हो और सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चरित्र रत्नत्रयसे युक्त हो। पूर्वजन्ममे आपने उग्र तप करके सोलह कारण भावनाए करके तीर्थंकर प्रकृतिका उपार्जन किया। देवोके समूह आपके चरणोकी सेवा करते है। आपके मुख कमलका दर्शन करते-करते तृप्ति नही होती। आपके यशसे भरत क्षेत्र और हरिवश पवित्र हो गये हैं। आपकी दीप्तिने सूर्य और पूर्णचन्द्रमाकी काति जीत ली है, वे मन्द पड गये

हैं। आपको बार-बार नमस्कार। आप तीन भुवनके परमेश्वर, सब जीवोंपर दयालु हैं। अब आप अपार दुःखसे पूर्ण ससार-समुद्रको पार करके मोक्ष जाओगे। मोक्ष पद समस्त जगतका शिखर है। उसके अग्रभागमे सिद्ध परमेष्टि विराजते हैं। आप निर्वाण पदके अतीन्द्रिय, अखण्ड और अविनश्वर सुखको भोगोगे। वह सुख केवल भगवानके सेवन योग्य है और सबका—देवो तथा मनुष्योका—सुख उसके सामने तुच्छ है, उसका अनतवाँ भाग भी नही है। ससारके समस्त पदार्थोंका निरूपण करनेवाला आपका ही मार्ग है। उसको पालनेसे प्राणी परम पद प्राप्त करते है। इस जगतके जीवोको कृतार्थ करनेवाले आप ही है। हम आपके गुणोकी प्राप्तिकी वांछासे आपकी आराधना करते हैं। आप सर्वोच्च है। सुमेर भी आपके स्नानका आसन बना था। हे वीतराग दव! हे सर्वज्ञ देव! आपको नमस्कार।" इस प्रकार श्री नेमिनाथकी स्तुति और उनको प्रणाम करके यह वरदान मागने लगे कि वे जन्म-जन्ममे उनकी भक्ति करें क्योंकि भगवान्की भक्ति ही ससार-सागरसे पार उतारनेवाली है।

अभिषेक और स्तुतिके पश्चात् इन्द्र आदि भगवान्को ऐरावत हाथीपर सवार करके गीत गाते, नृत्य करते और बाजे बजाते सौर्यपुर लौटे। वे भगवान्को बढने, फलने-फूलने, चिरकाल जीवी होने आदिके अनेक आशीर्वाद दे रहे थे।

इस समयकी सौर्यपुरकी शोभा अवर्णनीय थी। नगर ऊची-ऊची ध्वजाओंसे सजा हुआ था। बाजोके मधुर गम्भीर नादमे दसो दिशाए गूँज रही थी। महा मनोज्ञ सुगंधित जलकी वर्षा हो रही थी। वहाँ पुष्पोंकी इतनी वर्षा हुई, कि गलियाँ पुष्पपूर्ण हो गयी। सौर्यपुर लक्ष्मीका निधान, अनेक निधियोसे भरपूर और महा मगल पूर्ण था। वह नगर भगवान् नेमिनाथके जन्मसे ऐश्वर्य और आश्चर्य से परिपूर्ण हो गया। भगवान् नेमिनाथ पृथ्वीमे आनन्दको प्रकट

करते और जनताका प्रमोद बढाते हुए आये। वे आयुमें तो बालक थे, पर गुणोंसे वृद्ध थे अर्थात् अपनी आयुकी अपेक्षा बहुत अधिक गुणवान् थे। इनके जन्मसे मौर्यपुरकी प्रजा और राजा समुद्रविजय कमलोके वनके सदृश प्रफुल्लित हो उठे। इन्द्रने ऐरावत हाथीसे भगवान्को उतारकर माता शिवदेवीकी गोदमे दिया। इस समय इन्द्र और इन्द्रानियो और देवियोने जो नृत्य तथा गान किये, वे अवर्ण-नीय थे।

इन्द्र देवोको भगवान्की सेवा, प्रमोद, दिल बहलाने तथा रक्षाके लिए नियत करके अपने स्थान लौटा। इस प्रकार भगवान्का जन्मोत्सव पूर्ण हुआ।

: २३

जरासिंध का यादवों पर आक्रमण

जब जरासिधने अपने भाई अपराजितके युद्धमे मारे जानेका समाचार सुना तो वह शोक रूपी समुद्रमे डूब गया। उससे पहिले उसका पुत्र कालयवन भी यादवोंसे हारकर पर्वतोमे भाग चुका था। कस-वधका समाचार सुनकर जरासिधके क्रोधकी सीमा न रही। यद्यपि उस महाशोकमे उसके प्राण जानेकी सम्भावना थी, पर यादवोसे बदला लेने और युद्ध करनेके विचारमे उसके प्राण शरीरमे स्थिर रहे। वह अपने जमाई कस और भाई अपराजितको मारने और बेटे कालयवनको पराजित करनेका यादवोंसे बदला लेनेके लिए उनसे लडनेको तैयार हो गया।

जरासिधने अपने सब मित्र राजाओंसे यादवोके नाशके उपायों आदिके सम्बन्धमे मत्रणा करके युद्ध की आज्ञा दे दी। राजा जरासिंध राजनयका ज्ञाता और पुरुषार्थी था। उसका आदेश पाते ही समस्त मित्र राजा तथा स्वामीभक्त राजा अपनी-अपनी चतुरग सेनाएँ लेकर उसके पास आ गये। सेनाओका समुद्र ठाठे मार रहा था। जिधर देखो उधर सैनिक ही सैनिक। इस समस्त सेनाको लेकर जरासिधने यादवोपर चढ़ाई की।

जब जरासिधके आक्रमण का समाचार चतुर गुप्तचरो द्वारा यादवोंको मिला, तो अधकवृष्टि और भोजकवृष्टिके वशके वयोवृद्ध

राजनेता इस आगामी युद्ध-सकटके सम्बन्धमे मत्रणा करने लगे। यादवोंने सोचा कि जरासिध तीन खण्डका स्वामी है और उसकी आज्ञा अखण्ड है। वह इतना प्रचण्ड है कि कोई उसे जीत नही सकता। उसके पास सभी प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और युद्ध सामग्री है। वह अपने कृतज्ञ सेवकोका गुण मानने वाला है। और जो कोई उससे द्वेष करता है पर फिर उसे प्रणाम करता है, जरासिध उसे क्षमा भी कर देता है। उसने पहिले अनेक उपकार ही किये है, किसी का बुरा नही किया। पर अब उसका जमाई कस मारा गया, भाई अपराजित भी मारा गया और उसका पुत्र कालयवन यादवोसे हारकर भाग गया, इसे वह अपना अपमान समझता है। अब उस अपमान के मैलको धोनेके लिए वह महा कोपवान है। वह गर्ववान् इतना है, कि अपने बल और सामर्थ्यको देखता हुआ भी नही देखता। यद्यपि उसे कृष्णके पुण्य और सामर्थ्य और बलभद्रका पुरुषार्थ बाल्यावस्थासे ही मालूम है, पर इस समय उसे वे भी दिखाई नही दे रहे थे। इसी यदुवशमे अब नेमिनाथ तीर्थंकर भी जन्म ले चुके है। उनका प्रभुत्व भी तीन लोकमे है। जिस तीर्थंकरकी सेवामे समस्त लोकपाल सावधान रहते है, उसके कुलको कौन हानि कर सकता है? जिस कुलमे तीर्थंकर जन्म ले, वह कुल अपराजित होता है। ऐसा कौन है जो आगको हाथसे स्पर्श करे और उसके तापसे बच जाय? तेज और प्रताप रूपी अग्निकी ज्वालासे युक्त ऐसे तीर्थंकर, बलदेव तथा वासुदेवके सन्मुख जीतनेकी इच्छा कौन कर सकता है?

यद्यपि जरासिध प्रतिनारायण है, पर उसका नाश करनेवाला यह बलभद्र नारायण इस यदुकुलमे पैदा हुआ है। राजनेताओने मत्रणा की, कि इस लिए जब तक कृष्ण रूपी अग्निमे यह प्रतिनारायण जरासिध रूपी पतग अपने पक्षके योद्धाओके साथ स्वय आकर न भस्म हो, तब तक कालक्षेप करना, समयको टालना ही

उचित है। यह युद्ध-नीति सगत है। इसलिए कुछ दिनोके लिए हमें शूरवीर कृष्णको यहाँसे दूसरे स्थान पर ले जाना उचित है। यह कृष्ण तीन खण्डको जीतनेवाला योद्धा है, पर इस समय वह जरासिधसे लडनेमे समर्थ नही है। इसलिए इस स्थानको त्याग कर हम सब कुछ दिनो के लिए पश्चिम दिशामे किसी और स्थान पर रहे। कार्य को सिद्धि अवश्य होगी। यदि जरासिध वहाँ भी आये, तो उस रण प्रेमीको वहाँ रणमे प्रसन्न करे।

यदु वशके वयोवृद्ध राजनेताओने आपसमे यह मत्रणा करके अपनी समस्त सेनामे सूचना दे दी। बिगुल बजवा कर सबको चलनेके निर्णयसे सूचित किया गया। सब ही सेना और चारो वर्णकी प्रजा कुटुम्ब सहित यादवोंके साथ चलनेको तैयार हो गयी। मथुरा, सौर्यपुर और वीर्यपुरके सभी नरनारियोने ऐसे प्रस्थान किया, मानो वे वन-क्रीडाको जा रहे हैं। उनके साथ अपरिमाण धनराशि वाहनोंमे लदी थी। वे शुभ तिथि और शुभ नक्षत्रमे अपने स्थानसे चल पडे। यद्यपि बलदेव और वासुदेवके मनमे तब भी यह विचार आया, कि चलनेकी अपेक्षा जरासिधसे लडा जाय, परन्तु बडोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होने प्रस्थान ही किया।

मथुरा आदिसे यादवो, सेना और नर-नारियोंका वह प्रस्थान कल्पना करने योग्य ही था। अनेक नदियो, वनो, पर्वतों और प्रदेशों को पार करते हुए वे पश्चिमकी ओर चले और विन्ध्याचलके समीप डेरा डाला। विन्ध्याचल पर्वत हाथियों, शेरो और अपने प्राकृतिक सौन्दर्यके कारण बडा रमणीक है। उसके शिखर आकाशको छू रहे है। उसकी शोभाने सभी के मनको मोहित किया।

यादवोके प्रस्थानकी सूचना पाकर जरासिधने उनका पीछा किया। जब यादवोको जरासिधके पीछा करनेकी सूचना मिली, वे उत्सव मनाकर युद्धके लिए तैयार हो गये। दोनो पक्षोकी सेनामे

थोड़ा सा ही अन्तर रह गया था। आशका थी कि दोनो पक्षोंमे युद्ध छिड जाय।

तभी वहाँ एक कल्पनातीत घटना घटी। दोनों सेनाओंके बीचके स्थानमे प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो गयी। सब तरफ आग ही आग दिखाई देने लगी। अग्निकी लपटे आकाशको छू रही थी। यादवोंके अधीश अग्निमे जले दिखाई देने लगे। सब सेना जली भस्म हुई प्रकट हुई। स्थान-स्थान पर इनके आभूषण और वस्त्र पडे थे। हाथी और घोडे इधर-उधर भाग-दौड रहे थे। बुरा हाल था उनका। यह सब देव-रचित माया थी।

वही एक बुढिया बैठी जोर-जोरसे रो रही थी। जरासिधने उसे देखकर पूछा, "यह किसकी सेना जल रही है? तू क्यो रो रही है?" तब उस वृद्धाने कष्टमे रोते हुए लम्बे-लम्बे श्वास भरते हुए कहना आरम्भ किया, "हे तेजस्वी! राजगृह नगरमे प्रसिद्ध जरासिध राजा राज करता है। वह सत्यवादी है और उसकी प्रताप रूपी अग्नि वडवानलका रूप धारण करके समुद्रमे भी प्रज्वलित है। उससे वैर करनेमे कौन समर्थ है? यादवो पर कृपा करनेमे उसने कसर न छोडी, पर उन्होने अपराध पर अपराध किये और उस अपराध के प्ररिणामसे बचने के लिए वे किसी दिशामे प्रस्थान कर गये। समस्त पृथ्वी पर कही उनको शरण न मिली। चक्रवर्तियोके कोपसे कौन कहाँ बच सकता है? इसलिए उन्होने मरणको ही अपनी शरण समझ कर अग्निमे प्रवेश करके अपनेको भस्म कर लिया है। मै उनके बडोकी दासी हूँ, इसलिए अपने स्वामियोकी दुर्बुद्धि देखकर दुखी होकर रुदन कर रही हूँ। मै इतनी बडी हो गई, फिर भी मै उनके साथ न जल सकी और आज भी जीनेकी आशा है। सभी यादव राजा अपनी प्रजाके साथ अग्निमे जल गये और मै दुखिया स्वामियोके वियोगसे दुखी विलाप कर रही हूँ।"

उस वृद्धाके वचन और अधकवृष्टि और भोजकवृष्टि के मरनेका समाचार सुनकर जरासिंधको बडा आश्चर्य हुआ। उसे हर्ष हुआ कि बिना लड़े ही उसके शत्रु नष्ट हो गये। इसके पश्चात् जरासिध अपने स्थानको वापिस आया। जलने वाले यादवोंमें जो राजा जरासिधके सम्बन्धी थे, वह उनको पानी देकर कृत-कृत्य होकर सुख से रहने लगा।

यह बुढिया एक देवी थी, जिसने रूप बदल कर बुढियाका बहाना करके जरासिंधको वापिस फेरा।

चलते-चलते यादव अपनी इच्छासे पश्चिमके समुद्रके वनोमे आये। उस वनमे लौंग, इलायची, दालचीनी आदि उत्पन्न होते है। वहाँ शीतल मन्द सुगन्धित पवन पर्यटकोको सुख दे रही है। दूर देश से आये ये यादव नृप पश्चिम सागरके तटपर अपनी प्रजा सहित डेरे डाले हुए है।

जिनके पुण्यका उदय होता है, शत्रु उनका बाल भी बाँका नही कर सकता।। इसलिए विवेकशील स्त्री-पुरुषोंको धर्ममें स्थिर रहना चाहिए, क्योंकि धर्मके प्रभावसे विघ्न टलते हैं।

यह कथा गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको सुनाई।

●

: २४ :

द्वारिका निर्माण

पश्चिमी समुद्रके तटपर डेरे डाल देनेके बाद श्री नेमिनाथ, राजा समुद्रविजय, उनके भाई और भोजकवृष्टि के पुत्र सभी समुद्र तटपर सैर करने और प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द उठाने गये। पश्चिम समुद्रकी छटा और सौन्दर्य कौन कवि वर्णन कर सकता है? उसमें उठनेवाली तरंगोंसे वह झूमते हुए मस्त हाथीके सदृश दिखाई दे रहा था। उसमे अनेक लहरें उठ रही थी। जलके मण्डल ऊँचे उछल रहे थे। उसमे फिरनेवाले मगरमच्छो तथा मछलियोंको यादव वर्ग आनन्दपूर्वक देखने लगे। वह समुद्र गम्भीर, उसका तल अथाह और उसकी तरगें अति उत्तुग और चचल थी। उसमे अनेक नदियाँ गिरकर उसके जल और सौन्दर्यको बढा रही थी। समुद्रकी निर्मलता और विस्तीर्णता आकाशकी शोभाको अपनाये हुए थी। वह समुद्र अपने महान् उदरमे अनेक जलचरों तथा जीव-जन्तुओंका पालन-पोषण तथा रक्षा कर रहा था। यह समुद्र उतना ही अलघ्य था, जितना कि जिन-मार्ग वादियो या तार्किको द्वारा अलघ्य है। जिन-मार्गके समान यह समुद्र भी सबको शीतलता देता है और उनके आतपको दूर करता है। ऐसे समुद्रको देखकर वे सब भद्रवशी बहुत प्रसन्न हुए। मथुरा आदि मे उन्होने यमुना तो देखी थी, वहाँ समुद्र कहाँ था?

समुद्रकी लहरोंके साथ जो मूगे-मोती आदि अनेक रत्न तट पर आ रहे थे, वे मानो प्रसन्न समुद्र द्वारा भगवान् नेमिनाथके

चरणोंमें चढायी हुई पुष्पाजंलि थी। समुद्रका उछलना और गरजना यदुओको प्रसन्न करनेके लिए नृत्य और गानके समान थे।

समुद्र अपनी लहरों और ध्वनिके द्वारा श्री कृष्णका आदर-सत्कार कर रहा था। उस समुद्रका लहरोंके रूपमें उठना बलभद्र के सत्कारमे उठना था। इस प्रकार वह समुद्र उस समय अपने तट-पर आये समस्त यादवोका यथायोग्य आदर-मान कर रहा था।

यादव अपने देशको छोडकर नया स्थान तलाश करने और निवास करने आये थे। शुभतिथिमे बलभद्र और कृष्णने तीन उप-वास किये, कुशासन पर समुद्रतटपर बैठकर णमोकार मन्त्रका जाप किया। नया नगर बसानेके लिए जितने तपकी आवश्यकता थी, वह उन्होने किया।

देवोने वहां थोडेमे समयमे ही द्वारिकापुरीका निर्माण कर दिया। यह नगर लम्बा चौडा था, परकोटे, खाई, बाजार, गली-कूचो, वाटिकाओ तथा मीठे जलके कुओं, भवनो, महलो तथा बाजारों आदि वाला था। उसमे मन्दिर भी थे। किसी चीजकी कमी न थी। उसके भवनोंके शिखर आकाशसे बाते करते थे। उसके आस-पास बाग-बगीचोमे लताएँ, फलदार वृक्ष, नागर-बेल, लौंग, सुपारी, इलायची, अगरु और चन्दन आदि के अति सुन्दर वृक्ष थे। ये बाग नन्दन-वनकी शोभाको भी मात कर रहे थे। इन सब बातोके कारण द्वारिकापुरी स्वर्गपुरीके समान सुन्दर लग रही थी।

नगरमे समुद्रविजय आदि दस भाइयों, पुत्रो और रानियोंके लिए अनुक्रमसे महल बनाये गये थे। बलदेव, कृष्ण और उग्रसेन सबके लिए अलग-अलग भवन थे।

कुबेरने कृष्णको मुकुट, हार, मणि, पीतवस्त्र, आभूषण, गदा, खड्ग, धनुष, दो तरकस और वज्रमई बाण दिये। इनके अतिरिक्त

कृष्णको सर्व आयुधोसे पूर्ण रथ भी दिया, जिसपर गरुड़का झण्डा, चमर और सफेद छत्र थे ।

इसी तरह कुबेरने बलभद्रको भी नीले वस्त्र, रत्न माला, मुकुट, गदा, हल, मूसल, धनुष-बाण, दो तरकस दिये और उसने दिव्य अस्त्रोसे भरा रथ भी बलभद्रको दिया, जिस पर ताडके पत्रके आकारका झण्डा और चमर-छत्र थे । ससुद्रविजय आदि सभी राजाओ तथा रानियोको उनके लिए उपयुक्त वस्त्राभूषण आदि दिये ।

भगवान् नेमिनाथको उनकी रुचि और अवस्थाके योग्य सभी वस्तुएँ ऋतु अनुसार हमेशा मिलती रहती थी ।

इसके पश्चात् कुबेरने यादवोको द्वारिकापुरीमे प्रवेश करने और प्रजाको उसमे बसानेकी प्रार्थना की । जैसे देवता स्वर्गमें प्रवेश करते है, वैसे यादवोने द्वारिकामे प्रवेश किया और अपने-अपने नियत भवनोमे रहना शुरू किया ।

द्वारिकामे रहना शुरू करने पर मथुरावासियोने अपने मुहल्लेका मथुरा नाम रख दिया, सौर्यपुरवालोने अपने भागका नाम सौर्यपुर रखा और वीरपुरवासियोने अपने निवास स्थानका नाम वीरपुर रखा । इससे द्वारिकाके मुहल्ले आदि के नाम भी रखे गये और पुराने निवास-स्थानोके स्मारक भी बन गये ।

श्री नेमिनाथ चन्द्रमाके समान समस्त कलाओके साथ बढने लगे । वह उदय होते सूर्यके सदृश शोभायमान थे । समुद्रविजय आदि दसो भाइयोके कमल रूपी शरीरोको नेमिनाथ रूपी सूर्य प्रफुल्लित करने लगा । नेमिनाथने सूर्यके समान अपनी ज्योतिसे समस्त अंधकारको दूर कर दिया । नेमिनाथने बलदेव और कृष्णके आनन्दको बढाना आरम्भ किया । समस्त यादवोकी रानियाँ नेमिनाथकी चाचियाँ आदि लगती थी । उन सबका ही वह प्यारा था । सभीकी

गोदमें वह बालक नेमिनाथ खेलता था। सबका दुलारा, प्यारा और आँखोका तारा था।

जब नेमिनाथ युवा हुए, तो उनके अनुपम तथा अद्वितीय रूप-सौन्दर्य की शोभा अवर्णनीय थी। नगरके नर-नारियो की दृष्टि सिवाय नेमिनाथके और किसी पर न टिकती थी। सब इनको देख कर मोहित होते थे, पर नेमिनाथ का मन किसीको देखकर मोहित न होता था। इतना ही नही, जब भाई-बन्धु नेमिनाथके पास शृगार रसकी चर्चा करते या इनके विवाहकी बात चलाते, तो ये शर्माकर गर्दनको नीची कर लेते। तीन प्रकारके ज्ञानसे जिस नेमिनाथने मोह रूपी कलकको धो डाला है, उनके मनको ससारकी मोह-माया रूप की धूल कैसे मैला कर सकती थी ?

द्वारिकापुरी तो निस्सन्देह सुन्दर थी ही, पर नेमिनाथ आदिके गुणोसे उसकी सुन्दरताको चार चाद लग गये।

२५ :

रुक्मणी हरण और शिशुपाल वध

एक दिन जब यादवोकी सभा लग रही थी, तब नारद आकाश से विमानमे वहाँ आये । नारदकी जटाये पीली, दाढी-मूछ सफेद, पर शरद ऋतुके मेघके समान उज्ज्वल थी । उनके शरीरकी प्रभा बिजलीके प्रकाशके समान थी । बहुरगे और विस्तीर्ण योग पटसे उनकी शोभा सुन्दर लग रही थी । वे अपने हिलते हुए वस्त्र, कोपीन और दुपट्टा पहने हुए सभामे ऐसे आये, जैसे जगतकी भलाईके विचार से कल्पवृक्ष आते है । उनके कण्ठमे यज्ञोपवीतका सूत्र ऐसा लग रहा था मानो वे रत्नत्रय युक्त है । मन, वचन और कायाकी शुद्धतासे जन्मसे धारण किये हुए बाल-ब्रह्मचर्यसे उज्ज्वल, रूप और महा पाण्डित्यके कारण उनका प्रभाव अद्वितीय था । उनकी प्रकृति मिथ्यात्व रहित होनेसे पवित्र थी । बलदेव और वासुदेव तो राज्यके उदयसे राजाओ द्वारा पूजित थे पर नारद काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्ष्याके छह शत्रुओको जीतनेके कारण बिना राज्यके ही सबके पूज्य थे ।

जब नारद आकाशसे उतरकर सभामे आये, तब सभी राजाओं ने शीस नवा कर खडे होकर उन्हें नमस्कार किया, भक्तिसे उनके चरण पूजे और बैठनेको आसन दिया । नारदको तो केवल सम्मान से हर्ष होता था । किसीसे उसे और कुछ नही चाहिए था । वसुदेव और वासुदेव सबने नारदका सम्मान किया, पर नारद नेमिनाथ

जिनेश्वरको नमस्कार करके सभामें बैठे । तीर्थंकर नेमिनाथके दर्शन करके और उनके वचन सुनकर नारदको अति हर्ष हुआ । उसकी यह अभिलाषा थी, कि वह निरतर प्रभुके दर्शन करता रहे, वचन सुनता रहे । फिर नारदने सभी तीर्थंकरोकी कथा और सुमेर पर्वत-की यात्राका वर्णन सभाको सुनाकर उनके मनको तृप्त किया ।

नारदका जिकर आते ही राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे नारदका हाल और उत्पत्ति पूछी । श्री गौतम गणधरने उत्तर दिया, "हे भूपेन्द्र ! यादवोकी राजधानी सौर्यपुरके निकट दक्षिणकी ओर तापसोका आश्रम है, जहाँ बहुतसे तपस्वी कन्दमूल और फल-पत्तोका आहार करने वाले रहते है । उनमे एक तपस्वी सुमित्र है, जिसकी स्त्रीका नाम सोमयशा है । वह तपस्वी उञ्छ वृत्ति का है ।"

राजा श्रेणिकने पूछा, "हे स्वामी ! उञ्छ वृत्ति क्या होती है ?"

गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको बताया, "नगरमे बनियोंकी दुकानके सामने अन्नके जो कण बिखर जाते है, उन्हे जो तपस्वी इकट्ठा करके अपने उदरकी पूर्ति करे, और कभी-कभी कन्द-मूल आदि भी भक्षण करे, उनकी इस वृत्तिको उञ्छ वृत्ति कहते है । सुमित्र तपस्वीके एक पुत्र नारद हुआ । इस बालककी काति चन्द्रमा-की कातिके समान थी । एक दिन भूख-प्याससे पीड़ित वे पति-पत्नी बालक नारदको एक वृक्षके नीचे सुला कर नगरमें उञ्छ वृत्तिके लिए गये । बालक वृक्षके नीचे खेल रहा था । जृभक नामक एक देव आया । उस बालकको देखते ही पूर्व स्नेहवश वह देव नारदको वैताडय पर्वत पर ले गया । वहाँ एक गुफामें इस बच्चेको रखा और कल्प वृक्षोंके भोजनसे इसे पाला-पोसा । जब यह बालक आठ वर्षका हुआ, तब देवने इसे जिनागमका रहस्य समझाया और इसे आकाश-गामिनी विद्या दी । देवने इसका नाम नारद रखा ।"

राजा श्रेणिकने गोतम गणधरसे पूछा, "महाराज ! इस नारद

के कुछ गुण भी बतानेकी कृपा करे।" तब गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे कहा, "हे नरेन्द्र ! यह नारद अनेक शास्त्रोका पाठी महा विद्वान् है। मुनि राजोकी सेवा करके इसने श्रावकके व्रत लिये हैं। यह नारद स्वय तो जन्मसे ही कामको जीतनेवाला तथा महाशील-वान् और अति सुन्दर है, पर जो राजा कामी है उनका बड़ा प्रिय है और उनका मनवाछित स्त्रीसे विवाह करा देता है। यह लोभ-रहित, प्रसन्न-वदन और हास्यरसका अनुरागी है। यह बडा तेजस्वी और मानी है। यदि इसका सत्कार न हो, तो क्रोधसे प्रज्वलित हो उठता है। जो इसकी स्तुति कर देता है, यह उसका हो जाता है। यह लड़ाई-झगडे देखनेका बडा प्रेमी है और बातूनियोमे मुख्य है। देवस्थानो, तीर्थों, मन्दिरो और मुनियोके दर्शनका बडा अभि-लाषी है। चतुर्विध सघका बडा प्रेमी है। यह धर्म-प्रेमी, श्रद्धावान, शास्त्रोमे निपुण और चर्चा करनेमे चतुर है। यह बडा सज्जन स्वभावी और कौतूहली है। घुमक्कड इतना है, कि अढाई द्वीपमे सदा परिभ्रमण करता रहता है। यदि कही इसके आदर सत्कार मे कमी होती है, तो उस स्थानके प्रति इसकी अरुचि हो जाती है।"

राजा श्रेणिकने नारदके गुण सुनकर कहा, 'हे प्रभो ! बडी धार्मिक प्रवृत्तिवाला विचित्र व्यक्ति है यह नारद।"

यादवोकी सभामे धर्म-चर्चा करनेके बाद नारद राजा समुद्र-विजय आदि से पूछ कर राज भवनमे गया। राज दरबारके समान ही रनवासमे भी इसकी पहुँच थी। वहाँ कृष्णकी प्राण-प्रिया पटरानी महाशीलवती सत्यभामा स्नान आदि मे निवृत्त होकर वस्त्रा-भूषण पहन कर मणियोके दर्पणमे अपना रूप-शृगार देख रही थी। वह अपने शृगारमे इतनी व्यस्त थी, कि उसने न नारदको देखा और न उसका सत्कार किया।

नारदने इस उपेक्षाको अपना निरादर समझा और तत्काल क्रुद्ध होकर घरसे निकल खडा हुआ। उसने सोचा कि इस पृथ्वीपर

सभी मुझे देखकर आदर करते हैं और रानियाँ भी मुझे नमस्कार करती हैं। पर इस सत्यभामाने रूपके मदसे गर्वित होकर मेरी तरफ आँख उठा कर भी नहीं देखा। यह विद्याधरीकी पुत्री महा ढीठ और अविनयी है। यदि मैंने इसकी सौतके वज्रके निपातसे इसके रूप-सौभाग्यके पर्वतको चकनाचूर न कर दिया, तो मैं नारद नही। यदि मै ऐसा न करूगा, तो आगे मुझे कौन खातिरमे लायेगा? इसके रूपको मात करनेवाली रत्नपूर्ण वसुधरा तुल्य सौत मैं कृष्णके घरमे लाऊँगा। जब तक मै इसे ठण्डी आहे भरते न देखूगा, तब तक मेरी क्रोधाग्नि शात न होगी। मुझ नारदको नाराज करके कौन निश्चित और सुखी रह सकता है? सत्यभामासे अधिक रूपवान युवतीकी खोजमे नारद जगह-जगह घूमा, पर उसे सत्यभामासे अधिक रूपवान् तो क्या उसके सदृश रूपवती-सी भी न मिली।

घूमता-घूमता नारद कुण्डलपुर आया। वहाँ शत्रुओंके लिए महा भयकर भीष्म राजा राज करता था। उसके महा बुद्धिमान और अति पराक्रमी रुक्म राजकुमार और कला और गुणोमे प्रवीण रुक्मणी राजकुमारी थी। यह रुक्मणी रूप, यौवन और लावण्यमे अद्वितीय थी। रुक्मणी सध्या समय सूर्यकी लक्ष्मीके समान शोभावान थी। मानो कृष्णके पुण्यसे पूर्वोपार्जित कर्मने यह कन्या महा सुलक्षणो, महारूप और महा सौभाग्य एकत्रित करके बनाई थी। इसके हाथ, चरण, मुख रूपी कमल, जघा, नितम्ब, भुजाएँ, नाभि, उदर, भौहे, करण, नेत्र, सिर, कण्ठ, नाक और अधर आदि समस्त अग समस्त उपमाओंको जीतकर रुक्मणीके अगमें मौजूद थे। रुक्मणी अनुपम थी। नारदने राज सभामे राजा भीष्मसे नमस्कार, सत्कार और आदर प्राप्त किया। फिर वह रनवासमे गया, तो रुक्मणीके रूपको साश्चर्यसे देखकर मनमें सोचने लगा, कि मैंने अनेक राज कन्याएँ देखीं हैं, पर इसके समान सुन्दरी कोई नही देखी। मैं इस अनुपम कन्याका विवाह कृष्णके साथ करके सत्यभामाके रूप और सौभाग्यके पदको

निवारूंगा । जब नारद इस प्रकार विचार-निमग्न था, तब विनय मूर्ति और मधुर शब्दोके आभूषणोसे सुसज्जित रुक्मणीने उसे हाथ जोड़कर प्रणाम् किया । नारदने उसकी विनयसे प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया, "हे रुक्मणी ! तू द्वारिकापति की पटरानी हो ।"

इस आशीर्वादको सुनकर रुक्मणीकी बुआने नारदसे पूछा, "हे महाराज ! ये द्वारिकापति कौन है ?" तब नारदने कृष्ण माधवके सब गुण और परिचय बताये । रुक्मणी कृष्णके गुणोका वर्णन सुन कर कृष्णके प्रति अति आसक्त हो गई । नारदने भी वहाँ चन्द दिन रहकर कृष्णके गुण-गान गाकर रुक्मणीकी चित्त रूपी भित्ति पर कृष्णको चित्रित कर दिया । फिर रुक्मणीके रूप, वर्ण, आयु और विद्याको अपने मनमे लिखकर वह वहाँ से चल पडा । बाहर आकर पहले नारदने एकान्तमे तुरन्त रुक्मणीके रूपका स्पष्ट चित्र बनाया और द्वारिका जाकर कृष्णको वह मनमोहक चित्र दिखाया ।

श्री कृष्णको नारदसे जो स्नेह था, वह चित्र देखते ही दुगना हो गया । श्री कृष्णने चित्रमे सुलक्षणा अति सुन्दरीको देखकर पूछा, "हे भगवन् ! यह आपने किस कन्याका रूप-सौन्दर्य चित्रपटमे उतारा है ? ऐसा अद्भुत रूप न स्त्रियोका है और न देवियोका ।" महात्मा नारदने उत्तर दिया, "हे मित्र ! यह राजा भीष्मकी कन्याका रूपचित्र है ।" इस उत्तरको सुनकर कृष्णके मनमे रुक्मणीके पाणिग्रहणकी चिन्ता पैदा हुई ।

उधर कुण्डलपुरमे रुक्मणीकी बुआने एक दिन एकान्तमे उससे कहा, "हे बाले ! मै तुझे एक बात बताती हूँ । एक दिन अतिमुक्तक अवधिज्ञानी मुनि यहाँ पधारे थे । तुझे देखकर उन्होने भविष्यवाणी की थी, कि इस कन्याके ऐसे लक्षण और ग्रह पडे है, कि यह वासुदेव-के हृदयमे लक्ष्मीके समान निवास करेगी । केशवकी अनेक रानियोंकी यह स्वामिनी होगी । यह कहकर मुनि तो चले गये, पर अपने घरमें

किसी ने कृष्णकी बात न सोची। ठीक ऐसे जैसे कि पूर्व जन्मकी कथा मनुष्यको याद ही नही आती। पर अब नारदने उस भविष्य-वाणीको याद दिलाया है और इधर तेरा भाई रुक्म महाराज शिशुपालके पास गया था। वह तेरी सगाई शिशुपालसे कर आया और अब शीघ्र ही तेरा विवाह उससे होने वाला है।''

बुआके ये वचन सुनकर रुक्मणीने अपनी बुआसे कहा, "मुनिके वचन कभी अन्यथा नही हो सकते। मेरा तो एक पति वासुदेव ही है। इसलिए मेरे मनकी बात शीघ्र ही द्वारिकापतिको पहुँचा दे।'' रुक्मणीके मनकी बात जानकर उसकी बुआने एकान्तमे रुक्मणीकी तरफसे कृष्णको यह पत्र भिजवाया

''हे नाथ! मैंने आपके नामका आश्रय लिया है और इसीसे मेरे प्राण बचे हुए है। मै रुक्मणी आपके दर्शनकी चाह रखती हूँ। माह सुदी अष्टमी का लग्न है। इस लग्नपर आकर आप मुझे ले जाये। यदि आप न आये, तो मेरे पिता और भाई मुझे शिशुपालसे विवाह देगे। इससे मेरा मरण ही है। आपको न पाकर मैं जीती न रहूगी। नगरके बाहर नागदेवका मन्दिर है। वहाँ मैं लग्नके समय पहलेसे आजाऊँगी। आप मेरे आनेसे पहले ही वहां पधारिये और कृपा कर मेरा करग्रहण करके ले जाये।''

रुक्मणीके इस पत्रको पाकर माधव रुक्मणीको हरण करनेके लिए तैयार हो गये।

उधर चन्देरीके राजा शिशुपालने अपनी सेना सहित कुण्डलपुरके स्वामी भीष्म राजाके निमन्त्रणपर विवाहके लिए आकर कुण्डलपुरके निकट डेरे डाल दिये।

इधर नारदने एकान्तमें मोहनसे कहा कि यही मौका है। तब कृष्ण बलभद्र सहित छुपकर, बिना किसीके जाने, निकले और रुक्मणी,

उसकी बुआ और सखियोके नागदेवके मन्दिरमे आने से पहले ही वहाँ पहुँच गये। वहाँ कृष्णने रुक्मणीको देखा। पहले नारदने रुक्मणीके रूपका जो वर्णन कृष्णसे किया था, उसके सुनने से जो रागाग्नि पैदा हुई थी, वह अब पारस्परिक दर्शनसे और भडक उठी। कृष्णने रुक्मणीसे कहा, "हम तेरे लिए यहाँ आये है, तुम हमारे हृदयमे आ बैठो। यदि तेरा हमसे सच्चा स्नेह है, तो हमारे पास रथमे सवार हो जाओ और हमारा मनोरथ पूरा करो।"

जब कृष्णने रुक्मणीसे ये वचन कहे, तब रुक्मणीकी बुआने उससे कहा, "हे कल्याणरूपणी! अतिमुक्तक स्वामीके कथनानुसार तेरा वर तेरे पुण्यके उदयसे तेरे पास ही आया है। यद्यपि पुत्रीको विवाहमे देनेवाले माता-पिता कहे गये है, परन्तु वे भी विधि अर्थात् कर्मके अनुसार ही बेटीको देते है। इसलिए पूर्वोपार्जित कर्म ही गुरु है।"

बुआके ये वचन सुनकर रुक्मणी कृष्णमे अति अनुरक्त तो हो गई, पर लज्जावश वह रथ पर स्वय कैसे चढती? तब कृष्णने उसके मनके भावको समझकर उसको अपने दोनो हाथोमे उठाकर रथमे सवार किया। उनकी आँखे चार हुई और परस्पर अंग स्पर्श हुआ। इससे दोनोको अति सुख मिला और कामवासना जागी। दोनोका अद्भुत रूप था। दोनोके सुगन्धित शरीरो और मुखके सुगधपूर्ण श्वाससे वे सुगधमे भर गये। एक दूसरेके रूपसे दोनोके मन वशीकरण मत्रित हो गये। विधि बलवान होती है। जहाँका सयोग होता है, बेटी-बेटेका विवाह वहाँ ही होता है। यहाँ भी पूर्वोपार्जित कर्म रूपी विधिने रुक्मणीको शिशुपालसे विमुख और कृष्णके सन्मुख करके इनका सयोग कर दिया।

रुक्मणीको रथमे सवार करते ही कृष्णके मनमें विचार आया, कि वह इतना निर्बल तो है नहीं, कि रुक्मणीको चोरकी

तरह ले जाये। तब मोहनने पाचजन्य नामक शखको बजाया, जिसकी ध्वनि दशो दिशाओमे गूँज उठी। यह एक प्रकारसे लडाई-की चुनौती थी। शखकी ध्वनि सुनते ही शत्रुकी सेना क्षुब्ध हो गई। रुक्मणीका भाई रुक्म और शिशुपाल इस वृत्तान्तको जानकर अपनी चतुरग महासेनाको लेकर कृष्ण और बलभद्रके सामने युद्धके लिए आ डटे। तब कृष्णने रुक्मणीको शत्रु सेना दिखाई। रुक्मणी इस समय कृष्णके बायें अग बैठी थी। जब उस मृगनयनीने शत्रुकी प्रबल सेना-को देखा, तो उसके मनमे पतिमरणकी आशका पैदा हुई। उसने पति कृष्णसे कहा, "हे नाथ! इधर यह मेरा भाई रुक्म कुपित है और शिशुपालकी अपार सेना है। और यहाँ केवल आप दोनो भाई है। आपकी सेनाको रणमे इनपर कैसे विजय प्राप्त होगी? यही सन्देह मेरे मनमे है। मै बडी मदभागिनी हूँ। आपतो वीरातिवीर है। आपको युद्ध की चिन्ता क्या? पर रण रण ही है।" रुक्मणीके सन्देहपूर्ण वचन सुनकर कृष्णने उससे कहा, "हे कोमलचित्तधा-रिणी! तू भय मत कर। ये सख्यामे ज्यादा है, तो क्या? मै इतना पराक्रमी हूँ, कि इनके लिए एक ही बहुत काफी हूँ। मेरे होते ये क्या कर सकते है?"

इस पर रुक्मणीने कृष्णसे कहा, "हे नाथ! मुनि अतिमुक्तकने कहा था, जो व्यक्ति एक बाणसे सात ताल्के वृक्ष छेद दे, वह वासुदेव होगा। मैं इसमे सन्देह नही करती।" इतना सुनते ही कृष्णने अपना धनुष चढाया और एक बाणसे सात ताल वृक्षोकी पक्ति तुरन्त छेद दी। कृष्ण तो सामान्य अस्त्रोके अतिरिक्त दिव्यास्त्रों-को भी चलानेमें प्रवीण था। उसकी शस्त्रविद्याका क्या कहना? इतना ही नही, रुक्मणीकी अँगुलीमें वज्रमणीकी अगूठीको माधवने अपने हाथमे रगड कर चकनाचूर कर दिया। अब रुक्मणीका यह सन्देह तो दूर हो गया कि इस रणमे इन दोनो भाइयोंका तो बाल भी बांका न होगा। अब उसने हाथ जोड़कर विनती की, "हे नाथ!

आपसे प्रार्थना है कि इस युद्धमे मेरा भाई न मारा जाय, उसकी रक्षा करना।" कृष्णने रुक्मणीको उसके कहे अनुसार आश्वासन दिया।

अब लड़ाईके लिए कृष्ण रथमे सवार हो गया। रुक्मणी भी उसके साथ थी। बलभद्र स्वय सारथी बना और उसने रथको शत्रुओ की ओर बढाया। दोनो भाई क्रुद्ध हो बैरियोपर बाणोकी वर्षा करने लगे। थोड़ी देरमे लडाई रग पर आ गई।

शिशुपालकी सेनाके बहुतसे सैनिक रणभूमिमे खेत रहे, बाकी इधर-उधर भाग गये। अब शिशुपाल और रुक्म उनके सामने खडे थे। श्री कृष्णने शिशुपालको लडनेके लिए ललकारा। यह शिशुपाल मदघोषका पुत्र था। बडा उन्मत्त और वीर लडाका था, पर कृष्णके एक बाणने ही उसके सिरको वेध कर भूमिपर डाल दिया। उसको सावन्तपनेका जो अति मद था, उसका वह मद भग कर दिया। इधर बलभद्रने रुक्मको घायल कर दिया, पर रुक्मणीका भाई समझकर और रुक्मणीकी इच्छानुसार उसे जीवनदान दिया।

रणमे विजय प्राप्त करके बलभद्र और कृष्ण रुक्मणी सहित गिरनार गये। वहा कृष्णका रुक्मणीसे विधिपूर्वक विवाह हुआ। फिर वे लोग द्वारिका पधारे।

बलभद्र अपनी प्रिया रेवतीके महलमे गया और कृष्ण नववधु रुक्मणीके साथ प्रेमपूर्वक दिन बिताने लगा।"

श्री गोतम गणधरने राजा श्रेणिकसे आगे कहा, "हे राजन्! जब वासुदेवने शिशुपालको मार दिया और उसकी रथसेनाको चकनाचूर कर डाला, तब सूर्य भी अपनी किरणें सकोचकर अस्ताचलके आश्रय चला गया, क्योकि सूर्यने मनमे विचारा, कि यह माधव तेजस्वियोका तेज नही देख सकता। कही ऐसा न हो कि मुझे तेजवान समझकर पकड ले जाये, इसलिए दिवाकर अस्त हो गया।

जब सूर्य ग्रस्त हुआ और संध्या भी उसके पीछे चली गयी, तब समस्त जगत् काजल समान श्याम चादरसे आच्छादित हो गया। यह अधकार पटल मोहको पैदा करता है और कामको बढाता है। जैसे पराक्रमी राजाके वियोगसे दुष्टजन चौगिर्द सिर उठा लेते है, वैसे ही दिनकरके अस्त होनेपर अधकार सर्वत्र फैल जाता है। कुछ रात बीतने पर जब चन्द्रमा उदय हुआ और उसने अपनी रुपहली किरणोसे समस्त अधकारको दूर कर दिया, तो पृथ्वीपर चारों तरफ प्रकाश फैल गया। यह चन्द्रमा सयोगी जनोका तो मित्र है उन्हे प्रमुदित करता है और जो विरही है उन्हे आताप देता है। चादनी रातमे प्रिया प्रीतमके निकट विकासको उसी प्रकार प्राप्त करती है, जेसे चन्द्रमाके स्पर्शसे कमोदनी विकसित होती है। चन्द्रमाके उदयसे कमलनी खिल उठती है, पर चकवा-चकवी वियोगसे दुखी हो जाते है। ससारकी गति भी कितनी विचित्र है कि चन्द्रमा जहाँ किसी एक के लिए हर्षका कारण है, तो किसी दूसरेके लिए दुखका कारण।

जब रात्रिका समय हुआ, तो मानी नायकोके मान भग हो गये। रात स्त्री-पुरुषोको समान रूपसे सुख देती है। स्फटिक मणियोके महल चादनीसे अति सुशोभित हो रहे थे। ऐसे मनोहर समयमें सभी यादव नृप सुख से समय बिता रहे थे। और कृष्ण अपनी नववधू रुक्मणीके साथ आनन्दमग्न था। जब प्रभात हुआ और मुर्गे बाग देने लगे, तो मानो वे रातके अन्तकी सूचना दे रहे थे। पहले तो मुर्गे जरा ऊँचे स्वरसे बोलते थे, फिर वे धीमे स्वरसे बोलने लगे। मानो वे यादवोकी रानियोके भयसे धीरे-धीरे बोलने लगे है, कि उन्हे दुख न हो। जब रात थोडी रहती है, तब मुर्गोका बोलना कामिनियोको नही सुहाता।

प्रभात समय सध्याके समान रुक्मणी कृष्णसे पहले जागी। पतिव्रता स्त्रियोका यही धर्म है, कि पति के शयन करनेके बाद सोये और पतिके उठनेसे पहले जागे और पतिको भोजन कराके स्वय

बादमें भोजन करे। कृष्ण अपनेसे पहले जगी रुक्मणीको देखकर अति अनुरागी हो उठा। ऐसी सुन्दर, कर्तव्य परायण और पति-भक्त स्त्री और किसके हो सकती थी? प्रभातके समय बजते बाजों-की मधुर ध्वनि ऐसी लग रही थी, जैसे मेंहकी हलकी ध्वनि होती है। द्वारिकामे घर-घर लोग जाग उठे। सब प्रजा अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त हो गई। रातका जो अधकार चन्द्रमासे पूर्ण रूपसे न मिटा था, वह सूर्यके उदयसे सर्वथा नष्ट हो गया। अब सर्व पदार्थ स्पष्ट प्रकट दिखाई देने लगे। सूर्य ही दुर्निवार अधकारको मिटानेमे समर्थ होता है, जैसे धर्म मिथ्यातत्त्वरूपी अधकारको दूर करता है और विधि मार्गमे प्रवृत्त होता है।

· २६ ·

प्रद्युम्नकुमार के पूर्व जन्म

विवाहके पश्चात् कृष्णने रुक्मणीको पटरानीका शिरोमणी पद देकर रानी सत्यभामाके महलके शिरोभागमे स्थान दिया। उसके भवनको द्वरपाल, सेवक, हाथी, घोडे, रथ, पालकी आदि सब सुविधाओ तथा पति प्रेमसे भर दिया। इस आदरसम्मानको पाकर रुक्मणी बहुत सतुष्ट हुई।

अब तक रुक्मणी और सत्यभामाका साक्षात् मिलाप नही हुआ था।

रुक्मणी बडी चतुर थी। वह मनमे जानती थी, कि सत्यभामा महा सुन्दर है और कृष्णके मनको अधिक भाती है। इसलिए वह चाहती थी, कि किसी प्रकार कृष्णकी उसपर अधिक कृपा दृष्टि रहे। उसे सत्यभामासे ईर्ष्या हो गई। इसलिए वह श्री कृष्णको अधिक से अधिक प्रसन्न रखने लगी। कृष्णको भी उससे अति स्नेह हो गया।

एक दिन कृष्ण रुक्मणीके मुखके सुगधित ताम्बूलका उगाल अपने पीताम्बरके पल्ले बाधकर सत्यभामाके रनवासमे गये। वे वही सो गये। उस ताम्बूलकी सुगधसे सारा शयनगृह महक उठा। सत्यभामा उस सुगध पर मोहित हो गई और कृष्णके पल्लेसे उसको खोलकर और पीसकर अपने अगोंपर लगा लिया। इस पर माधव

मुस्कराये । सत्यभामाने ईर्ष्यासे कुपित होकर कहा, "रुक्मणी तो मेरी बहन है, आप क्यों हसते हो ?" हरिकी इस समयकी चेष्टाओं-को देखकर सत्यभामाने समझा, कि उसकी सौत रुक्मणी अति सौभाग्यशालिनी है । इसलिए उसके मनमे उसके रूप लावण्यको देखनेकी अभिलाषा पैदा हुई । उसने अपने पतिसे कहा, "हे नाथ ! मुझे रुक्मणी दिखाओ । उसके गुणोको मै सुन चुकी हूँ । अब उसके दर्शनो से मेरी आँखोको तृप्त करो ।"

कृष्ण सत्यभामाको रुक्मणीसे मिलानेके लिए मणिवापिकाके निकट बिठाकर स्वय रुक्मणीको लाने गये । कृष्ण सत्यभामासे ताम्बूल सम्बन्धी एक विनोद पहले कर चुके थे । अब उन्होने एक विनोद और किया । उन्होने रुक्मणीको तो वनमे प्रवेश करनेको कहा और स्वय पीछे आनेका कहकर वृक्षोके पीछे से सब कुछ देखनेके लिए छिप गये । जब रुक्मणी वनमे पहुँची, तो सत्यभामाने उसके रूप-सौन्दर्यको देखकर मनमे सोचा, कि यह वनदेवी है । उस समय रुक्मणी सुन्दर वस्त्रो और अद्भुत आभूषणोको पहने हुए आमके वृक्षकी डाल पकडे खडी थी । उसकी चोटीके केश कुछ ढीले हो गये थे । और वह उन्हे बाये हाथमे सवार रही थी । उसका अग कुछ नम्रीभूत था । यदि ऐसी शोभापूर्ण सुन्दर खडी रुक्मणीको सत्यभामा ने वनदेवी समझ लिया, तो इसमे आश्चर्य ही क्या था ? सत्यभामा-के चित्तमे तो सौतिया डाहका काटा पहले ही से चुभ रहा था । उसे देखते ही सत्यभामाने उसके चरणोपर पुष्पाजलि चढा कर अपने सुहाग और सौत रुक्मणीके दुर्भाग्यकी याचना की । ठीक उसी समय कृष्ण वहाँ आकर सत्यभामासे हसकर कहने लगे कि तुमको अपनी बहनका भली-भाँति अपूर्व दर्शन हुआ । सत्यभामा सब रहस्य-को समझ कर कृष्णसे कोप करके कहने लगी, "हम तो आपसमे पहले ही मिल रही है । आप क्या मिलाओगे ?" इस पर कृष्ण कुछ मुस्करा दिये । पर बडे कुलमे उत्पन्न स्त्री-पुरुषोके विनय लक्षणसे

युक्त रुक्मणीने तुरन्त सत्यभामाको नमस्कार किया। इसके पश्चात् कृष्णने दोनो रानियोंके साथ लताओंसे मडित उस वनमें चिरकाल विहार और सैर की। फिर वे अपने घर लौट आये, जहाँ आनन्द सुखमें मग्न कृष्णके बहुत दिन एक दिनके समान बीतने लगे।

एक दिन हस्तिनापुरके अधिपति दुर्योधनने स्नेहपूर्वक अपने दूतके द्वारा श्री कृष्णको यह सन्देश भेजा, "आपकी दोनो रानियाँ सत्यभामा और रुक्मणी गर्भवती है। उनके पहले पैदा होने वाला पुत्र ही मेरी पुत्रीका वर होगा।" कृष्णने दुर्योधनके निवेदनको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करके दूतको बडे सम्मानसे विदा किया। दूतने अपनी कार्यसिद्धिका समाचार अपने स्वामी दुर्योधनको सुनाया।

सत्यभामाने यह बात सुनकर अपनी दूती द्वारा रुक्मणीको यह सन्देश भेजा, "हे बहन! हम दोनोंमे जिसके पुत्र होगा, वह पुत्र ही दुर्योधनकी पुत्रीको ब्याहेगा। पर शर्त यह है कि यदि तुम्हारा पुत्र उसे ब्याहे तो वह मेरे सिरके केश मुडवाकर उनपर पाँव रख कर ब्याहने जाय और यदि मेरा पुत्र ब्याहने जाये तो वह तुम्हारे केशो पर पाँव रख कर ब्याहने जाय।" रुक्मणीने सत्यभामाकी वात मान ली।

एक रात रुक्मणीने स्वप्नमे देखा कि वह हस विमानमे आकाश मे विहार कर रही है। कृष्णने उसे उसका फल बताया, कि तेरा पुत्र एक महापुरुष और आकाशगामी होगा। यह सुनकर रुक्मणीके हर्षके सीमा न रही।

सोलहवे स्वर्गका अच्युतेन्द्र उपेन्द्र रुक्मणीके गर्भमे आया। उसी दिन सयोगसे सत्यभामाको भी शुभ-स्वप्न आये और गर्भ रहा। कृष्ण, रुक्मणी और सत्यभामा सभी परम सुखी और प्रसन्न हुए।

नौ महीने पूरे होने पर रुक्मणी और सत्यभामाके साथ-साथ पुत्र पैदा हुए। दोनो रानियोकी तरफसे श्री कृष्णको शुभ समाचार

सुनाने और बधाई देनेवाले रातके समय ही एक साथ आये । कृष्ण उस समय सो रहे थे । सत्यभामाके पुत्रोत्पत्तिकी बधाई देनेवाले गर्ववश कृष्णके सिरहाने खडे हो गये । उन्होने सोचा था कि कृष्ण-की दृष्टि पहले उनपर पडेगी । रुक्मणीके पुत्र-जन्मकी बधाई देने-वाले कृष्णके पायते खडे थे । जब कृष्णकी आँखे खुली, तब उन्होने पहले रुक्मणीके सेवकोको देखा और उनकी बधाईके प्रत्युत्तरमे बधाई दी । फिर सत्यभामाके सन्देशवाहकोको । इससे प्रथम पुत्रका पद रुक्मणीके पुत्रको मिला । और सत्यभामाका पुत्र दूसरा बना । कृष्णने प्रसन्न होकर उन्हे आभूषण भेट दिये ।

इसी समय एक दुखद घटना हुई ।

उसी समय एक महाबलवान असुर धूमकेतुका अग्निके समान प्रज्वलित विमान रुक्मणीके मन्दिर पर अटका । कुअवधिसे उसने रुक्मणीके पुत्रको अपना शत्रु समझा । क्रुद्ध होकर अग्निके समान लाल आँखे करके विमानसे नीचे उतर कर उसने प्रच्छन्न रूपमे रुक्मणीके प्रसूतिगृह मे प्रवेश किया । नवजात शिशुको देखते ही उसकी पूर्व वैर-रूपी अग्नि भडक उठी । यद्यपि रुक्मणीके महलकी बडी सुरक्षा थी, कोई वहाँ पैर भी न मार सकता था, पर उस असुरने अपनी मायासे रुक्मणीको निद्रा मग्न कर दिया और बालकको वहाँसे उठा लिया । वह बालक अपने पुण्यके भार से पर्वत समान था, परन्तु वह मलिन बुद्धि असुर उसे लेकर आकाश मे चल दिया । ऊपर जाकर उसने मनमे सोचा कि यह मेरा शत्रु स्त्रीको हरनेवाला है । इसे मै या तो हाथोसे मसलकर मार दू या नाखूनोसे चीर-फाड कर पक्षियोके खानेको छोड दू या इसे मगरमच्छोसे भरे समुद्रमे डाल दूँ । फिर उसने सोचा कि यह तो तुरन्त का जन्मा मासका पिण्ड है, इसको मारनेसे क्या लाभ ? यह तो बिना रक्षा, देख-भाल अपने आप ही मर जायेगा । फिर वह असुर आकाशसे नीचे उतर

कर एक बडी भारी शिलाके नीचे बालकको दबाकर स्वय अदृश्य हो गया ।

उसी समय मेघकूट नगरका अधिपति कालसम्वर विद्याधर अपनी कनकमाला पत्नी सहित विमानमें बैठा वहाँसे गुजर रहा था। बालकके पुण्यसे उसका विमान वही अटक गया। तब उसने एक शिलाको हिलते देखा। विद्याधरने अपने विद्याबलसे उस शिलाको उठाया, तो उसे वहाँ एक अखण्डित अग, स्वर्ण समान प्रभावान और साक्षात कामदेव सा बालक दिखाई दिया। उस बालकको वहाँसे उठाकर अपनी पत्नी कनकमालाको देनेको तैयार हो गया।

कालसम्वर विद्याधरने अपनी रानी कनकमाला से कहा, "हे रानी! तेरे पुत्र नही है, तू इसे ले ले।" पहले तो कनकमालाने शिशुको लेने के लिए हाथ फैलाये, परन्तु किसी विचारके आनेसे उस दीर्घ-दर्शनी गम्भीर विचारवाली विद्याधरीने अपने हाथ खीच लिये। तब राजाने उसे कहा, "हे प्रिये! ऐसे सुन्दर बालकको तू क्यो ग्रहण नही करती?" तब इस पर रानीने उत्तर दिया, "हे नाथ! आपके पाच सौ पुत्र है और उनके ननसालवाले बडे राजा है। यह बालक हमे जगलमे पडा पाया है, जिसका न कुल मालूम, न माता-पिताका नाम मालूम। उन पुत्रोके सामने इसे कौन गिनतीमे लायेगा? यह मारा-मारा फिरेगा और हर कोई इसको सिरमे चाटे मारेगा। मुझसे यह देखा न जायेगा। उस क्लेशसे तो मै अपुत्रवती ही भली।"

रानीके ये वचन सुन कर विद्याधर कालसम्वरने धैर्य बधाते हुए रानीके कानोके कर्णपत्रपर यह लिखा, कि मेरे जीवनकालमे यह बालक युवराज रहेगा और मेरे पश्चात् राजा होगा। फिर उसने उस पत्रको पट्टके साथ बालकके बाध दिया। तब कनकमालाने उस बालकको छातीसे लगा लिया। रानी कनकमाला राज विद्यामे बड़ी निपुण थी।

इसके पश्चात् राजा कालसम्वर और रानी कनकमाला पुत्र सहित मेघकूट नगर गये। उस समय वह बालक कुल एक दिन का था और उन्हे जब रातके समय पाया था, तब वहा और कोई न था। नगर मे जाकर राजाने कहा कि रानीको गूढ गर्भ था, किसीको उसके गर्भकी बात मालूम न थी। उसने मार्ग मे इस बालकको जन्म दिया। इस बालकके जन्मके उपलक्षमे नगर भरमे बड़ा उत्सव मनाया गया।

तब इस बालक का नाम प्रद्युम्न कुमार रखा गया, क्योकि इसकी काति स्वर्गकी चमकको जीतने वाली थी और प्रद्युम्न स्वर्ग को कहते है। बडे लाड चाव और दुलार से प्रद्युम्न कुमारका पालन-पोषण होने लगा।

कुछ देर पश्चात् जब रुक्मणी जागी और उसने अपने बालकको अपने पास न पाया, तो उसने अपनी धायको बालकको ढूंढनेके लिए कहा। सारे महलमे बच्चेकी तलाश की गई, पर वह कही भी न मिला। पुत्रके न मिलने पर रुक्मणीके शोककी सीमा न रही। वह विलाप कर-करके कहने लगी, 'हाय पुत्र, तुझे किस बैरी ने हर लिया। मेरे पूर्वोपार्जित किसी पुण्य ने मुझे पुत्र रत्न दिया, पर परभव में मैंने किसी स्त्री के पुत्र को हरा होगा, जिसका यह फल मुझे मिला।" रुक्मणी के विलापको सुनकर सबको करुणा पैदा हुई।

रुक्मणीके महाविलापको सुनकर कृष्ण, बलभद्र, दूसरे कुटुम्बीजन और सभी रानिया वहां आ गईं। कृष्णने अपने भुजबल और सावधानी की निदा की, उन्हे धिक्कारा। तब कृष्णने कहा, "जगतमें दैव और पुरुषार्थ दोनो पदार्थोंमे दैव ही प्रबल है। जो पुरुषार्थका गर्व करे, उसे धिक्कार है। जो पुरुषार्थ दैवसे प्रबल होता, तो मुझ नगी तलवार समान तेजस्वी कृष्णके पुत्रको कोई शत्रु कैसे ले जाता ?" यह विचार कर के कृष्णने रुक्मणीको धैर्य बंधाते और

आश्वासन देते हुए कहा, "हे प्रिये ! तू शोक मत कर, धैर्य धर। तेरा पुत्र स्वर्गसे आया है और पुण्याधिकारी है। वह अल्पायु नही हो सकता। तुम्हारे सदृश माता और मुझ समान पिताके यहा पुण्य-हीन और अल्पायु पुत्र नही हो सकता। यह कोई भावी ही ऐसी थी, जो ऐसा हुआ। तेरी आखोके तारेको मैं अवश्य लाऊगा। जैसे सूक्ष्म दृष्टिवाले आदमी दूजके चन्द्रमाको आकाश में देख ही लेते है, मै भी उसे देखूंगा।" इस प्रकार वासुदेवने रुक्मणीको धैर्य बधाया। उसका मुंह धुलवाया। अब कृष्ण बालकको तलाश करने का उपाय करने लगे।

उसी समय वहा नारदजी आ पहुचे। रुक्मणीके पुत्रहरणकी बात सुनकर वह क्षणिक शोक कर के नतमुख हो गया। उसने सब यादवोके दग्धकमल सरीखे मुख देख कर कृष्णसे कहा, "हे भाई! तू शोक मत कर, मै तेरे पुत्रका समाचार शीघ्र लाऊगा। मै पूर्व विदेहमे सीमंधर स्वामीसे पूछ कर तेरे पुत्रका समाचार लाऊगा। इस प्रकार बलदेव आदि सब यादवोका धैर्य बाध कर वह शोकाग्निसे दग्ध मुखारविन्दवाली रुक्मणीके पास गया। शोकचित्त रुक्मणी नारदको देखते ही धैर्य कर उठ बैठी और नारदको नमस्कार करके पास आ बैठी। अपने हितैषीको देख कर पुराना पडा हुआ शोक भी नया बन जाता है। इसी कारणसे रुक्मणी नारदको देखते ही फूट-फूट कर विलाप करने लगी। दुख समुद्रसे निकलनेके लिए विवेकी कृष्णप्रिया रुक्मणीको सात्वना देते हुए कहने लगा, "हे पुत्री ! तू शोकको छोड दे। तेरा पुत्र जीवित है और किसी स्थानपर सुखसे है। किसी पूर्वजन्मके बैरीने उसे हरा है। वह महात्मा है, चिरजीवी है। तुम्हारे उदरसे पुण्यहीन बालक जन्म नहीं ले सकता। हे बेटी ! इस ससारमे जीवोके लिए सयोग और वियोग दोनों सुख-दुख के देने वाले होते है। तेरे दुखसे मुझे दुख हुआ है। यह यादवोका बडा कुल है। इस कुलमें ज्ञानवान् व्यक्ति विशेष है और कार्यों के

रूप तथा फल को जानते हैं। इनके कुलमें दुखदायी उत्पन्न नहीं हो सकता। तू जिन-शासनके रहस्यको जानती है, ससारकी झूठी माया को भी भली प्रकार जानती है। यह संसार अपार है, इस लिए शोकातुर न हो। मैं तेरे पुत्रका समाचार शीघ्र लाऊं गा।" इस तरह रुकमणीके धर्मपिता नारद अमृत रूपी वचनोसे उसे सतोष देकर तीर्थंकर सीमंधरके पास आ गये। उन्हे नमस्कार करके नारद प्रवचन सभा मे जा बैठे।

वहा समोसरणमे बहुत ऊ चे कद वाला पद्मरथ चक्रवर्ती अपनेसे छोटे कदके नारदको देखकर चकित हो गया। उसने नारद को हाथोमे उठाकर तीर्थंकर सीमधरसे पूछा, "हे नाथ! यह मनुष्याकार का कौन व किस जातिका जीव है?" भगवान सीमधरने पद्मरथ चक्रवर्तीसे कहा, "यह नारद कृष्णका मित्र है।" तब धर्मचक्रके धारक भगवान सीमधरने चक्रवर्तीको सब कथा सुनाई। और कहा, "हे राजन्! कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको उसके पूर्वजन्मका शत्रु हर कर ले गया। सोलह वर्ष बीतनेपर वह रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि विद्याओंका धारक इतना प्रबल पराक्रमी होगा, कि देव भी उसे न जीत सकेंगे। फिर वह अपने माता-पिता से मिलेगा।"

प्रद्युम्न कुमारका चरित्र और उसके हरणका कारण पूछनेपर सीमधरने नारदके सामने चक्रवर्तीसे कहा, "जम्बूद्वीपमे मगध देशमे शालिग्राम नगरमे सोमदेव ब्राह्मण और उसकी पत्नी अग्निला रहते थे। वह स्त्री अग्निकी दीप्तिके समान पतिके लिए सुखदायी थी। उनके दो पुत्र अग्निभूति और वायुभूति थे।

ये दोनों पुत्र वेद-विद्याओमे प्रवीण थे और उन्होने अपनी विद्या से दूसरे ब्राह्मणोकी कातिको मन्द कर दिया था। वे वेद पाठियोंमें ऐसे थे, जैसे नक्षत्रो मे शुक्र और बृहस्पति होते हैं। वेदाभ्यास से उनको गर्व हो गया। और ये बड़े वाचाल थे। माता-पिताके लाड़-

चावके कारण ये भोग-विलास में तत्पर रहते थे। परलोककी चर्चा से इन्हें द्वेष ही था। लोक सुधारनेकी बात इन्हे सुहाती ही न थी।

एक दिन श्रुतसागरके पारगामी नन्दी वर्धन मुनि एक उद्यानमे आकर विराजे। उस गावके चारो वर्णोंके स्त्री-पुरुष मुनि वन्दना और दर्शनको जा रहे थे। इन दानो भाइयोने जनताके जानेका कारण पूछा। तब एक ब्राह्मणने वहा मुनिके आने और उनके दर्शनार्थ जनताके जानेका कारण बताया। तब इन दोनो भाइयोंने सोचा, कि क्या हमसे बडा भी कोई विद्वान है ? वे दोनो अभिमानी भाई मुनि का माहात्म्य देखने गये।

वहा मुनि संघके एक मुनि सात्विक गुरुसे परे बैठे थे। उन दोनो विप्रपुत्रोको देखकर उसने मनमें विचार किया, कि ये अभिमानी है और गुरुके पास जाकर विवाद करके सभामें क्षोभ और गडबड करेगे। इस लिए सात्विक मुनिने उन्हे वहाँ ही ठहरानेकी बात सोची।

उस मुनिने उन दोनो विद्वान ब्राह्मणोको बुलाकर अपने पास बिठाया। उनको विवाद करने मे तत्पर और अभिमानी देखकर वहाँ बहुतसे लोगोकी भीड ऐसे लग गई, जैसे वर्षा ऋतुमे घरमें पानी भर आता है।

मुनिने उन ब्राह्मणोसे पूछा, "आप कहां से आये है ?"

"गावसे", उन्होने उत्तर दिया।

मुनिने फिर कहा, "यह तो मैं भी जानता हूं और तुम शालिग्राम गांवके निवासी हो। मै तो यह पूंछना चाहता हूं, कि इस संसारमें भ्रमण करते-करते तुम कौनसी गतिसें आये हों ?" ब्राह्मणोंने कहा, "यह ज्ञान हमें तो क्या किसी को भी नहीं है।"

तब उस मुनिने उन्हे बताया, "पहले जन्ममे तुम दूर गांव के निकट श्याल थे। परभवमें भी तुम में प्रीति थी। इस गांवमे एक प्रवरक नामक किसान ब्राह्मण रहता था। एक बार सात दिन तक वर्षा हुई, तेज वायु चली और बिजलियां गिरी। ठण्डसे उस ब्राह्मण का शरीर कापने लगा। तब उसने एक बडके वृक्षके नीचे आश्रय लिया। वर्षासे ब्राह्मणके जूते तथा कपडे आदि खूब भीग गये। दोनों श्यालोने क्षुधा पीडाके कारण जो मिला वही खा लिया। इससे उनके पेटमे वायुशूल का ऐसा दर्द उठा, कि उनसे सहा ही नही गया और वे मर गये। वे मर कर मनुष्य योनि मे जन्मे। तुम सोम देव ब्राह्मणकी अग्निला स्त्रीके अग्निभूति और वायुभूति पुत्र हुए और तुम्हे कुलका घमण्ड है। यह कुलमद झूठा है। प्राणियोके पापके उदयसे दुर्गति और पुण्यके उदयसे सद्गति प्राप्त होती है। इसलिए कुल या जातिका मद क्यो ? गर्व करना वृथा है। जब वह किसान ब्राह्मण खेत मे आया, उसने मरे हुए श्याल देखे और उनकी खालोकी बाथडिया थैले बनवाये। आज भी वे दोनो बाथ-ड़ियाँ उसके घरमे है।

उन ब्राह्मण विद्वानोने मुनिसे पूछा, "महाराज ! फिर क्या हुआ ?" मुनिने उत्तर दिया, "वह प्रवरक ब्राह्मण मर कर अपने बेटेका बेटा हुआ। उसे जाति स्मरण हो गया और अपने पिछले जन्मकी बाते याद करते ही गूगा हो गया। वह अपने भाइयो मे बैठा अब मेरी ओर देख रहा है।"

इतना कहकर मुनिने उस गूगे आदमीको अपने पास बुलाया और कहा, "हे भाई! तू प्रवरक ब्राह्मण है और बेटे का बेटा हुआ है। अब तू शोक को छोड दे और गूगापन भी तज कर अमृत वचन बोल। इस ससारमे यह जीव नटकी तरह नाच नाचता है। वह स्वामीसे सेवक और सेवक से स्वामी होता है। पिता से पुत्र और पुत्र से पिता बनता है और पत्नीसे माता। संसारका स्वरूप ही उलट-फेर रूप है।

जैसे अरहटमे ऊपर की घड़िया नीचे और नीचे की घडिया ऊपर हो जाती है, और भरी घडिया खाली हो जाती है और खाली घडिया भर जाती है, इस प्रकार ऊपर नीचे होता रहता है। यह जीव अनादि काल से ससार मे भ्रमण कर रहा है। इसलिए हे पुत्र ! तू ससार के असार और महाभयकर रूपको समझ कर सार पदार्थ का सग्रह कर। ससारमे दया धर्म मूल वाले पच महाव्रत—अहिसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय—ही सार है।" इस प्रकार उस सात्विक मुनिने प्रवरक नामक किसान ब्राह्मणके जीवको समझाया। इस पर वह ब्राह्मण मुनिकी प्रदक्षिणा करके उसके पाव पडा। उसने मुनिको नमस्कार करके गद्गद् वाणीसे कहा, "हे ईश्वर ! आप सर्वज्ञ तुल्य ससारकी वस्तुओका स्वरूप प्रत्यक्ष देखते हो। तीन लोककी रचना भी आपसे छिपी नही है। हे गुरु ! अब तक मेरा मन अज्ञान के पर्दे से ढका हुआ था। आपने ज्ञानके अजनकी सलाई-से उसे दूर कर दिया है। आपने मुझे अंधकारसे निकाल कर प्रकाश-मे लाकर मुक्तिमार्ग दिखाया है। आप प्रसन्न हो मुझे मुनिदीक्षा दो ?" यह कहकर वह प्रवरक किसान ब्राह्मण मुनि हो गया और दूसरे कई आदमियोने भी मुनि तथा श्रावकके व्रत-नियम लिये।

यह सब देख-सुनकर वे दोनो भाई अग्निभूति और वायुभूति घर गये। इनके माता-पिताने इनकी बड़ी निन्दा की। रातके समय वे दोनो सात्विक मुनिको मारने गये। वह मुनि एकान्तमे ध्यान मग्न खडा था। उन्होने मुनिको मारने के लिए खडग चलाई, पर वन के अधिष्ठाता यक्ष देवने उनसे मुनि की रक्षा की और उन दोनों भाइयों को वही कील दिया। प्रभात होने पर जिसने इन्हे देखा, उसने इनकी निन्दा की, धिक्कारा। स्वय इनको भी अपने काम पर लज्जा आई। इन्होने मनमे सोचा, कि हमने प्रभावशाली मुनिके प्रति विनयाचार को उलघा और फल स्वरूप हम कीले गये। उन्होने मनमें सोचा, कि यदि अब हम इस बधनसे छूटे, तो जिनधर्मका आराधन करें।

जब इन दोनों भाइयोके दुष्कर्म और कीले जानेका समाचार इनके मां-बापने सुना, तो वे मुनिके पांव पड़े और उन्होंने उनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया। मुनि तो महा दयावान थे, ध्यान मग्न बैठे थे। मुनिने यक्षसे कह कर उन दोनो ब्राह्मण पुत्रोके बधन खुलवाये। फिर इन दोनों भाइयोने गृहस्थ धर्मका रूप मुनिसे सुनकर गृहस्थके अणुव्रत ग्रहण किये और मरनेके पश्चात् प्रथम स्वर्गलोक गये।

पर इनके माता-पिता अश्रद्धापूर्वक मरनेके कारण कुगतिको गये।

वे दोनो भाई स्वर्गलोकके सुख भोगकर अयोध्यापुरीमे समुद्रदत्त सेठकी धारणी नामक सेठानीके यहाँ पूर्णभद्र और मणिभद्र दो पुत्र हुए और जैन धर्मावलम्बी हुए।

एक दिन ये दोनो भाई रथ पर सवार होकर मुनिदर्शनको जा रहे थे। मार्गमे एक चाण्डाल और कुतियाको देखकर इनके मनमे उनके प्रति अति स्नेह पैदा हुआ। तब इन्होंने गुरुसे इस अनुरागका कारण पूछा। मुनिने उन्हे बताया कि ब्राह्मण जन्ममे ये उनके माता-पिता थे, पर पाप कर्मके फलस्वरूप नरकमे गये। वहाँके दुख भोग कर ये चाण्डाल और कुतिया हुए है।

श्री गुरुसे यह बात सुनकर वे दोनो भाई पूर्णभद्र और मणिभद्र उस चाण्डाल और कुतियाके पास गये और उन्हें उनके पूर्व जन्मकी बात कहकर धर्मोपदेश दिया। उस धर्मोपदेशसे उन्हे शान्ति प्राप्त हुई। उस समय चाण्डालकी आयु एक मास मात्र शेष थी। इसलिए उसने श्रावकके व्रत लेकर सब प्रकार के आहारका त्याग करके समाधि मरण किया और नन्दीश्वर द्वीपका अधिष्ठाता देव जन्मा। इस प्रकार उसने चाण्डालके शरीरसे देव योनि पाई। उस कुतियाने भी श्रावकके व्रत ग्रहण किये, समाधि मरण किया और फलस्वरूप अयोध्या के राजाके घर राजकुमारी हुई। जब यह नवयुवती विवाह योग्य

हुई, तो उसके स्वयम्वरकी तैयारी की गई। इसका नाम अग्नि-ज्वाला था। स्वयम्वर-मण्डप सजाया गया और उसमें देश-देशके बहुतसे नृप आदि एकत्रित हुए। स्वयम्वर विजेता बननेकी इच्छासे सम्मिलत हुए। जब अग्निज्वाला वरमाला हाथमें लेकर नवयुवकोंको देख रही थी, तब वहाँ पर एक देव आ निकला। उसने इस नवयुवती-के कानमे विवाहसे विरक्ति लानेकी बात कही, उसे धिक्कारा। तभी इस राजकुमारीने वरमाला फेंक दी, ग्राभूपण उतार दिये और ससारको असार समभकर साध्वी बन गई। अब उसके शरीर पर एक सफेद साडी थी।

ये दोनो भाई पूर्णभद्र और मणिभद्र श्रावकके व्रत लेकर समा-धिमरण करके स्वर्गमे देव हुए। वहाँसे ये अयोध्याके राजा हेमनाथ-की धरावती रानीसे मधु और कैटभ पुत्र जन्मे। जब ये राजकुमार बडे हुए, तब राजा हेमनाथने बडे राजकुमार मधुको राज सौप दिया, कैटभको युवराज बना दिया और स्वय मुनि दीक्षा ले ली।

दोनो भाई मधु और कैटभ सुखसे राज करने लगे। इसी समय एक पहाड़ी राजा भीमने राजा मधुकी आज्ञाका उल्लघन किया और इसके राज्यमे गडबड करने लगा। राजा मधु अपनी सेना लेकर उसे दबाने चला। मार्गमे राजा मधुने अपने मित्र और भक्त राजा वीरसेनके नगर वटपुरमें विश्रामके लिए डेरे डाल दिये। राजा वीरसेनने उनका राज्योचित आदर-सम्मान और आतिथ्य किया।

वहाँ राजा वीरसेनकी रानी चन्द्राभाने अपने रूप और मधुर भाषण-से राजा मधुके मनको जीत लिया। यद्यपि राजा मधु नीति और धर्म शास्त्रोका जाननेवाला था, पर वह अपने मनको न रोक सका, वह मन्द बुद्धि हो गया। तब प्रधान मत्रीने राजाको सलाह दी, कि इस समय हमें राजा भीमको वशमे करना है और उपद्रव न उठाओ।

राजाने मंत्रीकी बात मान ली और राजा भीमको पराजित करके अयोध्या वापस आ गया।

पर राजा मधुका मन तो रानी चन्द्राभापर आसक्त था। उसने उस रानीको प्राप्त करनेके लिए वसन्तोत्सवका प्रपच रचा और सब राजाओंको उसमे आनेका निमत्रण दिया। राजा वीरसेन अपनी रानी चन्द्राभा सहित उत्सवमे सम्मिलित हुआ। दूसरे राजाओंको आदर-मान-उपहार आदिके साथ विदा किया। राजा वीरसेनको भी अधिक आदर-मानके साथ विदाकर दिया गया। पर रानीको यह कहकर रोक लिया कि उसके योग्य वस्त्राभूषण थोडे दिनोमे बनेगे। वीरसेन भोला राजा था, राजा मधुके धोकेमे आ गया। फिर राजा मधुने रानी चन्द्राभाको सब रानियोमें पटरानी बनाकर अपने महलमे रख लिया।

राजा वीरसेन अपनी पत्नीके वियोगमे पागल सा होकर चन्द्राभा चन्द्राभा पुकारता घूमता-घूमता अयोध्या आ गया। रानी चन्द्राभाने अपने पति वीरसेनको महलके झरोखेमे देख लिया। उसने राजा मधुको भी अपने पूर्व पतिको विलाप करते दिखाया। राजाने कोई उत्तर न दिया।

इसी समय नगरके कोतवालने किसी परनारीको हरण करने-वाले एक अपराधीको राजाके सामने न्यायके लिए पेश किया। राजा मधुने उस अपराधीको हाथ-पाव और सिर काटनेके दण्डोमे से कोई दण्ड देनेको कहा। रानी चन्द्राभाने राजासे पूछा, "हे राजन्! यह दण्ड प्रजाके लिए ही है या राजाके लिए भी है ?" "सबके लिए" राजाने उत्तर दिया।

इस उत्तरको सुनकर रानी नीचे मुह करके मुस्करा दी, मानो वह कह रही थी, "हे राजन्! आप भी परदारारत अपराधी व पापी हो। दण्डके योग्य हो।"

रानीके प्रश्न कटाक्षने राजा मधुके अतरगकी आँखे खोल दी । राजा मनमे समस्त बात समझ कर ऐसे मुरझा गया जैसे धूपसे जला हुआ कमल । राजाने इसे अपने कल्याणकी बात समझ कर रानी चन्द्राभाका उपकार माना । वह ससारसे विरक्त हो गया ।

उसी समय अयोध्यामे मुनि विमल वाहन पधारे । राजा मधु और उसका छोटा भाई कैटभ मुनिसे धर्म श्रवण कर दीक्षा ले मुनि बन गये । रानी चन्द्राभा भी आर्यिका बन गयी । नगरके और बहुत से स्त्री-पुरुषोने भी उनका अनुसरण कर दीक्षा ले ली ।

राजाका पुत्र माधव सिहासन पर बैठकर राजकार्यका सचालन करने लगा ।

मधु और कैटभ मुनि बन कर महाव्रतोका पालन करने लगे, वे कठोर-से-कठोर तप, उपवास करने लगे । वे ग्रीष्म ऋतुमे तपते पहाडो पर तप करते, वर्षामे वृक्षोके नीचे ध्यान करते और शीत-कालमे वे नदी या सरोवरके किनारे ठण्डी-ठण्डी पवनोके बीच तप करते । तपस्वियोमे ये दोनो मुनि आदर्श उदाहरण बन गये । ये तीर्थराज सम्मेद शिखरसे देवलोक गये ।

स्वर्गसे मधुका जीव तो श्री कृष्णकी रानी रुक्मणीकी कूखसे प्रद्युम्न पैदा हुआ और कैटभ श्री कृष्णकी दूसरी रानी जाववतीके सम्बुकुमार पुत्र होगा और वह वटपुरका राजा वीरसेन रानी चन्द्राभाके विरहके सतापमे दुर्विचारोके साथ मर कर कई योनियोमे भ्रमण करके धूमकेतु नामका असुर बना और अपने पूर्व जन्मके वैरी राजा मधूके जीव प्रद्युम्नको जन्मते ही उठा कर ले गया । यह वैरभाव पापको बढाने वाला है । इसी वैरके कारण प्रद्युम्न हरा गया । पर उसने मुनि बनकर जो तप किया था, उसके प्रतापसे प्रद्युम्नकी रक्षा मेघकूटके विद्याधर कालसम्वरने की ।"

ये सब बाते सीमधर जिनेन्द्रने पद्मरथ चक्रवर्तीको बतायीं। नारद भी सब बाते सुननेके पश्चात् सीमन्धर स्वामीको प्रणाम करके प्रसन्न-चित्त मेघकूट नगर अपनी आँखोसे प्रद्युम्न कुमारकी दशा देखने गया। कालसम्वर विद्याधरने नारदजीका बडा सम्मान किया। वहाँसे नारद रनवासमे विद्याधरी कनकमालाके पास गया। उसने बडी विनयसे नारदको नमस्कार किया। नारद प्रद्युम्न कुमारको सकुशल देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

वहाँसे नारद तुरन्त आकाशमार्गसे द्वारिका लौट आया और उसने सीमन्धर स्वामीसे सुनी समस्त बात तथा मेघकूटमे अपनी आँखो देखे प्रद्युम्नके सब वृत्तान्तको कृष्ण और दूसरे यादवो-को सुनाया।

प्रद्युम्नकी सुरक्षाका समाचार सुनकर सबको अति हर्ष हुआ। फिर प्रफुल्लित मुखकमल नारद रुक्मणीके पास जाकर कहने लगा, "हे रुक्मणी ! तेरा पुत्र मेघकूट नगरमे कालसम्वर विद्याधर और उसकी रानी कनकमालाके यहाँ सकुशल है। वह सोलह वर्षकी आयुमे प्रज्ञप्ति विद्याको प्राप्त कर यहाँ आयेगा। जिस दिन आयेगा, उस दिन तेरे नगरके उपवनोमे बिना समय मोर नाचेंगे, ध्वनि करेंगे, सूखे तालाब जलसे भर जायेंगे और तेरा शोक दूर करनेके लिए अशोक वृक्ष प्रफुल्लित हो जायेंगे, इतना ही नही, गूँगे वाचाल हो जायेंगे और कुबडोका कुबडापन जाता रहेगा। तब तुम अपने प्रिय पुत्रका आगमन समझना। ये सीमन्धर स्वामीके वचन है, अन्यथा नही हो सकते।"

नारदके मुखसे अपने पुत्रकी इतनी बातें सुनकर, उसकी जानमे जान आई और स्तनोमे दूध भर आया।

रुक्मणीने नारदका आभार मानते हुए कहा, "हे भगवन् ! यह काम आप जैसा भाई ही कर सकता है, दूसरा नही। मै तो छोटीसी बालिका ही हूँ। मै पुत्रके शोककी आगमे जल रही थी। मेरा कोई सहारा नही था। परन्तु आपने हस्तावलम्ब देकर मुझे थामा है। जो कुछ सीमन्धर स्वामीने कहा ह, वह सत्य ही है। मुझे जीवित पुत्रके दर्शन अवश्य होगे। मै जिनेश्वरके वाक्यपर ही जीवित हूँ। आप इच्छानुसार जहाँ चाहो जा सकते हो, पर शीघ्र दर्शन देना।" इस तरह रुक्मणीने नारदसे मीठे वचन कहकर प्रणाम किया। नारदने भी उसे आशीर्वाद दिया और चला गया।

: २७

कृष्णके और विवाह

कृष्णके सुभद्रा और रुक्मणीके साथ विवाहोका वर्णन पीछे दिया जा चुका है । यहाँ उसके और विवाहोंकी बात बताई जायेगी ।

एक दिन नारद कृष्णके पास आकर पारस्परिक क्षेम-कुशल पूछनेके पश्चात् कहने लगा, "हे कृष्ण ! विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे जम्बुपुर नगरका राजा जाम्बूब विद्याधर है, जिसकी रानी शिवचद्रा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल शरीरवाली है । उसके विश्वक श्रेणी पुत्र और जाम्ववती राजकुमारी है। उस राजकुमारीको मैने उसको सखियोके साथ गगामे स्नान करनेके लिए प्रवेश करती देखी । वह रूप-सौन्दर्यमे ऐसी सोहती थी, मानों तारों से युक्त चन्द्रकाति ही शोभायमान हो ।"

इतना सुनते ही कृष्ण जाम्ववतीको प्राप्त करनेको तैयार हो गया । वह अपने बडे भाई अनावृष्टिके साथ गगा पर गया और ज्यो ही कृष्ण और जाम्ववतीने एक दूसरेको देखा, उनकी आँखे चार हुई, आपसमे उनका प्रेम हो गया । कृष्णने उसे अपनी दोनो भुजाओमे उठा लिया । जाम्ववतीको उठाते ही उसकी सखियोने विलाप करना आरम्भ कर दिया । उसका पिता राजा जाम्बूब तुरन्त अपनी सेना तैयार करके कृष्णसे लडने और अपनी पुत्रीको छुड़ाने आ गया । पर अनावृष्टिने लडाईमे उसे पराजित कर दिया और बाध कर लानेके पश्चात् कृष्णको सौप दिया । तब उस राजाको विरक्ति हो गई ।

और उससे अपना राज्य अपने पुत्र विश्वकसेनको सौप कर स्वय मुनि दीक्षा ले ली। विश्वकसेनने अपनी बहन जाम्ववती का विवाह विधिपूर्वक कृष्णसे कर दिया। द्वारिकामे रुक्मणीके महलके निकट ही जाम्बवतीको निवास स्थान दिया। और उन दोनोंमे गहरा प्रेम हो गया।

इसके पश्चात् कृष्णने सिहल द्वीपके राजा श्लक्षणरोमसे लड़ कर उसकी राजकुमारी लक्षणाको हर कर लाकर विवाह किया। कृष्णने उसे जाम्ववतीके निकट भवन दिया।

फिर राष्ट्रवर्धन देशकी अजासुरी नगरीके राजा सुराष्ट्रकी विनया-रानी, महापराक्रमी तथा महाबुद्धिमान नेमित पुत्र और सुसीमा राजकुमारी थी। सुसीमा जैसी वनिता वसुधापर और कोई न थी। राजा सुराष्ट्रने पुत्रको युवराज पद दे दिया। एक दिन राजकुमार नेमित कुमार अपनी बहन सुसीमाके साथ समुद्रपर स्नान करने गये। नारदने कृष्णको बताया कि सुसीमा रूप-गुणकी खान है। कृष्ण अपनी सेना लेकर सुसीमा को लेने गये। नेमितको लडाईमे पराजित करके कृष्ण सुसीमाको द्वारिका ले आया। कृष्णने सुसीमाको लक्षणाके महलके समीप निवास दिया।

सिंधु देशके इस्वाकु कुलके राजा मेरूकी पुत्री गौरी थी। वह साक्षात् गौरी यानी पार्वती समान और मूर्तिवती विद्या ही थी। कृष्णने राजा मेरूके पास अपना राजदूत भेजा। उसे किसी निमित्त ज्ञानीने पहले ही बता रखा था, कि उसकी बेटी गौरीका पति कृष्ण होगा। मेरूने सहर्ष अपनी पुत्री गौरी श्री कृष्णसे विवाह दी।

अरिष्टपुरका राजा हिरण्यनाभि बलभद्रका मामा था। उसकी रानीका नाम श्रीकान्ता और पुत्रीका नाम पद्मावती था। वह साक्षात् लक्ष्मीके सदृश थी। उसके स्वयम्वरका समाचार सुनकर कृष्ण, बलभद्र और बडा भाई अनावृष्टि वहाँ गये। राजाने उन सब-

का बडा आदर-मान किया। राजकुमारी पद्मावतीने स्वयम्वरमे कृष्णको फूलमाला पहनाई। उनका विवाह हो गया। हिरण्यनाभके बडे भाई रेवतकी चार राजकुमारियो—रेवती, बन्धुवती, सीता और राजीवनेत्रा—की सगाई पहले ही बलभद्रसे हो चुकी थी। इसलिए इस अवसरपर उनके विवाह भी बलभद्रसे कर दिये गये। दोनो बलभद्र और कृष्ण अपनी नववधुओके साथ द्वारिका वापिस आये।

गाधार देशकी पुराकलवती नगरीके राजा इन्द्रगिरि और रानी मेरुमतीकी राजकुमारी गाधारी थी। उसके भाईका नाम हिमगिरि था। उसने अपनी बहनकी सगाई हयपुरके राजा सुमुखसे की थी। नारदने कृष्णको यह सब बात सुनाई। कृष्णने युद्धमे हिमगिरिको पराजित करके गाधारीसे विवाह किया।

ये कृष्णकी आठ पटरानियाँ थी। उसकी बहुत सी रानियाँ और भी थी।

कृष्णने पुण्यसे प्राप्त नारायण पदके भोग रूप फलोको भोगा। उसके राजमे कोई भी पुरुष दुखी नही था। वह धर्मका रक्षक राजनीतिमे प्रवीण और सन्मुख आनेवाले शत्रुओको क्षणमात्र मे तृणके समान उखाड डालनेवाला था।

जिन-धर्मके पालनसे कृष्णके समान मनवाछित सुख प्राप्त होते है।

: २८ :

कौरव, पांडव और द्रौपदी स्वयम्वर

राजा समुद्रविजय आदि दस भाइयोके प्रसिद्ध पाच पाण्डव युधिष्ठर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भानजे थे। राजा श्रेणिकने पाण्डवोका नाम सुनते ही श्री गौतम गणधरसे पूछा, "हे प्रभो ! ये पाण्डव कौन है और किस वशमे पैदा हुए है ?

उत्तरमे गौतम गणधरने पाण्डवोकी उत्पत्ति और उनका नीचे लिखा वृत्तान्त सुनाया

"सोमप्रभ श्रेयासके वशमे राजा कुरू हुए थे। उसके वशमें तीन तीर्थंकर शातिनाथ, कुथुनाथ और अरहनाथ हुए। इस वशके सभी राजा चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके साधक हुए थे। इस वशमे बहुतसे बडे-बडे राजा हुए। कुरूजांगल देशमे हस्तिनापुरमे पृथ्वीके आभूषण प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देवके समय राजा सोमप्रभके पुत्रका नाम जय कुमार था, उन्हे मेघेश्वर भी कहते थे। यह मेघेश्वर भरत चक्रवर्तीका मत्री था। इनके कुरू नामका पुत्र हुआ। राजा कुरूके कुरूचन्द पुत्र हुआ। इस प्रकार प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथसे लेकर बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथके समय तक इस वशमे करोडो राजा महाराजा हुए। बहुतसे राजाओंके पश्चात् चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार कुरूवशमे ही हुए। इसी वशमे राजा विश्वसेन और रानी एराके पचम चक्रवर्ती सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ हुए। इनसे बहुत समय पश्चात् राजा सूर्य और रानी श्रीमतीके यहाँ

भगवान् कुंथुनाथ सतरहवे तीर्थंकर और छठे चक्रवर्ती हुए । इनके पीछे अनेक राजा और हुए । फिर राजा सुदर्शन और रानी मित्राके घरमे अठारहवे तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ सातवे चक्रवर्ती हुए । महापद्म नवे चक्रवर्ती भी इसी वशमे बहुत बादमे हुए ।

अनेक राजाओके पश्चात् राजा धृतराज हुआ, उसकी तीन रानियाँ अबिका, अबालिका और अबा थी । धृतराजकी रानी अबिकासे धृतराष्ट्र पुत्र हुआ, अबालिकासे पाण्डु पुत्र हुआ और अबा से विदुर पुत्र हुआ । ये तीनो पुत्र महाज्ञानवान थे । राजा धृतराजके भाई रुक्मणके यहाँ रानी गगासे भीम पुत्र हुआ ।

राजा धृतराष्ट्रकी रानी गाधारीके दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए जिनमे आपसमे बडा प्रेम था । ये सब भाई शस्त्रविद्यामे प्रवीण थे । राजा पाण्डु की दो रानियाँ कुन्ती और माद्री थी । कुन्तीके कर्ण तो गाधर्व विवाहसे हुआ और फिर युधिष्ठर, भीम और अर्जुन हुए और माद्रीसे दो पुत्र नकुल और सहदेव हुए । ये पाँचो भाई महा जिनधर्मी और पचपरमेष्ठीके दास थे । कुछ समय पश्चात् पाण्डुने मुनि दीक्षा और माद्रीने आर्यिका दीक्षा ले ली और स्वर्ग गये ।

धृतराष्ट्रके सौ पुत्रो और पाण्डुके पाच पुत्रोंमें राज्यके बटवारे-पर विरोध पैदा हो गया । तब भीष्म, विदुर और दुर्योधनके मत्री शकुनिने मध्यस्थ बनकर पाँच पाण्डवों और धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमे आधा-आधा राज्य बाँट दिया ।

परन्तु दुर्योधन आदि सौ भाई इस बटवारेसे असंतुष्ट और अप्रसन्न थे ।

इसी समय जरासिध, दुर्योधन और कर्णमे एकान्तमे बातचीत हुई और इनमें अटूट प्रेम हो गया ।

धनुर्विद्याके प्रसिद्ध आचार्य भार्गवाचार्यके वशमें द्रोणाचार्य बड़े नामी शस्त्रविद्या विशारद थे । ये पांचों पाण्डवो और दुर्योधन आदि सौ भाइयोंको धनुर्वेद समान भावसे सिखाते थे ।

द्रोणाचार्यका नाम सुनते ही राजा श्रेणिक गौतम गणधरसे पूछने लगे, "हे प्रभो ! भार्गवाचार्यके वशज द्रोणाचार्यके वशकी कथा मुझे सुनाओ ।" गौतम गणधरने कहा, "पहले आत्रेय हुए थे। उनका पुत्र और शिष्य कौथुमि था । उसका पुत्र अमरावर्त, उसका सित्व, उसका वामदेव बेटा हुआ । फिर कपिष्ठल जगस्थामा, सरवण और सरासण हुए । सरासणका पुत्र विद्राबण हुआ, जिसका पुत्र द्रोणाचार्य हुआ । द्रोणाचार्यकी अश्विनी रानीसे अश्वस्थामा बडा धनुर्धारी पुत्र था । उसके सामने सिवाय अर्जुनके और कोई नही आ सकता था।"

गौतम गणधरने द्रोणाचार्यका वृत्तान्त सुनानेके पश्चात् फिर पाण्डवोकी बात कहनी आरम्भ करदी । "अर्जुनके प्रताप और धनुविद्या ज्ञानको दुर्योधन आदि सौ भाई सहन न कर सके । पहले राज्य का जो विभाजन और सधि हुई थी, वे उसमे दोष निकालने लगे । उनको यह बात ही सहन न थी, कि आधे राज्यके पाँच पाण्डव मालिक बने और आधेके वे सौ भाई ।

दुर्योधन आदिके मनके असन्तोषकी बात पाण्डवोंने सुन ली । युधिष्ठर तो महावीर था, इसलिए यह सुनकर उसे क्रोध पैदा न हुआ । पर दूसरे चारों छोटे भाई यद्यपि समुद्र समान निर्मल और गम्भीर थे, दुर्योधन आदिके वचन सुनकर उन्हें भी क्षोभ हो गया। सबसे पहले अर्जुनने उठकर कहा कि मैं बाणोंकी वर्षासे शत्रुओंको नष्ट कर दूंगा । तब युधिष्ठरने उसे शांत किया । फिर भीम बड़े अजगरके समान फुंकार कर कहने लगा, "मैं अपनी दृष्टिसे सौ शत्रुओंको भस्म कर दूंगा ।" उसे भी बड़े भाईके वचनोंने मत्रवत्

शांत किया। इसी प्रकार नकुल और सहदेवको भी युधिष्ठरने क्रोध करनेसे रोका। ये सभी चारों भाई युधिष्ठरके लिए प्राण समान थे और वे बडे भाई की आज्ञा मानते थे। वे सब शातिसे घरमे रहने लगे।

धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदि तो बडे कपटी थे। उन्होने उस घरको रातके समय आग लगा दी, जिसमे पाण्डव सो रहे थे। अग्निसे बचनेके लिए पाचो पाण्डव माता कुन्ती समेत सुरंगके मार्गसे निकलकर विदेश चले गये।

छल प्रपचसे पाण्डवोको मारनेके कारण दुर्योधनका बडा अपयश हुआ, हस्तिनापुरकी समस्त प्रजा, स्त्री-पुरुष, उसकी निन्दा करने लगे।

सुरगसे निकलकर इन पाँचो भाइयोने गगा पार करके भेष पलट लिया और पूर्वकी ओर चल पडे। मार्गमे वे कोसिकपुरी पहुँचे, जहाँका राजा वर्ण था। उसकी रानी प्रभावती और पुत्री पुष्पके समान कोमल सुदर्शना थी। इस राजकुमारीने युधिष्ठरके रूप-शौर्यकी प्रशसा पहले सुनी थी। इसलिए उसे युधिष्ठरके प्रति अनुराग था। अब दोनोने एक दूसरेको देखा, तो वे दोनो एक दूसरे पर अनुरक्त हो गये। पर युधिष्ठरने दूरदर्शितासे उसे भविष्यमे विवाहके सकेतसे आश्वासन दिया। सुदर्शना भविष्यमे युधिष्ठर मिलनकी आशा से सखियोमे विनोद करती हुई अपना समय बिताने लगी।

ब्राह्मणोके भेषमे ग्राम-ग्राम नगर-नगर जाते हुए पाँचो राजकुमार सबके मनोको मोह लेते थे और इन्हे रास्ते भर स्वादिष्ट भोजन और सभी सुविधाएँ मिलती रहती थी। इन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ।

आगे इन पाँचो पाण्डवोने ब्राह्मणोंके भेषसे तपस्वियोंका भेष बदल लिया। ये मूलेष्मान्तक तपोवनमे तपस्वियोके अति रमणीक

आश्रममें विश्राम करने लगे। वहाँ आश्रममे कुन्ती और युधिष्ठरका एक तपस्विनीसे अकल्पित और अपूर्व मिलन हुआ। इसका नाम वसन्त सुन्दरी था। वह वसुन्धरपुरके राजा विंध्यसेन और रानी-नर्मदाकी राजकुमारी थी। उसके माता-पिताने राजा युधिष्ठरसे उसका विवाह करनेकी बात सोची थी। पर उनके जल जानेका समाचार सुनकर यह वसन्त सुन्दरी राजकुमारी अपने पूर्वोपार्जित कर्मोंकी निन्दा करती हुई तपस्वियोके आश्रममे इस विचारसे तप करने लगी कि उसके फलस्वरूप जन्मातरमे युधिष्ठर ही उसका पति होगा। अत्यन्त रूप लावण्य वाली यह तपस्वनी पाटवंरकी साडी पहने और सिरपर जटा बढाये, कानो तक फैले विशाल और तीक्ष्ण नेत्रो और लाल फलोसे होठोवाली, चन्द्रमुखी देवताओके मनोको भी हर लेनेवाली थी। सभी तपस्विनियोकी वह पूज्य बनी हुई थी और चन्द्रकला समान निर्मल वह समस्त तपोवनको उज्ज्वल कर रही थी। जब पाण्डव उस आश्रममे पहुँचे तो उस वसन्त सुन्दरी तपस्विनीने उनका समुचित आतिथ्य-सत्कार किया, मधुर वचनोंसे उनके मार्ग यात्राके कष्टोको दूर किया।

ज्योही माता कुन्तीने उसे देखा उसने स्त्री-स्नेह वश वसन्त सुन्दरीसे पूछा, "हे बाले ! हे कमल कोमली ! तूने नवयौवनमे किस कारणसे वैराग्य धारण किया ?" तब उस मृगनयनी मधुर भाषिणी राजपुत्रीने अपने वचनोसे माता कुन्तीका मन हरते हुए अपने पिताके युधिष्ठरके साथ उसका विवाह करनेके विचारको बताया। उसने यह भी बताया कि पाण्डवोके जल जानेके समाचारको सुनकर वह इस जन्ममे युधिष्ठरको पानेकी आशा छोड उसे अगले जन्ममें पति रूपमे प्राप्त करनेकी अभिलाषासे तपस्विनी बन गई। वह कहती चली गई कि उचित तो यह था पतिके अग्निदाहका समाचार सुनते ही वह भी अग्निमें प्रवेश करके प्राण त्याग देती, पर हीन शक्ति होनेके कारण वह ऐसा न कर सकी। माता कुन्तीने उसकी दूर-दर्शिता, विचारशीलता और पतिप्रेमकी सराहना की।

इसी समय युधिष्ठर भी माके पास आकर खड़ा हो गया और मां और राजकन्या तपस्विनीकी बात सुनने लगा। युधिष्ठरने उन दोनोंको धर्मोपदेश देकर शान्त किया और धीरज बधाया। युधिष्ठरके रूप और राजलक्षण आदि देखकर वसन्त सुन्दरीने उन सबको हर प्रकारका सुख दिया। प्रातःकाल पाँचों पाण्डव और कुन्ती आश्रमसे यात्राके लिए चलनेको तैयार हुए। चलते समय युधिष्ठरने वसन्त सुन्दरीसे भविष्यमे मिलनेकी आशा प्रकट की और आगे चल पडे।

वसन्त सुन्दरी श्राविकाके पचाणुव्रत लेकर भविष्यमे पति मिलन की आशासे वही तपोवनमे रहने लगी।

तपोवनसे निकलते ही पाण्डवोने तपस्वी भेष त्यागकर फिर ब्राह्मण भेष बना लिया और इहापुर नगर चले गये।

जब राजा समुद्रविजयने द्वारिकामे यह सुना कि दुर्योधनने माया-चारसे कुन्ती और पाँचो पाण्डवोको अग्निमे जला दिया है और वे मर गये है, तब वह दुर्योधनपर बडा क्रुद्ध हुआ और कौरवोको नष्ट करनेको तैयार हो गया।

इधर इहांपुरमे भीमसेनने एक नर भक्षी राक्षस भृगको मारकर जनताका भय दूर किया और यश प्राप्त किया।

वहाँसे चलकर पाँचो पाण्डव कुन्ती सहित तृश्रृग नगर पहुँचे। वहाँके राजा चडवाहनकी दस सुन्दर कन्याएँ थी। राजाने उन लड़-कियोंका विवाह युधिष्ठरके साथ करनेका विचार किया था। पर जब उसने पाण्डवोंके अग्निमे जल जानेकी बात सुनी। तब उन लडकियोंने श्राविकाके अणुव्रत लिये। उसी नगरके एक बडे धनवान सेठ प्रियमित्रने भी अपनी दो पुत्रियोके विवाह युधिष्ठरके साथ करनेका विचार किया था। पाण्डवोके परलोक सिधारनेका समाचार सुनकर उन दोनो लडकियोने भी श्राविकाके अणुव्रत ले लिये।

फिर वे पाँचो भाई चम्पापुरी गये। वहाँ राजा कर्ण राज करता था। वह दुर्योधन और जरासिंधका मित्र था। उस नगरमे भीमसेनने एक उपद्रवी हाथी को मद-रहित करके प्रजाको उसके उपद्रवोसे मुक्त किया। पर वहाँ भीमने अपने आपको प्रकट नही किया।

इसके पश्चात् पाँचो पाण्डव अपनी माता कुन्ती महित वैदिसि-नगर पहुँचे। वहाँ राजा वृषध्वज राज करता था। उसके द्यसानन्दा बड़ी यशवाली और निर्मल चरित्रकी लड़की थी। भीम उस राजाके घर भिक्षा मागने गया। पर राजाने भीमको महा पुरुष जानकर अपनी पुत्री द्यसानन्दाको ही उसे भिक्षामे देना चाहा। तब भीमने कहा, कि वह स्वतन्त्र नही है। अपनी माता और बडे भाईकी आज्ञा बिना इसे स्वीकार नही कर सकता। उनकी आज्ञा पाकर भीमसेनने द्यसानन्दाका पाणिग्रहण किया।

आगे नर्मदा नदीको पार करके पाण्डव सध्याकार नगरमे पहुँचे। वहाँके राजा सिहघोष की अति सुन्दर पुत्री हृदयसुन्दरी थी। त्रिकू-टाचलके राजा मेघघोषने राजासे हृदयसुन्दरीको विवाह मे मागा, पर राजाने उसकी माग अस्वीकार कर दी। किसी निमित्त ज्ञानीने राजा सिहघोषको बताता कि राजा मेघघोष विध्याचल पर्वतपर गदा नामकी विद्याको साधता है। जो वीर पुरुष राजा मेघघोषको मारेगा, वही हृदयसुन्दरीका पति होगा। भीमुसेनने युद्धमे राजा मेघ-घोषको मार कर गदा और हृदयसुन्दरीको विवाहमे प्राप्त किया।

फिर पाण्डु-पुत्र देश-विदेशमे विहार करते हस्तिनापुर जानेकी इच्छासे मार्गमे देवपुरोके समान माकदी नगरीमे आये। वहाँके राजा का नाम द्रुपद था। उसकी रानी भोगवती, धृष्टद्युम्न आदि पुत्र और पुत्री द्रोपदी थी। द्रोपदीका शरीर रूप लावण्य, सौभाग्य और कलाओसे अलकृत तथा शोभित था। उसके समान और सुन्दरी नहीं थी, और स्त्रियोंमें वह बेमिसाल-अनुपम थी।

सभी राजकुमार इससे विवाह करनेके लिए राजा द्रुपदसे द्रोपदी की याचना करते थे। राजा द्रुपदने किसीकी प्रार्थनाको भग न करने के विचारसे द्रोपदीका स्वयम्वर रचा और सभी राजाओको उसमे निमन्त्रित किया। स्वयम्वरकी शर्त यह थी, कि जो राजकुमार गाडीव धनुषको गोल करके चन्द्रक यत्रको बीधेगा वही द्रोपदीका पति होगा।

द्रौपदीके रूप-सौन्दर्यमे आकृष्ट होकर कर्ण तथा दुर्योधन आदि सभी राजाओका समूह माकदी नगरीमें स्वयम्वरमे भाग लेनेके लिए आये। अर्जुन आदि भी उस स्वयम्वरमे सम्मिलित हुए। द्रोण और दुर्योधन आदि धनुपके समीप आये और आकर उसे देखा। वह देवाधिष्ठित धनुप था, उसे वे चढा भी न सके। तब द्रोपदीके भावी पति अर्जुन उस धनुषके समीप आया और उसने धनुपको ऐसे चढाया जैसे पति पतिव्रता स्त्रीको वशमे कर लेता है, वैसे ही उस धनुषकी फिडचि अर्जुनके वशमे हो गई। फिडचिके चढाने मात्रसे इतने जोरका शब्द हुआ कि कर्ण और दुर्योधनादि के कान बहरे हो गये और वहाँ और कोई आवाज सुनाई न दी। अर्जुनके गाडीव धनुषको चढाते ही द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदिको यह शका हुई कि कहीं यह व्यक्ति अर्जुन ही न हो, मरकर दुबारा न पैदा हुआ हो, क्योकि और किसी धनुषधारीके पास यह विद्या कहाँ? उन्होने उसकी दृष्टि, मुट्ठी और चतुराईकी प्रशसा की। इधर तो यह शका और विचार हो रहा था, उधर वेध-विद्यामे प्रवीण अर्जुनने अपना निशाना लगाकर चन्द्रक यत्रको बीध दिया। निशानेका लगना था, कि द्रोपदोने शीघ्र आकर अपने करकमलोसे इसके सुन्दर कण्ठमे जयमाला डाली। जल्दीबाजीके कारण जयमालाका धागा टूट गया और मालाके पुष्प वायुकी तेजीसे अर्जुनके गलेके साथ दूसरे चारों पाण्डवोपर भी आ पडे। तब किसी विवेकहीन मनुष्यने यह कह दिया, कि द्रोपदीने तो इन पाँचों राजकुमारोंको वरा है। महासती

द्रौपदी अर्जुनको वर कर उसके पास खडी लताके समान लग रही थी । कुशल अर्जुन तभी नूपुर पहनी उस पार्वतीको राजाओके बीचसे अपनी माता कुन्तीके पास ले जाने लगा ।

द्रौपदीके जाते ही स्वयम्वरमे आमंत्रित कुछ राजा लडनेको तैयार हो गये, पर नीति चतुर राजा द्रुपदने सबको रोका, मना किया, पर वे राजा अपने बलके नशेमे चूर थे और न माने । वे तब अर्जुनका पीछा करने लगे । भीम अर्जुन और धृष्टद्युम्न तीनों धनुषधारियोंने उन्हे आगे न आने दिया, वे पीछे भी न जा सके । धृष्टद्युम्न अर्जुनके साथ रथमे सवार था । तब उसने अर्जुनसे निवेदन किया कि वह भीष्म और द्रोणको अपने व्यक्तित्वसे परिचित कराये । तब अर्जुनने अपने नामका पत्र लिखकर बाणके साथ द्रोणके पास फेंका और वह पत्र द्रोणकी गोदमे पडा । इस परिचय-पत्रको पढ कर द्रोण अश्वत्थामा, भीष्म और विदुरको बडा हर्ष हुआ । सबका यह मिलन कितना आह्लादकारी था । उन्होंने दुर्योधनको भी वहाँ बुलाया । सभी कौरव-पाण्डव अर्जुन और द्रोपदीके विवाहमे सम्मिलित हुए । विवाहके बाद दुर्योधन आदि भी पाँचो पाण्डवों, कुन्ती और द्रौपदी आदिको लेकर हस्तिनापुर आये । आधा राज पाण्डवोको दे दिया ।

इसके पश्चात् युधिष्ठरकी सभी मगेतरोंका युधिष्ठरसे और भीमसेनकी मगेतर राजा वृषध्वजकी पुत्री द्यमानन्दाको बुला कर उन्हे विवाह दिया गया । द्रौपदी भी अर्जुनके साथ सुखपूर्वक रहने लगी । वह युधिष्ठर, भीम और अर्जुनके दोनों बडे भाइयोके लिए पुत्रवधु तुल्य थी और नकुल और सहदेव अर्जुनके दोनो छोटे भाइयोंकी भाभी इनके लिए माता सदृश थी ।

इन पाँचो पाण्डवो और द्रौपदीके विरुद्ध विवेकहीन मनुष्योका यह कथन कि द्रौपदीके पाँच पति थे, बड़ा ही पाप पूर्ण है । दूसरेके

सच्चे दोषको भी प्रकट करना पापका कारण है, पर जो दूसरेमें वृथा झूठा दोष लगाता है, उसके पापको क्या कहा जाये ? जो आदमी छोटे-से-छोटे मनुष्यके सच्चे दोषको भी कहता है, वह कुगति मे जाता है, ससारमे उसकी निन्दा होती है । सज्जन पुरुष परदोष को नही कहते । स्त्रीकी सच्ची निन्दा करने की अपेक्षा सत्पुरुष मौन रहते है और दूसरोको मना करते है । आदमीका कर्तव्य है कि वह निन्दा सूचक असत्य वचनोको छोडे और निष्पाप तथा दयामयी जो सत्य वचन है उन्हे बोले ।

: २६ :

कीचक निर्वाण

धीर-वीर पाण्डवोंके हस्तिनापुरमे रहते समय उनकी उत्कृष्ट विभूति और यशको देखकर सौ कौरव पहलेके समान उनसे फिर ईर्ष्या करने लगे और वचन मर्यादा तथा राज विभाजनके इकरारसे विचलित हो गये। मन्त्री शकुनिकी सम्मतिसे दुर्योधनने कपटके पासोसे भोले-भाले युधिष्ठरको जुएमे जीत लिया। दुर्योधनने हारे हुए युधिष्ठरसे कहा, "हे युधिष्ठर! तुम सत्यवादी हो, प्रतिज्ञाको पूरा करनेवाले हो, इसलिए यहाँसे चले जाओ और बारह वर्ष तक छिप कर ऐसी जगह रहो, जहाँ तुम्हारा नाम तक किसीको मालूम न हो।"

दुर्योधनके इस वचनसे यद्यपि भीमसेन आदि छोटे भाइयोंको बड़ा क्षोभ हुआ, पर युधिष्ठरने उन्हे शान्त कर दिया। वे सब राज-पाट छोड कर हस्तिनापुरसे बारह वर्षके लिए चल पड़े। जैसे चादनी चन्द्रमाके पीछे-पीछे चलती है, वैसे ही प्रेम और हर्षके साथ द्रौपदी भी अर्जुनके पीछे-पीछे अज्ञातवास के लिए चल पड़ी।

पाँचों पाण्डव कृष्णके यहाँ आश्रय पानेके लिए चल दिये। चलते-चलते वे कालान्जना नामक बनीमें पहुँचे। उस समय वहाँ प्रकीर्णक विद्याधरका पुत्र असुरोद्वीप नगरसे सुतार विद्याधर अपनी पत्नी कुसुमावलीके साथ बनीमें क्रीडा कर रहा था। पति-पत्नीने भीलोका भेष बनाया हुआ था। अर्जुन और उस विद्याधरमें धनुर्युद्ध होने

लगा और बाणोसे सब दिशाएँ आच्छादित हो गयी । फिर दोनोमे बाहुयुद्ध होने लगा और अर्जुनने उस विद्याधर की छातीमे ऐसे जोर-से मुक्का मारा कि वह जमीनपर गिर पडा । तब उसकी स्त्री कुसुमावलीने पतिके प्राणकी भीख मागी और दयावान अर्जुनने उसे क्षमा कर दिया । तब वह विद्याधर अर्जुनको नमस्कार करके विजयार्द्धगिरिकी दक्षिण श्रेणीमे चला गया ।

चलते-चलते ये पाण्डव मेघदल नगर पहुँचे । वहाँके राजा सिह-की रानी कनकमेखला थी और राजकुमारी कनकावती थी, जो महासुन्दर थी । उसी नगरके मेघ वणिकको अलका पत्नी थी । उनके लक्ष्मीकान्ता पुत्री थी । किसी निमित्तज्ञानीके कहनेके अनुसार उन दोनो पुत्रियोकी माताओने उन्हे भीमसेनको देने का निश्चय किया । भीमसेन भेष बदलकर उनके यहाँ भिक्षा मागने गया और भिक्षामे पुण्यके योगसे ये दोनो कन्याएँ मिली ।

इसके पश्चात् ये सब पाण्डव भाई कौशल देश गये । कुछ समय वहाँ रहकर वे रामगिरि पर्वत गये, जहाँ उन्होने राम लक्ष्मण द्वारा निर्मित जिन-चैत्यालयोके दर्शन किये ।

इस प्रकार स्वेच्छासे इन पाण्डवोने छिपकर ग्यारह वर्ष व्यतीत किये । और किसीको इनके बारेमे पता न चला ।

विराट नगरका राजा विराट और उसकी रानी सुदर्शना थी । ये पाण्डव वहाँ पहुँच गये । पाण्डव और द्रोपदी अपना भेष बदल कर विराट नगरमे रहने लगे । वहाँ उनका बड़ा सम्मान हुआ । युधिष्ठर तो पण्डित बनकर रहने लगा । भीमसेन रसोइया बन गया । अर्जुन नृत्यकाली, नकुल सहदेव सलोहतरी यानी साइस और द्रोपदी मालिन बन कर वहाँ रहने लगी । ये बडे विनोद और आनन्दसे वहाँ अपना समय बिताने लगे ।

इसी समय वहाँ नीचे लिखी यह घटना हो गयी ।

चूलिका नगरीका राजा चूलिक था। उसकी रानीका नाम विकचा था, जो खिले कमलके समान मुख वाली और सौ पुत्रोंकी माँ थी। उन पुत्रोंमें सबसे बडे पुत्रका नाम कीचक था और वह दुराचारियोंमे सबसे बड़ा और रूप, यौवन, चतुराई, शूरवारता और धनके मदमें चूर रहता था। कीचककी बहन सुदर्शना राजा विराट की रानी थी। एक बार कीचक अपनी बहनसे मिलने विराट नगर आया। वहाँ उसने द्रोपदीको देखा और उसपर आसक्त हो गया। वह पापी यह नही जानता था, कि यह महासती है। अत्यन्त मानी कीचक भी द्रोपदीके रूपके सामने मानहीन-दीन समान प्रेमकी भीख मागने लगा। उसने अनेक उपायो, लोभ-लालच और राग पूर्ण वचनोसे फुसलानेका प्रयत्न किया। दूसरोंके द्वारा भी कीचकने द्रोपदीको प्रलोभन दिलवाये, पर उस महासतीके सामने वे सब बेकार। परन्तु कीचकके बार-बार आग्रह करने पर भी द्रोपदीने उसे इस दुस्साहसका मजा चखानेके लिए मिलनेका झूठा विश्वास दे दिया।

द्रोपदीने कीचककी सब बात अपने जेठ भीमसेनसे कह दी। भीमसेन तो इतना सुनते ही आग-बगूला हो गया, उससे द्रोपदीके द्वारा कामातुर कीचकको सायकाल एकान्त स्थानमे मिलनेकी बात पक्की करा ली। फिर भीम शैलघ्री (द्रोपदी) का रूप बनाकर उस स्थान पर जा पहुँचा। भीम अत्यन्त बलवान तो था ही, नियत समय पर मस्त हाथीके समान वह कामातुर कीचक मौतके मुंहमे जा पहुँचा। भीमसेनने तुरन्त अपनी दोनो भुजाओसे उसे गलेमे लगा कर और गला दबोच कर पृथ्वी पर पटक मारा और उसकी छाती पर चढ बैठा। फिर मुक्को पर मुक्के मार कर उस परदाररत कामी तथा कुशीलाभिलाषीको पापका फल चखा कर दया करके छोड दिया।

यह दुर्गत और ठुकायी कीचकके लिए वरदान सिद्ध हुई।

विषयासक्ति जनक पापका फल प्रत्यक्ष देख-भोग कर उसके अंतरंग की आँखे एक दम खुल गयी और उसे संसारसे अत्यन्त विरक्ति हो गयी। उसने रतिवर्द्धन मुनिसे मुनि-दीक्षा ले ली। अब क्या था? कीचक मुनि आत्म स्वरूप चिंतन, शास्त्राध्ययन और भाव शुद्धिके घोर तप कार्यमे तल्लीन हो गया। वह रत्नत्रयकी प्राप्तिका उद्यम करने लगा।

कीचकके मुनि बनने की बात उसके भाइयोको भी मालूम न हुई। जब उन्होने कीचकको न देखा, तो वे बहुत चिंतित हुए, घबराये। उन्होने कीचककी जगह-जगह खोज की, पर उन्हे उसका पता तक न मिला। फिर उन्होने एक जलती चिता देखी और किसीने उन्हे कह दिया, कि यह कीचककी ही चिता है। उन्होंने सोचा कि इस मालिन (द्रोपदीके) कारण ही कीचक मारा गया है। वे द्रोपदीको जलानेको तैयार हो गये। उन पापियोने अग्नि जलाई और जब उन्होने द्रोपदीके भेपमे भीमको जलाना चाहा, तब उस महाबली भीमने उन सभी भाइयोको जलती चितामे डाल दिया और वे जलकर राख हो गये। उसने उन सब पापियोका नाम-निशान ऐसे मिटा दिया जैसे एक शेर अनेक हाथियोको नष्ट कर देता है।

मुनि-मार्गपर चलना बडा कठिन है। फिर देवता, यक्ष और परीक्षा प्रधानी गृहस्थ मुनिकी हर समय परीक्षा करते रहते हैं। जब मुनि कीचक वनमे एकान्तमे ध्यानारूढ था, तब एक यक्षने उन्हे देखा। यक्षने सोचा कि यह तो द्रोपदी पर आसक्त था, देखूं अब इसके मनमे कितनी दृढता है। मुनि कीचकके चित्तकी परीक्षाके लिए वह यक्ष आधी रातके समय द्रोपदीका रूप बना कर मुनिके सामने जाकर कामोन्माद पूर्ण चेष्टाएँ करने लगा, जिससे उसका मन डिगे, वह उसके प्रति राग प्रकट करे। पर कीचक तो मानो आँखोसे अंधा और कानोसे बहरा बना हुआ ध्यान मग्न था, न उसने द्रोपदी रूपी यक्षकी काम चेष्टाएँ देखी और न राग भरी बाते सुनी। उसने तो

अपनी सभी इन्द्रियोको वशमें कर रखा था, उन्हे जीत लिया था और मनको तपाग्निमे शुद्ध कर लिया था । यक्षकी एक न चली । वह हार गया और मुनि कीचक इस परीक्षामे उत्तीर्ण हो गया ।

इसी समय मुनि कीचकको केवल ज्ञान पैदा हुआ, उन्हे त्रिकाल और त्रिलोककी सब वस्तुएँ—बाते हस्तकमलवत् ज्ञानमे उन्हे झलकने लगी । केवल ज्ञान उत्पन्न होते ही यक्षने असली रूपमे प्रकट होकर उन्हे नमस्कार किया और क्षमा याचना की ।

फिर यक्षने मुनि कीचकसे द्रोपदीके प्रति इतना मोह पैदा होने का कारण पूछा क्योकि बिना कारण ऐसा तीव्र मोह होना कठिन है ।

तब कीचक मुनि यक्षसे अपने और द्रोपदीके कुछ पूर्व जन्मो-का वृत्तान्त बताने लगे, जिससे इस मोहका कारण मालूम हो जाय ।

कीचक मुनिने कहा, "हे यक्ष ! एक समय मै तरङ्गिणी और वेगवती नदियोके सगम पर रहनेवाला महादुष्ट मलेच्छ था । मेरा नाम क्षुद्र था और मै महापापी गरीब जीवोका बैरी था । मेरे भावो में हर समय क्रूरता रहती थी । सौभाग्यसे मुझे एक साधुके दर्शन हो गये । और मेरे परिणाम शान्त हो गये । मैने मरकर मनुष्य योनिमे जन्म लिया । मेरा नाम कुमार देव रखा गया । मेरे पिता-का नाम धनदेव और माताका नाम सुकुमारिका था। मेरी माँने भोजनमें विष मिलाकर एक सुव्रत मुनिको मार डाला । उसके फलस्वरूप वह पापिनी मर कर नर्कमे जन्मी और वहाँ दु.ख भोगती रही ।

फिर वह पशु गतिमे पैदा हुई और फिर नर्क गई । मैंने यद्यपि मनुष्य योनि तो प्राप्त कर ली, पर मैंने जीवनमें सयम व्रत कुछ न पाले । सो मैने भी कभी कही जन्म लिया, कभी कही । फिर मैने मित नामक तपस्वी और उसकी मृगशृङ्गिणी तपस्विनीके पुत्रके रूपमे जन्म लिया और मेरा नाम मधु रखा गया । मैं उनके आश्रम

में हर प्रकारसे बढा। फिर मैने एक मुनि विनयदत्तको किसी भाग्य-शाली आदमीके द्वारा भोजन दिये जाता देखा। उसके महात्म्यको देख कर मैने मुनि दीक्षा ले ली। मुनि अवस्थामें तप करनेके फल-स्वरूप मैं स्वर्ग गया और फिर वहाँसे आकर कीचक राजा हुआ। पहले जो मेरी माता सुकुमारिका थी और मुनिको विष देनेके कारण नर्कमें गयी थी, वह यहाँ-वहाँ जन्म लेकर स्त्री हुई और उसका नाम अनुमति हुआ। अन्तमे कुछ तपके फलस्वरूप वह द्रोपदी हुई। इसी कारण मेरे मनमे उसके प्रति मोह पैदा हो गया। मै उस पर आसक्त हो गया था।"

मुनि कीचकसे इतना वृत्तान्त सुनकर यक्ष आश्चर्यचकितसा मुनिके मु हको देखने लगा। मुनि तो केवल ज्ञानी थे ही, वे यक्षके मनोभावको समझ कर कहने लगे, "हे यक्ष ! देखो, जन्म-जन्ममे मनुष्योके सम्बन्ध कैसे-कैसे बदलते रहते है। माता बहिन हो जाती है, पुत्री प्रिया स्त्री बन जाती है। इसलिए ससारी स्त्री-पुरुषोको ससारकी इस विचित्रताको समझ कर इन्द्रिय जनित विषय-वासनाओ के सुखोसे विरक्त होकर सदाचार और तपसे मोक्ष प्राप्तिका ही यत्न करना चाहिए।"

कीचक मुनिके उपदेशसे यक्षको बडी शान्ति मिली। वह अपनी देवियोके साथ-साथ सम्यग्दर्शनसे अलकृत हो गया। फिर वह यक्ष अपनी देवियो समेत मुनिको नमस्कार कर वहाँ से अंतर्हित हो गया, अदृश्य हो गया।

कीचक मुनि देवो, मनुष्यों और विद्याधरो द्वारा पूजनीय हुआ। अतरग तथा बाह्य तपके पश्चात् मोक्षको गया।

: ३० :

प्रद्युम्नकुमार की द्वारिका वापिसी

जब दुर्योधनने कीचकके सौ भाइयोके मारे जाने की बात सुनी, तो उसने सोचा कि बिना पाण्डवोके यह काम और कोई नही कर सकता। उसने यह भी मालूम किया कि बारह वर्षमें कितने दिन शेष है। दुर्योधनने उन्हे विराट नगरमे प्रकट देखनेकी योजना बनाई। तब दुर्योधनआदि सौ भाई विराट नगरमे आये और वहाँ की गऊ-आदि पशुओको चुरा ले गये। अब अज्ञातवासकी अवधि भी पूरी हो गई। तब पाण्डवोने उनपर चढाई की। कुछ लडाईके पश्चात् दुर्योधनने फिर एकता का प्रस्ताव किया। युधिष्ठर तो निर्मल-बुद्धि तथा महाधीर था और किसी का भी बुरा न चाहनेवाला था।

वे सब हस्तिनापुर आगये। यद्यपि दुर्योधन आदि बाहर से उन्हे प्रसन्न रखने का प्रयत्न कर रहे थे, फिर भी भीतर-ही-भीतर वे उन्हे परास्त करनेके उपाय करने लगे। वे पहलेके समान सधिमे दोष निकालने लगे। इससे भीमसेन और अर्जुन आदि छोटे भाई उत्तेजित तथा क्षुब्ध हुए, पर युधिष्ठर उन सबको शान्त करते रहे। युधिष्ठर कौरवोंका भी अहित नही चाहते थे। इसलिए वे सब भाई माता कुन्ती और परिवार सहित दक्षिण दिशा की ओर चल दिये।

चलते-चलते रास्तेमें उन्होने एक आश्रममे विदुर मुनिको देखा। सबने उसे प्रणाम किया और उसकी स्तुति की।

वहाँ से चल कर वे पाण्डव सपरिवार द्वारिका पहुँचे, जहाँ समुद्रविजयादिने उनका स्वागत किया। बहन-भानजोके आने से यादवोके यहाँ विशेष उत्साह और खुशी हो रही थी। पहले पाण्डवोने श्रीनेमिनाथके दर्शन किये। फिर वे अपने मामा समुद्रविजय, बलदेव, वसुदेव आदि से मिलने के बाद अन्तःपुरमे रानियो नानी-भाभी आदि से मिले।

कृष्णने इन पाँचो भाइयोको समस्त भोगोपभोगकी सामग्रियोसे भरपूर पाँच सुन्दरभवन रहने को दिये। समुद्रविजयादि दस भाइयोने इनसे पाँच पुत्रियाँ विवाही, युधिष्ठरसे लक्ष्मीमति, भीमसे सेखवती, अर्जुनसे सुभद्रा, नकुलसे विजया और सहदेवसे रति। नववधुओके साथ ये पाँचो पाण्डव बडे सुख-चैनसे दिन बिताने लगे।"

गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे पाण्डवोकी यहाँ तक की कथा सुनाने के पश्चात् रुक्मणी-कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नकुमारकी बात कहने लगे।

प्रद्युम्नकुमार मेघकूट नगरमे विद्याधर कालसम्वर और रानी कनकमालाके साथ रह रहा था। बडे लाड-प्यारसे उसका पालन-पोषण हो रहा था। प्रद्युम्नकुमार सब गुणोको प्राप्त कर रहा था और कलाओमे निपुण हो रहा था। विद्याधरोकी विद्याएँ जैसे आकाश गामिनी विद्या आदि को भी प्रद्युम्नकुमारने सीख लिया।

युवावस्थामे पहुँचते-पहुँचते प्रद्युम्नकुमार रूप-लावण्यमे तो निखर ही गया, समस्त शस्त्र-विद्याओमे भी वह निपुण हो गया। प्रद्युम्नकुमारके अनेक नाम पड गये, जैसे मन्मथ, मदन, काम, कामदेव, मनोभव और अनगसुन्दर आदि। शरीरसे रहित न होते हुए भी उसे अनंग नामसे भी पुकारा जाता था।

प्रद्युम्नकुमार बडा पराक्रमी और वीर था। सिंहरथ विद्याधर कालसम्वरके विरुद्ध हो गया और उसने कालसम्वरके पाँच सौ पुत्रोको

पराजित कर दिया। तब प्रद्युम्नकुमारने सिंहरथको युद्धमें हराकर उसे कालसम्वरके सामने पेश किया। प्रद्युम्नके इस शौर्यसे राजा प्रसन्न हुआ और उसने समझा कि वह विजयार्द्धकी दोनों श्रेणियोका स्वामी बन गया है। उसने कुमारको विधि-विधान पूर्वक युवराज पदका महापट्ट बाँध दिया।

इस घटनासे ओर प्रद्युम्नकुमारके युवराज बन जाने से राजा कालसम्वरके पाँच सौ पुत्र ईर्ष्यावश इसके नाशके उपाय सोचने लगे। उन्होंने छलसे प्रद्युम्नकुमारको आसन, सेज, वस्त्रो, ताम्बूल, खाने और पीने के पदार्थोके माध्यमसे मारना चाहा, पर निष्फल। उनकी एक न चली।

अन्तमे वे मायाचारी सभी राजकुमार निष्कपट और महा विनयवान प्रद्युम्नकुमारको सिद्धायतनके गोपुरके पास ले गये। उन्होने प्रद्युम्नकुमारसे कहा, "जो इस द्वार पर चढ़ेगा, उसे यहाँ के निवासी देवसे बहुतसी विद्याएँ और मुकुट मिलेंगे।" उस द्वारसे परे सोलह वनगुफाएँ और वाटिकाएँ आदि थी, जिनमे बडे भयकर देव रहते थे। पर प्रद्युम्नकुमारने उन सबको प्रसन्न करके या जीत कर उनसे बहुतसे बहुमूल्य पदार्थ, खड्ग, छत्र, चमर, सिंहासन, नाग शैया, विद्यामयी वीणा, ध्वजा, कुण्डल, मुकुट, अमृतमाला, विद्यामयी हाथी, आभूषण और दिव्य शख आदि भेटमे प्राप्त किये। इसी समय उसे इन्द्रजालकी प्राप्ति भी हुई। दो विद्याधरोकी कन्याएँ भी प्रद्युम्नकुमारको प्राप्त हुई। जब इन सोलह स्थानोंसे प्रद्युम्नकुमार इतने बहुमूल्य पदार्थ, अस्त्र विद्याएँ और कन्याएँ लेकर निर्विघ्न और सकुशल बाहर आया, तब इन पाँचसौ कुमारोको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे इनकी प्राप्ति को प्रद्युम्नकुमारके पुण्यका माहात्म्य समझ कर उसकी प्रशसा करने लगे और वापिस मेघकूट राजा कालसम्वरके पास आये।

जिस समय प्रद्युम्नकुमारने मेघकूट नगरमें प्रवेश किया उस समय देवोपुनीत दिव्य रथ, महा उज्ज्वल बैल, धनुष, छत्र तथा चमर आदि के कारण उसकी शोभा देखने योग्य थी। उसके साथ पाँच-सौ राजकुमार थे। नगरके सभी स्त्री पुरुष प्रद्युम्नकुमारको देखकर उस पर मोहित हो गये। कुमारने राजा कालसम्वरको प्रणाम किया। राजाने उसे हर्षपूर्वक छातीसे लगा लिया। फिर वह माताके पास गया और उसे प्रणाम किया। उसने प्रद्युम्नकुमारको उसकी जननी कनकमालाके पास भेजा। राजकुमारके रूप और छविको देखते ही रानीके भाव बिगड़ने लगे। उसने अपनी माँको विनयसे प्रणाम किया। रानी कनकमालाने उसे छातीसे लगाया, गोदीमे लिया और उसके मस्तकको चूमा।

प्रद्युम्नकुमारका स्पर्श तथा चुम्बन करते ही कनकमालाके मनमे मोहका तीव्र उदय हो गया, दुर्विचारोंने उसके मनमे उथल-पुथल मचा दी, उसने प्रद्युम्न कुमारके आलिंगनको प्राप्त करना चाहा। उसने मनमे सोचा कि उसकी प्राप्तिमे ही उसके रूप, लावण्य, सौभाग्य और चातुर्यकी सफलता है, वरना वे तृणके समान तुच्छ है। प्रद्युम्नकुमारके मनमे कनकमालाके ऐसे विचारों, सकल्प-विकल्पकी कल्पना भी न थी। उसने कनकमालाको प्रणाम किया, उसका आशीर्वाद लिया और अपने घर चला गया।

प्रद्युम्नकुमारको न पाकर विद्याधरी कनकमाला खाना-पीना तथा स्नान सस्कार सब भूल गई। दूसरे दिन माताके अस्वस्थ होने-का समाचार पाकर प्रद्युम्नकुमार कनकमालाको देखने गया, तो उसने देखा कि वह कमलिनीके पत्तोकी शय्या पर पडी अति व्याकुल हो रही है, उसका हाल-बेहाल है। उसका शरीर कुमलाया हुआ है और उसकी देहकी तपन से पुष्पो और कलियोंकी सेज भी कुमलाई हुई है। प्रद्युम्नकुमारने उसके शरीरकी इस हालतका कारण पूछा।

जब प्रद्युम्नकुमारने उसके अंगोंकी कुचेष्टाएँ और मनकी विपरीतता देखी, तब उसने ऐसे कर्मों और चेष्टाओंकी निन्दा की और वह उसे माता और पुत्रके सम्बन्धोंको बतलाने लगा।

कनकमालाने भी प्रद्युम्नकुमारको शुरूसे अब तक उसके, कालसम्वर और अपने पास आने का पूरा वृत्तान्त सुनाया। आकाशगामिनी विद्याके लाभकी बात भी उसे बताई।

रानीके मुखसे सारा हाल सुनने के पश्चात् प्रद्युम्नकुमार एक जिन मन्दिरमे सागरचन्द मुनिके पास गया और अपने पूर्व जन्मोका हाल पूछा। तब मुनिने कुमारको बताया, "हे कुमार ! पूर्व भवमे यह कनकमाला रानी चन्द्राभा राजा वीरसेनकी पत्नी थी और तू प्रद्युम्नकुमार राजा मधु अयोध्याका राजा था। गौरी और प्रज्ञप्ति विद्याएँ भी रानी कनकमाला तुझे देगी।"

मुनिसे सब वृत्तान्त सुननेके पश्चात् प्रद्युम्नकुमार रानी कनकमालाके पास गया। रानीने प्रसन्न होकर उसे दोनो विद्याएँ लेनेको कहा, पर उसने उन्हे भिक्षामे मागा। तब उस दुराचारिणी कनकमालाने विद्याधरोको भी दुष्प्राप्य ये दोनों विद्याएँ विधिपूर्वक प्रद्युम्नकुमारको दे दी। जब प्रद्युम्नकुमारने हाथ पसार कर विद्याएँ ली, तब रानी बडी प्रसन्न हुई और उसके मनके भाव कुछ और हो गये। तब फिर प्रद्युम्नकुमारने कनकमालाको समझाते हुए कहा, "आप मेरी प्राण दाता हैं, इसलिए माता है और विद्याओके दानसे मेरी गुरु हैं।" इसके पश्चात् प्रद्युम्नकुमारने हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया और अपने घर चला गया।

रानी कनकमालाने सोचा कि प्रद्युम्नकुमारने उसे छला है, धोखा दिया है। उसने तीव्र क्रोधसे अपने नाखूनोंसे अपने स्तनों और छातीको नोच डाला, अपने को घायल कर लिया। अपने पति राजा

कालसम्वरके पास जाकर विलाप करते हुए कनकमालाने कहा, "देखो, यह प्रद्युम्न कुमारकी करतूत है। मैंने तो पहले दिन ही कहा था कि यह पराया पुत्र अपना कैसे होगा ? पर आपने मेरी एक न मानी।"

वह विवेकहीन राजा कालसम्वर अपनी स्त्रीके इस प्रपच पर विश्वास करके प्रद्युम्नकुमारपर बडा क्रुद्ध हुआ। उसने अपने पाँचसौ पुत्रोको एकान्तमे बुलाकर उन्हे चाहे जैसे हो वैसे प्रद्युम्नकुमारको शीघ्र मार डालने का आदेश दिया।

तब पापी पिता की आज्ञा पाकर वे पाँचसौ राजकुमार बड़े प्रसन्न हुए, उनके मनकी इच्छा पूरी हुई। वे प्रद्युम्न कुमारको बडे आदरसे कालाम्बू नामकी वापिका पर ले गये। उन्होंने उसे वापिका मे जल क्रीडाके लिए प्रवेश करनेकी बार-बार प्रेरणा की। प्रज्ञप्ति विद्याने उसे उसके षड्यत्र की बात बता दी। उनकी चाल को जानते ही प्रद्युम्नकुमारको बडा क्रोध आया और उसने उसी क्षण मायासे अपना मायामयी रूप बनाया। स्वय तो अदृश्य होकर वापिकाके पास बैठ गया और मायामयी शरीरने वापिका मे प्रवेश किया। तभी वे निर्दयी पाँच सौ राजकुमार वापिकामे उसके ऊपर कूद पडे। प्रद्युम्नकुमारने उनमे से चारसौ निन्यानवे राजकुमारोको ऊपर पैर और नीचे सिर करके कील दिया और वापिकाको शिलासे ढक दिया और पचचूड राजकुमारको पाँच चोटी वाला बनाकर राजाको समाचार देने भेज दिया।

राजा कालसम्वर अपने पुत्रसे उसके सभी भाइयोंके कीले जाने का समाचार सुनकर और भी अधिक क्रुद्ध हुआ। वह अपनी समस्त सेनाको तैयार करके प्रद्युम्नकुमारको परास्त करने वहाँ वापिका-पर पहुँचा। पर प्रद्युम्नकुमारके पास तो कोई सेना न थी। इस-लिए उसने अपनी विद्याके प्रभावसे मायामयी सेना बनाकर राजाको

परास्त किया। राजाने राज-भवन में आकर कनकमालासे गौरी और प्रज्ञप्ति विद्याएँ मांगी। पर रानीने राजासे कहा कि उसने तो वे विद्याएँ प्रद्युम्नकुमारको बाल्यावस्थामे ही दे दी थी। राजा कालसम्वर अपनी रानीकी मायापूर्ण दुश्चेष्टाको समझ गया और फिर जाकर प्रद्युम्नकुमारसे युद्ध करने लगा। पर इस बार तो प्रद्युम्नकुमारने उसे बांधकर एक शिला पर रख दिया।

उसी समय नारद महाराज वहाँ आ पहुँचे। प्रद्युम्नकुमारने उसका बडा आदर-सम्मान किया। नारदने सब पूर्ववृत्तान्त उसको बताया। तब प्रद्युम्न कुमारने कालसम्वरके बधन काटे, उससे क्षमा मांगी और कहा, "कि कनकमालाने जो कुछ किया था, वह पूर्व जन्मके कर्मके फलस्वरूप किया था। अत. उसे क्षमा किया जाय।" उसने उन सभी निरुपाय राजकुमारोको भी बधन मुक्त कर दिया और भ्रातृ स्नेहसे उनसे भी क्षमा मागी।

फिर प्रद्युम्नकुमारने अपने असली माता-पिता रुक्मणी और कृष्णसे मिलने की तीव्र इच्छा होनेसे राजा कालसम्वरसे द्वारिका जाने की आज्ञा मागी। प्रद्युम्नकुमार नारदके साथ विमानमे सवार होकर द्वरिकाके लिए चल पड़ा। वे हस्तिनापुरसे निकलकर जब आगे बढ़े, तब उसने नीचे एक सेना पश्चिमकी ओर जाते देखी। प्रद्युम्नकुमारने नारदसे उस सेनाके बारेमे पूछा।

नारदने प्रद्युम्नकुमारको इस सेनाके जाने का यह वृत्तान्त बताया, "हस्तिनापुरका दुर्योधन कुरु वशका अलकार है। उसने प्रसन्न होकर कृष्णसे प्रतिज्ञा की थी कि यदि उसके कन्या हुई और कृष्णकी दोनो पत्नियो, सत्यभामा और रुक्मणीके पुत्र हुए तो पहले पैदा होनेवाले लड़केसे वह अपनी पुत्रीको ब्याह देगा। रुक्मणीके तुम प्रद्युम्नकुमार और सत्यभामाके भानु साथ-साथ पैदा हुए। परन्तु रुक्मणीके सेवकोंने तुम्हारे जन्मका समाचार कृष्णको पहले दिया

इससे तुम अग्रज बड़े भाई हुए और चूंकि सत्यभामाके सेवकोंने उसके पुत्र जन्मका समाचार बादमे कृष्णको दिया था, इससे वह अनुज छोटा भाई हुआ। परन्तु धूमकेतु नामका विद्याधर तुम्हे जन्मते ही उठा ले गया और तुम्हारा कुछ पता न चला। तब यशस्वी दुर्योधनने अपनी कन्या उदधिकुमारीको भानुसे व्याहनेका निश्चय किया। यह सेना उसी उदधिकुमारीको भानुसे व्याहनेके लिए द्वारिका ले जा रहा है।

यह सुनकर प्रद्युम्नकुमारने नारदको तो आकाशमे ही विमानमे छोडा और स्वय नीचे आकर महाविकराल भीलके वेषमे सेनाके सामने आ खडा हुआ। उसने कहा, "कृष्ण महाराजने मेरे लिए जो शुल्क-कर नियत किया है, वह मुझे देकर ही आगे बढ सकते हो। इस पर कुछ सैनिक तो नाराज हुए पर कुछने कहा कि इसे कुछ देकर विदा करो।" तब सैनिकोंने भीलरूपी प्रद्युम्नसे पूछा, "बता तुझे क्या चाहिए?" इसपर प्रद्युम्नने सेनाकी सार वस्तु—मूल्यवान वस्तु मागी। तब उन्होने कहा कि सबसे सार वस्तु तो राजकुमारी उदधिकुमारी है। पव वे सैनिक राजकुमारीको एक भीलको कैसे देते ? उन्होने कहा कि यह तो कृष्णके पुत्रके लिए है। प्रद्युम्न कुमारने कहा कि वह कृष्णका ही पुत्र है।

इस पर एक सैनिकने कहा, "बे सिर-पैरकी बाते करनेवाले इस भीलकी धृष्टता तो देखो। यह पागल है। इसे घेर लो।" तब एक दूसरे सैनिकने धनुषकी नोक दिखा कर उसे डराया और सेना आगे बढने को तैयार हुई। तभी प्रद्युम्नने मायामयी भीलोकी सेना बनाकर दुर्योधनकी सेनाको परास्त कर दिया और राजकुमारी उदधिकुमारीको ऊपर उठा कर विमानमे नारदके पास बिठाया। कन्या इस समय बडी भयभीत थी और निस्सहाय-सी लग रही थी। तब प्रद्युम्नकुमारने उसे अपना कामदेवके समान असली रूप दिखाया, जिसे देखकर राजकुमारी उस पर मोहित हो गई और

निर्भय होकर वहाँ बैठ गयी । तब नारदने उसे सब बात बताते हुए कहा कि वह वास्तवमे कृष्णके इस बडे पुत्र प्रद्युम्न कुमारकी ही मगेतर है । तब तो उदधिकुमारी और भी प्रसन्न हुई और आरामसे बैठ गयी ।

महाशीघ्रगामी विमानमे नारद, प्रद्युम्नकुमार, उदधिकुमारी द्वारिकापुरी पहुँचे । प्रद्युम्नकुमार द्वारिकापुरीके सौन्दर्य, द्वार और परकोटे आदि को देख कर बडा चकित हुआ । नगरके बाहर भानुकुमार तरह-तरहके घोडोपर घुडसवारीका अभ्यास कर रहा था । प्रद्युम्नकुमारने घोडोके बूढे व्यापारीका भेष बनाया और एक महामनोहर मायामय घोडा बनाकर भानुकुमारके सामने जा खडा हुआ । उसने भानु कुमारसे कहा, "यह घोडा मै राजकुमार भानु कुमारके लिए लाया हूँ ।" घोडेको देखते ही भानुकुमार उस पर सवार हो गया और लगा उसे दौडाने । पर घोडा तो मायामय था । अन्त मे वह भानुकुमारको तग करके उस वृद्ध व्यापारीके पास जा पहुँचा । जब भानुकुमार घोडेसे नीचे उतर आया, तब उस वृद्ध ने अट्टहास कर उसकी घुड़सवारीकी चतुराईका मजाक उडाया । उसने यह भी कहा, "यद्यपि मै बूढा हो गया हूँ फिर भी यदि तुम मुझे घोडे पर सवार कर दो तो मै भी अपना कुछ कौशल दिखा दूँ ।" फिर भानुकुमार और दूसरे लोगोने उस बूढेको घोडेपर सवार करने का बहुत प्रयत्न किया, पर वह अपनी मायासे इतना भारी हो गया, कि वे बहुत तग आ गये, पर उसे घोड़े पर सवार न करा सके । अन्तमें वह बूढा छलाग मार कर घोडेपर चढ बैठा और अपने करतब दिखाता हुआ वहाँ से चला गया । इससे भानु कुमार बड़ा खिसयाना हुआ ।

फिर प्रद्युम्नकुमारने मायामय बन्दरो और घोडोसे सत्यभामा के बाग-बगीचे उजाड़ दिये और यहाँ तक कि उसकी वापिका भी सुखा दी । जब प्रद्युम्नकुमारने श्री कृष्णको नगरके द्वारपर आते

देखा तो उसने मायामई डांस मच्छरोंसे उसके लिए भी आगे बढ़ना कठिन कर दिया। फिर प्रद्युम्नकुमार गधे और मेंढेके रथपर सवार होकर नगरमे खूब क्रीडाएँ करता हुआ घूमा और वहाँ के स्त्री पुरुषोको खूब मोहित किया। इतना ही नही, उसने बाबा वसु-देवसे मेढोके युद्धका भी खेल खेला।

इसके पश्चात् प्रद्युम्न कुमार सत्यभामाके महलमे पहुँचा। उस समय वहाँ ब्रह्मभोज हो रहा था और यह झट एक ब्राह्मणका रूप बना कर पक्तिमे सबसे आगे आसनपर जा बैठा। एक अपरिचित ब्राह्मणको अपने से आगे बैठा देखकर वे सभी ब्राह्मण बड़े कुपित हुए। पर उसने उन्हे भी खूब तग किया और बने हुए सारे भोजन को उसने खा लिया। जब और खाना मागने पर उसे भोजन न मिला, तो उसने सत्यभामाको कजूस कहकर वही वमन करके उसके सारे महलको मलिन कर दिया।

वहाँ से प्रद्युम्नकमार एक क्षुल्लक—त्यागी का भेष बदलकर माता रुक्मणीके महलमे गया और वहाँ रुक्मणीके द्वारा दिये सभी लड्डुओको खा गया। इसी समय सत्यभामाका नाई रुक्मणीके केश मूडने आया, पर प्रद्युम्नकुमारने सब बात जानकर उस नाई-का खूब तिरस्कार किया।

सत्यभामाने नाईकी बात सुन कर बलदेवसे शिकायत की। बलदेव रुक्मणीके महलके द्वार पर पहुँचा, तो प्रद्युम्नकुमार एक ब्राह्मणका रूप बनाकर द्वारपर पाव फैलाकर पड़ गया। उसने कहा कि आज उसने सत्यभामाके यहाँ भोजमे खूब खाना खा लिया है। इस पर बलदेवने उसकी टागे पकड कर हटानी चाही, पर उसकी टांगें इतनी लम्बी और भारी बन गयी कि बलदेव उन्हे टस-से-मस न कर सका। तब बलदेवने ख्याल किया कि यह तो कोई दैवी माया है। इस प्रकार प्रद्युम्नकुमारने अपनी अनेक विद्याओं और क्रीडाओंसे सभी-को विस्मित और हर्षित किया।

इसी समय रुक्मणीने वे सभी चिह्न देखे, जो नारदने प्रद्युम्न-कुमारके आने पर होने बताये थे। उसके स्तन रूपी कलशोसे दूध झरने लगा। तब अत्यन्त आश्चर्य मे पडकर उसने सोचा कि कहीं सोलह वर्ष पूरे होने पर उसका बेटा तो नही आ गया है। प्रद्युम्न-कुमारने भी अपने असली रूपमे माताके सामने प्रकट होकर नमस्कार किया। पुत्रको साक्षात् सामने देखते ही रुक्मणीके आनन्द और हर्ष-का पार न रहा, उसके नेत्र हर्षके आसुओसे भर आये और पुत्रा लिगनसे उसका चिरसचित दुःख आसुओके द्वारा बह निकला। चिर-प्रतीक्षित पुत्र-दर्शनमे रुक्मणीका सारा शरीर रोमाचित हो गया। परस्पर स्नेह प्रदर्शन और कुशल समाचार पूछने के बाद माता रुक्मणीने कहा, "हे पुत्र! धन्य है वह कनकमाला जिसने तेरी सुखदायक बाल क्रीडाओको देखकर पुत्र जन्मके फलका आनन्द उठाया; मै तो उनमे वचित रह गई, उन्हे न देख सकी।

रुक्मणीके इतना कहते ही प्रद्युम्नकुमारने मातासे कहा, "हे माता! ले, मै तुम्हे भी वे बाल क्रीडाएँ अभी दिखाता हूँ।" इतना कहते ही प्रद्युम्न तत्काल जन्मा बालक बनकर एक दिन का हो गया। फिर तरह-तरहके विनोद दिखाये। उसने अपना अँगूठा चूसना शुरू किया। फिर वह पेटके बल चलने लगा और तदनन्तर माकी अँगुली पकड कर आगनमे चलने लगा। फिर मिट्टीमे लेट कर माताके गलेसे लिपट गया। कभी वह तुतला कर बोलता, कभी हसता और कभी बिलख-बिलख कर रोता। उसने मासे कहा, "अब जिस आयुका तुम मुझे देखना चाहो, उसी आयुका बन जाऊँ। फिर वह सोलह वर्षका बन कर माताको नमस्कार करके कहने लगा, "लो अब मैं तुम्हें आकाशकी सैर भी कराता हूँ।"

इतना कह कर प्रद्युम्नकुमार रुक्मणीको अपनी दोनो भुजाओ-मे ऊपर उठा कर आकाशमे खडा हो कर कहने लगा, "सब यादव राजा सुन ले, मैं आपके देखते-देखते कृष्णकी प्रिया रुक्मणीको हर

कर ले जा रहा हूँ । यदि आपमे शक्ति हो तो इसकी रक्षा कर लें ।" अब उसने रणका शख बजाया और झटसे रुक्मणीको नारद और उदधिकुमारीके पास बिठा दिया । वह स्वय युद्ध के लिए आकाशमें आ खड़ा हुआ ।

रण भेरी स्वरूप शखनाद सुनते ही अस्त्र-शस्त्र विद्याओंमे निपुण यादव राजा चतुरग सेना लेकर युद्धके लिए नगरीसे बाहर निकले । प्रद्युम्नकुमारने अपने विद्याबलसे समस्त यादव सेनाको मोहित कर दिया । और फिर कृष्णसे बहुत देर तक युद्ध करता रहा । जब प्रद्युम्नकुमारने कृष्णके सभी वार निष्फल कर दिये, तब दोनो वीर अपनी दृढ और लम्बी भुजाओसे युद्धके लिए तैयार हुए । तभी रुक्मणीके कहनेसे नारदने विमानसे नीचे आकर कृष्ण और प्रद्युम्नकुमारको उनके पिता-पुत्रके सम्बन्ध बताये । तब प्रद्युम्न कुमारने पिताको प्रणाम किया और कृष्णने उसे सस्नेह छातीसे लगाया । कृष्णकी आखोसे आनन्दके आँसू बह निकले । कृष्णने पुत्रको आशीर्वाद दिया ।

तब प्रद्युम्नकुमारने अपने विद्याबलसे मूर्छित सेनाको असली दशामे खडा किया । अब सभी यादव बडे खुश हुए और सबने द्वारिका मे आनन्दपूर्वक प्रवेश किया ।

रुक्मणी और जामवती रानीने बडा उत्सव मनाया । फिर प्रद्युम्नकुमारका उदधिकुमारीसे विधिवत् विवाह हुआ, जिसे सम्पन्न करने के लिए मेघकूटपुरसे विद्याधर कालसम्वर और रानी कनकमाला को बुलाया गया । प्रद्युम्नकुमारके कहनेसे कृष्ण और रुक्मणीने कालसम्वर और कनकमालासे ही यह कह कर विवाहके समस्त नेग कराये कि वास्तव मे इस प्रद्युम्नके माता-पिता वे ही है । और प्रद्युम्न उनका ही पुत्र है । विवाह सम्पन्न होने पर प्रद्युम्नकुमार उदधिकुमारी आदि रानियोके साथ आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगा ।

●

: ३१

यदुकुल के कुमार

श्रीगौतम गणधरने राजा श्रेणिकको श्री कृष्णके दो पुत्रों सबुकुमार और सुभानुकुमारकी उत्पत्ति का यह वृत्तान्त सुनाया। राजा मधुका छोटा भाई कैटभ सोलहवे स्वर्गमे देव था। उसने केवलीसे पूछा, "हे भगवन् मै कहाँ पैदा हूगा ?" तब केवलीने उसे बताया कि वह कृष्णके यहाँ पैदा होगा और उनका बडा भाई भी उन्ही के यहाँ जन्मा है। इतना सुनकर वह देव कृष्णके पास आया और उन्हे एक महा मनोहर हार देकर कहा कि आप जिस रानीको यह हार देगे मैं उमी के यहाँ पुत्र जन्मूँगा। राजा कृष्णने वह हार रानी सत्यभामाको देना चाहा।

सयोग से यह बात रुक्मणीको मालूम हो गयी, तो उसने चाहा कि यह पुत्र जाबुवतीके हो। उसने प्रद्युम्नकुमारको अपनी इच्छा बतलाई। तब प्रद्युम्नकुमारने अपनी मायासे जाबुवतीका रूप सत्यभामा जैसा बनाया और वह उसे कृष्णके पाससे देवके हारको लेने मे सफल हो गयी। इस सोलहवे स्वर्गका वह देव जाबुवतीके गर्भमे आया। उसी समय सत्यभामा भी कृष्णके पास आई। तभी कोई दूसरा देव उसके गर्भमे आया। इस प्रकार वे दोनो रानियाँ गर्भवती हुई।

कुछ समय पश्चात् जांबुवतीके सबुकुमार और सत्यभामाके सुभानुकुमार पुत्र हुए। इनमे सबुकुमार बडा पराक्रमी हुआ और

देवोके समान क्रीडाए करता था। वह सभी खेलोमें सुभानु कुमार को जीत लेता था। कृष्णकी दूसरी रानियोसे भी अनेक पुत्र हुए।

रुक्मणीने प्रद्युम्नकुमारके लिए अपने भाई रुक्मकुमारकी पुत्री चुनी थी। पर रुक्मकुमारने बहनको न चाहनेके कारण अपनी पुत्री न दी। तब माताकी आज्ञासे प्रद्युम्नकुमार और सबुकुमार भीलका भेष बदल कर वहाँ से उस लड़कीको हर लाये। रुक्म-कुमारने उनसे अपनी बेटीको छुडाने का प्रयत्न किया, पर उन्होने उसे हरा दिया। प्रद्युम्न कुमारने इस राजकुमारीसे विवाह किया।

सबुकुमारने सुभानु कुमारको द्यूत क्रीडामे जीत कर सब धन भिखारियोमे बाट दिया। फिर उसने सुभानुकुमारको पक्षियो, मेढों, सुगध परीक्षा, राग परीक्षा और अश्व परीक्षा आदि मे हराया। इससे कृष्णकी सभामे सबुकुमारकी जीत की बडी प्रशसा होने लगी।

सबुकुमारके बल और पराक्रम आदि से प्रसन्न होकर कृष्णने उसे कोई वर मागने कहा। तब उसने एक महीनेका राज मागा। कृष्णने उसे एक महीने का राज दे दिया। राज पाते ही सबुकुमार अन्याय मार्गपर चलने लगा। तब कृष्णने उसे पकड कर नगरसे बाहर निकाल दिया। पुत्र मोह को राज कर्तव्यमे रुकावट न बनने दिया।

प्रद्युम्नकुमारकी मायासे सबुकुमारने कन्याका भेष बना कर वनमे रहने लगा। जब सत्यभामाने उस कन्याको वनमें देखा, वह रूपको देखकर बडी चकित हुई। पूछने पर कन्याने सत्यभामाको बताया कि वह विद्याधरकी पुत्री है। वह उस कन्याको रथमे बिठा कर नगरमे ले आयी और अपने पुत्र सुभानु कुमारसे उसका विवाह कर दिया, पर देखते-देखते ही सबुकुमारने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और सबको विस्मित कर दिया। इधर नगरमे पहले ही से बहुत राजाओंकी अनेक राजकुमारियाँ सुभानुकुमारसे विवाह

करने आयी हुई थी। सबुकुमारने जबरदस्ती उन सैकडों राजकुमारियोंको एक ही रातमें विवाह लिया।

एक दिन सबुकुमार अपने पितामह और कृष्णके पिता वसुदेवके पास जाकर प्रणाम करके उनसे विनोद करने लगा। उसने कहा, "हे पूज्य आपने बहुत वर्ष तक पृथ्वीपर भ्रमण करके बहुत क्लेश-कष्ट उठाये, फिर कही विद्याधरोंकी रूपवती और मनोहर कन्याएँ प्राप्त की। पर मुझे देखो, मैंने बिना किसी कष्ट-परिश्रमके घर बैठे ही एक रातमें सौ कन्याओंसे विवाह कर लिया। इसलिए आपमे और मुझमे बडा अन्तर है।

पितामह वसुदेव सबुकुमारकी बात सुन कर मुस्कराते हुए उससे कहने लगे, "हे बच्चे! छोटा मुंह बडी बात न कर। मुझमे और तुझमे बडा अन्तर है। तू तो बाणके समान दूसरो (प्रद्युम्न-कुमार) से परिचालित होता है। और फिर तेरा तमाम चलना-फिरना घर तक ही तो सीमित है। बस! जहाँ मैं विद्याधरोके विजयार्द्धगिरि रूपी सागरके मगरमच्छके समान हूँ, वहाँ तू केवल द्वारिका नगरी रूपी कुएँका मेढक मात्र है। यह कितनी विचित्र बात है, कि तू फिर भी अपनेको मुझसे बडा समझता है। मैंने विद्याधरोंके नगरोंमे घूम-घूम कर बडे अनुभव प्राप्त किये है, बहुत कुछ देखा सुना है। ये सब बाते तुम्हे तो क्या दूसरोंके लिए भी दुर्लभ हैं। ये अनुभव दूसरों के लिए बडे मनोहर और शिक्षाप्रद हैं।"

पितामह वसुदेवसे यह सुन कर सबुकुमारने उनसे देखे हुए चरित्र, किये हुए काम और अनुभव सुनने की इच्छा प्रकट की। तब वसुदेवके आदेशसे उसने सभी भाइयो और यादवोंको वहाँ एकत्रित किया, जिससे वे सभी उनकी बाते सुनकर लाभ उठा सके। वसुदेवने बहुत ही सक्षेपमें हरिवशकी उत्पत्ति यदुवंशका विकास राजा अधकवृष्टिके दस पुत्रोंका वर्णन बताया, जिनमें सबसे बड़ा

समुद्रविजय और सबसे छोटा स्वयं वसुदेव था। सौर्यपुरके लोगोंकी शिकायत पर किस प्रकार वह नगरसे निकाल दिया गया और फिर सौवर्ष बाद किस परिस्थितिमे समुद्रविजय आदि भाइयोसे उसका मिलाप हुआ—ये सब बाते वसुदेवने बताई। इसके पश्चात् उसने बलदेव, कृष्ण, नेमिनाथ और सबुकुमारके जन्मकी बाते बताई, जिन्हे सुन कर सभी चकित हुए। वसुदेवकी बाते सुन कर सभी विद्याधरियोको अपने-अपने पूर्व चरित्रोकी याद ताजा हो गयी। वहाँ उपस्थित राजा रानियाँ, यदुवशी और पाण्डव सभी वसुदेवके अनुभव, आप बीती और अपने वशकी बाते सुन कर बडे हर्षित हुए और सबने वसुदेवके शौर्य, चतुराई और विजयो की प्रशसा की।

द्वारिकाके गली-कूचो और घर-घरमे वसुदेवकी अनेक आश्चर्य युक्त पुरानी कहानियाँ बन गयी, हर एक की जबान पर वही थी।

इसके पश्चात् राजा श्रेणिकने नमस्कार करके गौतमगणधरसे यादवोके कुमारोका वर्णन पूछा।

राजा उग्रसेनके पुत्र धर, गुणधर, युक्तिक, दुर्धर, सागर और चन्द्र थे। राजा उग्रसेनके चाचा राजा शन्तनके महासेन, शिवि, स्वस्थ, विषद और अनन्तमित्र पुत्र थे। समुद्रविजयके महासत्य, दृढनेम, अनिष्टनेमि, रथनेमि, सुनेमि, जयसेन, महीजय, सुफल्गु, तेजसेन, मय, मेघ, शिवनन्द, चित्रक और गौतम आदि अनेक पुत्र हुए। समुद्रविजयके दूसरे भाइयोके नाम भी गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको बताये। दसवे भाई वसुदेवके बहुत पुत्र थे, जो सभी महा बलवान् थे। रानी विजयसेनासे अक्रूर और क्रूर, श्यामासे दो पुत्र ज्वलन और दूसरा अनिलवेग, गधर्वसेनासे तीन पुत्र वायुवेग, अमितगति और माहेन्द्रगिर हुए। रानी पद्मावतीसे वसुदेवके तीन पुत्र दारू, वृद्धारक और दारूक हुए। रानी नीलयशासे उसके दो बेटे सिह और मतगज हुए। रानी सोमश्रीसे नारद और मरूदेव

दो पुत्र हुए। इसी प्रकार वसुदेवकी रानी मित्रश्री और पद्मावतीके क्रमश तीन और बेटे हुए और रानियोके अनेक पुत्र हुए। राजा वसुदेवकी रानी देवकीके गर्भसे कृष्ण आदि पुत्र हुए। और बलभद्रके भी बहुत से पुत्र हुए। राजा श्री कृष्णकी आठो पटरानियो और दूसरी रानियोसे अनेक पुत्र हुए, जिनमे भानु, सुभानु, प्रद्युम्नकुमार और सबुकुमार आदि बहुत से पुत्र हुए, जो सभी शस्त्र तथा शास्त्र विद्याके अभ्यासी और युद्धमे प्रवीण थे। इनके पुत्र, पौत्र और भानजे आदि सभी वडे पराक्रमी और कामदेवके समान सुन्दर थे। ये सभी राजकुमार धर्म मार्गपर चलने वाले, चरित्रवान् और उदार थे। इन सभी राजकुमारोंसे द्वारिकाकी शोभा अवर्णनीय बन गयी थी।

: ३२ :

दुर्गा उत्पत्ति

नन्द और यशोदाकी जो पुत्री कृष्णके बदले लाकर देवकीको दो गयी थी और उसका पालन-पोषण वसुदेव और देवकीने किया था, कमने उसकी नाक दबाकर चपटी कर दी थी। वह अब बडी होकर नवयुवती हो गयी। वह रूप सौन्दर्यमे महाश्रेष्ठ, चन्द्रमा समान निर्मलयशको रखनेवाली, महा प्रचुर यौवन तथा महामनोहर गुणोके आभूषणोसे सम्पन्न थी। उसके चरणकमल कोमल, सुन्दर अँगुलियाँ, वर्तुलाकार रोमहीन जघाएँ, सिरसके पुष्प समान मृदु दोनो भुजलताएँ, मनोज्ञ कधे, कमलकी प्रभा सदृश हाथ, अति रमणीक पाटलके पल्लवोके समान अरुण हथेलियाँ, कण्डीरके पुष्प समान आरक्त नख रूपी आँखे, कमल दल समान अरुण होठ, वक्र भौहे और मनोहर ललाट था। उसकी आँखे कमल दल समान विस्तीर्ण कर्ण पर्यन्त और उज्ज्वलता, श्यामलता और लाली को लिए हुई थी। उसके मुखकी उपमा न तो चन्द्रमासे और न कमलसे दी जा सकती थी। बात सक्षेपमे यह थी कि वह रूप सौन्दर्य की प्रतिमा थी।

किसी दिन बलदेवके पुत्रोने अपने अल्हड़ स्वभाव से उस लडकीको 'चपटी नाकवाली' कहकर चिढा दिया। उस लड़कीने अपना मुख कमल देखा। इतने सुन्दर शरीरवाली लडकी अपनी चपटी नाकको देखकर लज्जित हो गयी और ससारसे विरक्त हो गयी।

एक दिन द्वारिकासे सुव्रता आर्यिका पधारी । वह लड़की वसु-देव और देवकी आदि गुरुजनोकी आज्ञा लेकर आर्यिकाके दर्शनके लिए गयी । नमस्कार करके उसने आर्यिकाकी शरण ली । उस आर्यिकाको साथ लेकर वह व्रतधर मुनिके पास गयी । और उसके पश्चात् वह उस अवधिज्ञानी आर्यिकासे अपने पूर्व जन्मोके हाल पूछने लगी । मुनिने उससे कहा, "हे पुत्री ! तू पूर्व जन्ममे सोरठ देशमे मूढबुद्धि पुरुष थी । तू अति रूपवान, धनवान और निरकुश थी । न किसी का भय, न किसी का डर । तू बडी मदान्ध थी । तेरे हृदय और आँखोका ज्ञान महा उन्मत्त थे । एक दिन तू एक भरी गाडी लिए वनमे जा रही थी । रास्तेमे एक महा मुनि मृतशय्यापर अत्यन्त कठोर तप कर रहे थे । बिना देखे-भाले तूने अपनी गाड़ी उस मुनिके पाससे ले जाने लगी । परिणाम यह हुआ कि उस मुनिकी नासिका गाडीकी रगडसे मसली गयी । भला यह हुआ कि गाड़ीसे मुनिका प्राणान्त न हुआ । वह मुनि तो महावीर था । अत. उसके मनमे कुछ भी खेद न हुआ । बिना जाने भी किसी जीवनका घात हो जाये तो जीव पापसे नर्कमे जाता है । फिर मुनिके घातका तो क्या कहना ? जो किसीके अवयव भग करता है, उसके अवयव अनेक बार भग हो जाते है । जो जैसा करता है वैसा भोगता है । जो दुष्ट प्रबल होकर निर्बलको पीड़ा देता है, जीवोंको दु.ख देता है, वह भव-भवमे दु खी होता है । तूने बिना जाने प्रमादसे गाडी चलाई । तूने अपने किये पर पश्चात्ताप किया और मुनिसे क्षमा कराई और पाप-का प्रायश्चित्त किया, इसलिए नर्क न गयी और मनुष्यकी योनि पाई । परन्तु पापके फलस्वरूप स्त्री योनि पाई और तेरी नाक चपटी हो गयी ।"

आर्यिका सुव्रताके ये वचन सुनकर उस कन्याने उसे नमस्कार किया और उसीसे व्रत लिये । उसने समस्त कुटुम्बका मोह त्याग कर घरको त्याग दिया । समस्त वस्त्राभूषण तज कर तन ढकनेको केवल एक सफेद साडी रखी । उसने अपने हाथोंसे सिरके समस्त

केशोंका लोच ऐसे किया, उन्हे ऐसे उखाड फेंका मानो उसने अपने समस्त पापोको उखाड फेंका हो। अब वह कन्या साध्वी बन कर ऐसी शोभायमान हुई, जैसे वह अशुभ की नाशक हो।

जो नवयौवनमे तप धारण करती है, वास्तवमे वह धन्य है। उसको देखकर स्त्री-पुरुष यह कहने लगे, कि यह रति है या धृति है या सरस्वती है। अपने शास्त्राध्ययनके कारण सब साध्वियोंमें उसकी प्रशसा होने लगी।

एक बार यह साध्वी दूसरी आर्यिकाओके साथ विन्ध्याचल पर्वतके वनमे गयी। रातके समय तीक्ष्ण शस्त्रधारी और कठोरचित भीलोने इस साध्वीको देखा। यह योगासनसे बनमे बैठी थी। भीलोने ख्याल किया, कि यह तो कोई वन देवी है। इसलिए उन्होने उससे वरदान मागा। उन्होने प्रार्थना की, "हे भगवती! यदि आज की चढाईमे हमे धन मिलेगा, तो हम तेरी सेवा करेगे। सयोगमे उस रात उन्हे लूटमे खूब धन मिला। उन मूर्खोंने समझा, कि उन्हे देवीके वरदानसे ही यह धन मिला है। फिर वे भील वहाँ वनमे आये, पर ध्यानमग्न उस साध्वीको न देख सके।

इसके पश्चात् वहाँ वनमे शेर आया और उसने उस साध्वीको खा लिया, पर समाधि मरणके कारण वह साध्वी स्वर्गमे गयी।

शेरने उस साध्वीका समस्त शरीर तो खा लिया था, पर उसकी तीन अँगुलियां बच गयी थी। उसके शरीरके रुधिर से धरती लाल हो गयी। पृथ्वी पर खूनके निशान देखकर उन भीलोने सोचा कि यह वरदानी देवी रुधिर प्रिया है। उन्होने विचारा कि उसकी खूनमे रुचि है, खून उसे भाता है, इसलिए उन दुष्ट भीलोने उसकी तीन अगुलियोका त्रिशूल स्थापित किया और इसे विन्ध्यवासनी देवी जाना। जगली भैसोंको मार कर वे उस स्थलकी पूजा करने लगे। वे पापी भील महाहिसक पशुओकी बलि देने लगे और रुधिर तथा मांस उसपर चढाने लगे। इससे वह सुन्दर वन इन वस्तुओके कारण अपवित्र

और दुर्गन्धमयी बन गया। वहाँ मक्खियाँ भिनभिनाने लगी और देखनेमें वह स्थान विष समान बन गया।

वह माध्वी तो स्वर्ग चली गयी पर उन भीलोंने नर्क ले जानेवाले पशुबलिका मार्ग अपनाया। यदि ऐसे आदमी कुगतिको न जायेंगे, तो और कौन जायेगा ?

ससारमे गीदड प्रवृत्ति या भेडाधसान अधिक है। यदि एक गीदड या भेड कुएमें गिर जाये, तो दूसरे गीदड या भेड उसका पीछा करके कुएमे गिर जाती है। वैसे ही जब कुछ आदमी कुदेवोकी पूजा करते है, तो उनकी देखा-देखी अनेक मूढ आदमी कुदेवोकी सेवा-पूजा करने लगते है। इतना ही नही, भीलोसे क्षत्रियोतक मे पशु-बलि पहुँच गयी। क्षत्रियोका कुल तो दीनबन्धु दीनानाथ कहलाता है, पर उनमे से बहुतोके यहाँ यह बलि प्रथा है। मूढ लोगोकी मूढता-की हद देखिये। किसी तरहसे किसीके पूर्वार्जित पुण्यसे कोई काम सिद्ध हो जाय, तो मूढ आदमी ऐसा मानने लगते है, कि इस देवता-की पूजामे यह काम सिद्ध हुआ है। इसलिए वे उसकी आराधना करते है। उनकी देखा-देखी दूसरे आदमी भी पूजा-आराधना करते है। पापी जीवोके हृदयमे करुणा कहाँ होती है ? वे अपना रुधिर क्यो नही चढाते ? जो पशु सिरकी बलि चढ़ाते है, वे अपने सिरकी बलि क्यो नही चढाते। देवता तो मनसाहारी होते है, मासाहारी नही देवताओके मनमे भूख लगती है और मनमे ही वह भूख विलीन हो जाती है। ऐसे देवता मुझे वर देंगे, यह अभिलाषा करना जगतमें बड़ी भूल है।

हिसा करना, करवाना और हिंसाकी अनुमोदना करना, ये तीनो काम अशुभ है, इनसे पापका आगमन होता है, जिससे दुर्गति-का बन्ध होता है। प्राणी कुगतिमे जाता है। हिसा सब पापोका मूल है, कुगतिका कारण है। परन्तु वीतराग द्वारा कहा हुआ दया धर्म ही कल्याणकारी है, शुभ कर्मोके लानेवाला है। जब मन शुद्ध हो,

वचन सत्य हो और काया कुचेष्टासे रहित हो, तभी पुण्य होता है। इसके विपरीत होनेसे अशुभ होता है, पाप बन्ध होता है और कुगति दिलानेवाला होता है।

देव तो परब्रह्म परमात्मा सिद्ध भगवान् ही हैं अथवा निज आत्मा ही है, अन्य नही। सिद्धोंका जो अखण्ड अविनाशी सुख है, उसका जहाँ लाभ या प्राप्ति होती है, वही महा मनोहर परम धाम है और वहाँ सब पदार्थ ज्ञानमे भासते है। उदार चरित्र पुरुषोको वह धाम सुलभ है, दूसरो को नही।

: ३३ :

चक्रव्यूह और गरुड़व्यूह

एक सौदागर अमूल्य रत्न लेकर राजा जरासिधके दरबारमे आया। राजाने पूछा कि वह ये रत्न कहाँ से लाया है। तब सौदागर ने उत्तर दिया कि वह ये रत्न द्वारिका पुरीमे लाया है, जहाँ अत्यन्त पराक्रमी राजा कृष्ण रहते है। यादवोका नाम सुनते ही राजा जरासिधकी आखे क्रोधसे लाल हो गयी।

राजा श्रेणिकने जब जरासिध और कृष्णका नाम सुना तो उसने श्री गौतम गणधरसे पूछा कि कृष्णकी प्रसिद्धि सुनकर जरासिधका क्या विचार हुआ। तब गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे जरासिध और कृष्णके चरित्रके सम्बन्धमें बतलाना शुरू किया।

यादवोंकी बात सुन कर जरासिध उनके साथ की हुई सन्धिसे विमुख हो गया और वह अपने मुख्य मन्त्रियोसे मत्रणा करने लगा। राजाने उन मत्रियोसे पूछा, "तुमने यादवोंके बढते हुए बल और ऐश्वर्यकी सूचना गुप्तचरो द्वारा पाकर मुझे क्यो न दी ! तुमने अपने कर्तव्यके पालनमें क्यों कमी की ? यदि मत्री ही गुप्तचरों द्वारा शत्रुओ की खबर पाकर राजाओको नहीं बतायेंगे, तो और कौन बतायेगा ? यदि मैं ऐश्वर्यमें मस्त रहकर असावधान रहा, तो क्या कारण था कि तुम्हें यादवोंकी वृद्धिका पता न लगा। यदि तुम भी न जान सके, तो तुम मत्री किस काम के ? सेवकका यह धर्म

नही कि स्वामीको शत्रु और मित्रोकी बात न बताये। यदि कोई रोग हो तो उसको दूर करनेका उपाय तत्काल होना चाहिए। रोग बढ़नेसे दुख बढता है। इन दुष्ट यादवोने पहले तो मेरे जमाई कस-को मारा और फिर मेरे भाई अपराजितको मारा। अब वे समुद्रकी शरण मे आकर द्वारिका बसा कर रहने लगे। वहाँ भी उन्हे इसी प्रकार मारा जा सकता है, जैसे समुद्रकी मछलियोको मारते है। वहा वे निर्भय क्यो है? मेरी क्रोधाग्नि प्रज्वलित होनेके बाद वे निर्भय कैसे रह सकते है? शत्रुका दमन करनेके लिए साम, दान, भेद और दण्ड चार ही उपाय है। यादव साम और दानके योग्य नही है, उन्हे भेद और दण्डमे ही काबूमे लाना चाहिए।"

शान्तिके मार्गमे स्थित मंत्रियोंने दण्ड नीतिको ही उपाय मानने-वाले राजा जरासिंधको बडी नम्रतामे शान्त करते हुए कहा, "हे नाथ! हम लोग द्वारिकामे शत्रुओकी वृद्धिको न जाने यह बात सम्भव नही। हम तो समय व्यतीत करते रहे, क्योकि यादवोके वश मे तीर्थंकर नेमिनाथ, श्री कृष्ण और बलदेव तीनों महानुभाव इतने बलवान् है कि मनुष्योकी तो बात ही क्या, देवोके लिए भी उन्हे जीतना कठिन है। तीर्थंकर नेमिनाथको युद्धमे न आप जीत सकते है न पृथ्वीतलके समस्त राजा इकट्ठे होकर उसे जीत सकते है। शिशुपालके रणमे पराजित तथा वध करनेवाले बलदेव और कृष्णके सामर्थ्यको क्या आपने नही सुना? जिन यादवोके पक्षमे महा कीर्ति-वान और तेजस्वी पाण्डव तथा विवाह सम्बन्धोसे मिले हुए अनेक विद्याधर है, उन्हे आप कैसे जीत सकते है? दैव-बल, समयबल और बुद्धिबल सब उनमे है। यही जानकर हमने सोचा कि सोते शेरोको न जगाया जाय, यथावत् रहने दिया जाय। हम देश और कालका विचार करके चुप रहे। अपने और पराये बलको विचारना और समयको देखना ही ठीक है। सेवक वही है जो स्वामीके हित-की बात कहे। अब आप जैसा उचित समझे, करे।"

परन्तु जरासिंधको ये सब बातें जरा भी अच्छी न लगी। उन्हें अनसुना कर दिया। बुरा समय आता है, तब हठग्राही अपना हठ नही छोड़ता। मन्त्रियोंकी बातको न मानकर जरासिंधने अपने अजितसेन दूतको यादवोंके पास द्वारिका भेजा। इसके अतिरिक्त उसने पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सभी दिशाओके राजाओंके पास पत्र और दूत भेजे कि वे शीघ्र ही अपनी-अपनी चतुरंग सेनाएँ लेकर उसके पास राजगृहमे आ जाये। जरासिंधका सन्देश पहुँचते ही राजा कर्ण और दुर्योधन उसके पास आ गये। राजा जरासिंधने राजगृह नगरीमे सेना सहित कूच कर दिया।

दूत अजितसेन इस प्रकार द्वारिका आया जैसे कोई पुण्यवान् आदमी स्वर्गपुरीको जाता है। राजसभामे समस्त यदुवंशी और पाण्डव बैठे थे। जब द्वारपालने राजा जरासिंधके दूतके आने की सूचना दी, तभी दूतको राजदरबारमे पेश करने का आदेश दिया गया। दूतने राजसभामे आकर सबको यथायोग्य नमस्कार किया। उसको बैठने के लिए उचित आसन दिया गया। तब उसने अपने स्वामीके बलके कारण घमण्डसे कहना शुरू किया, "हे यादवगण! हमारे राजाधिराज जरासिंधके सन्देशको ध्यानसे सुनो। मैने तुम्हारा क्या बुरा किया है जो तुम भय मान कर यहा समुद्र तटपर बस गये हो! अपराध आप मे ही हुआ है। आपने ही भय मानकर यहाँ समुद्र तटपर आश्रय लिया है। आप मुझसे कोई भय न माने। आप आकर मुझे नमस्कार करे और मेरी आधीनता स्वीकार करे। यदि आप समुद्रके बलके भरोसे रह कर न आकर नमस्कार न करोगे, तो मैं इतना बलवान हूँ कि समुद्रको पीकर अपनी सेनाओके द्वारा तुम्हारी तत्काल दुर्दशा कर दूंगा। जब तक मुझे तुम्हारे यहाँ रहने का पता नही हुआ था, तभी तक आप सुरक्षित थे। अब मुझे पता लग जाने पर तुम सुरक्षित कैसे रह सकते हो?"

दूतके उपर्युक्त वचन सुनकर उपस्थित कृष्ण आदि सभी राजा कुपित हो गये और बलदेव तथा वासुदेव भौहें टेढी करके

बोले, "हे दूत ! तुम्हारे राजाकी मृत्यु निकट आई है, जो समस्त सेना लेकर आक्रमण कर रहा है। हम उसका युद्धसे स्वागत करेंगे।" ऐसा कहकर दूतका उचित आतिथ्य करके उसको वहाँ से विदा कर दिया गया। द्वारिकासे जाकर दूतने राजा जरासिंधको द्वारिकाकी सब बातें सुनाईं और वहाके सब रहस्य भी बताये। उसने कहा कि वे महा मदोन्मत्त है और युद्धके अभिलाषी है।

दूतके चले जाने पर राजा समुद्रविजयके तीनो मत्री बिमल, अमल और शार्दूल आपसमे मत्रणा करके राजासे कहने लगे, "हे राजन् ! क्योंकि साम नीति अपने और विरोधीके लिए शान्तिका कारण होती है, इसलिए हम लोग राजा जरासिधके साथ उसीका प्रयोग करेंगे। कुमारोका यह जो समूह हमारे पास है उपायबहुल युद्धमे उनकी कुशलतामे सन्देह है। मगधके राजा जरासिधसे पारस्परिक बात करके युद्ध टाला जाय तो अच्छा है। युद्ध सबके नाशका कारण होता है। कुशलतामे सन्देह होता है। अपने यहा बहुतसे राजकुमार योद्धा है। यदि उनमे से एक भी युद्धमे मारा गया, तो उसकी क्षतिको सहारा न जायेगा, न पूरा किया जायेगा। जैसे अपने यहाँ अमोघ बाणको बरसानेवाले बहुत वीर है, वैसे ही जरासिधकी सेनामे भी कर्ण, दुर्योधन और भीष्म आदि बहुत योद्धा है। इसलिए समस्त जीवोके कल्याणके लिए साम नीति ही उचित है। हमे जरासिधके पास दूत भेजना चाहिए। यदि फिर भी वह मृदुतासे शान्त न हो, तो जैसा उचित होगा वैसा करेंगे।"

राजाने मत्रियोकी सलाह मान कर कहा कि इसमे कोई दोष नही और महाचतुर, शूरवीर और नीतिवान लोहजघ दूतको राजा जरासिधके पास भेजा।

राजा जरासिंध सेना सहित कूच करता हुआ मालव देशमे देवावतार तीर्थ आ पहुँचा और वहाँ डेरे डाल दिये। यह तीर्थ दो

मासोपवासी कटिब्रधारी मुनियो तिलकानन्द और नन्दकको इस प्रतिज्ञाके पूरी होनेके कारण प्रसिद्ध हो गया कि उन्हें वनमें आहार मिले। संयोगसे वनमे श्रावकोका एक बडा संघ आ गया और उसके द्वारा मुनियोको आहार दिया गया। उनका उपवास खुलने पर वनमे पाँच आश्चर्य—रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि, सुगन्धित जलकी वृष्टि, शीतलमन्द सुगन्धपूर्ण पवनका चलना और 'जय-जय' के शब्द हुए।

इस वनसे राजा जरासिधके कटकमे लोहजघ पहुँचा और उसने एकान्तमे राजासे बातचीत की। दून तो बडा नीतिवान तथा महा पडित था। यद्यपि जरासिध सन्धिके पक्षमे न था, पर उसकी बातोसे प्रसन्न होकर राजाने छ महीनेके लिए सन्धि स्वीकार कर ली।

इसके पश्चात् राजा जरासिधसे सम्मान पाकर लोहजघ द्वारिका लौट आया और उसने अपने राजा समुद्रविजयको सन्धिकी समस्त बात बताई। समस्त यादव इस सन्धिसे युद्धकी तैयारी का ध्यान रखकर एक वर्ष शान्तिसे रहे।

एक वर्ष पूरा होने पर राजा जरासिध अपनी तथा अपने मित्र राजाओंकी सागर सदृश सेना लेकर कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमे आ डटा। उधर कृष्ण आदि यदु राजा भी अपनी महा सेनाको लिये पहले ही वहाँ पहुँच गये थे। कृष्णके पक्षके राजा भी सभी दिशाओसे आकर उससे आ मिले। कृष्णके हितैषी पाण्डव भी वहाँ पहुँच गये। नेमिनाथके पिता समुद्रविजय, राजा उग्रसेन और इक्ष्वाकुवशी राजा मेघ राजा कृष्णके पास आ गये। राष्ट्रवर्धन देशका राजा, सिंघल देशका राजा पद्मरथ और सकुनका भाई महा पराक्रमी राजा चारुदत्त भी लडनेके लिए कृष्णकी सेनामें आ मिले। इतना ही नहीं, बरबर, यवन, आभीर, काम्बोज और द्रविड देशके राजा भी अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर वहाँ आकर यादवोंसे मिल गये। इधर जरासिध-के साथ भी अनेक राजा अपनी सेनाए लाकर मिल गये। जरासिंधने

चक्ररत्नके प्रभावसे भरत क्षेत्रके तीन खण्डके राजा अपने आधीन कर रखे थे। दोनो तरफ अक्षोहिणी दलकी सेनाएँ थी।

अक्षोहिणी सेनामे नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ सौ करोड़ पैदल सैनिक होते हैं।

यादवोंमे कुमार नेमिनाथ, बलदेव और कृष्ण तीनो अतिरथ थे। ये सब अतिरथोमे श्रेष्ठ थे। राजा समुद्रविजय, वसुदेव, युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, रुक्म, प्रद्युम्न, सत्यक, धृष्टद्युम्न, अनावृष्टि, शल्य, भूरिश्रवस, राजा हिरण्यनाभ, सहदेव और सारण सभी उस रण-भूमिमे मौजूद थे। ये सभी राजा शस्त्र और शास्त्रार्थमे निपुण, महा शक्तिमान और महा धैर्यशाली वीर योद्धा थे। ये राजा रणसे पीछे भागनेवाले और न लड सकनेवाले कायर राजाओपर दयावान् थे, पर जो योद्धा इनका सामना करते, इनके सामने होते या इनसे अधिक बलवान होते, उससे ये अवश्य लडते। उनमे बहुत महारथी, अनेक समरथी थे। और बहुतसे अर्द्धरथी योद्धा थे। समुद्रविजयसे छोटे और वसुदेवसे बडे आठो भाई भी सेनामे थे। जवुवन्तीका पुत्र सबुकुमार, राजा भोज, विदूरथ, द्रोपदीका पिता द्रुपद, सिंह राजा, राजा शल्य, व्रज, सुयोधन, पौड्र, पद्मरथ, कपिल, भगदत्त और मेघधूर्त इत्यादि अनेक राजा वहाँ थे। इनके अतिरिक्त राजा महानेमिधर, कृष्णका भाई अक्रूर और निषद भी रणभूमिमे थे। इनके अतिरिक्त राजा विराट चारू कृष्ण, दुशासन और सिखण्डी आदि वहाँ थे।

ये दोनो ही समुद्र समान सेनाए कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें डटी हुई थी। कुन्तीका पुत्र राजा कर्ण जरासिंधकी सेनामे शामिल था। कर्णका डेरा कृष्णके डेरेके निकट ही था। तब रानी कुन्ती कृष्णसे सलाह करके कर्णके पास गई। वह आकुलतासे भरी और स्नेहभारसे दबी जा रही थी। वह कर्णको गले लगाकर रुदन करती न थकी। तब उसने कर्णको शुरूसे अन्त तकका अपना सम्बन्ध बताया।

माताके ये वचन सुनकर कर्ण कुरुवशमे अपना जन्म, कुन्ती माता और पाण्डु पिताको निश्चय रूपसे जान गया। उसने अपने अन्त पुरमे अपने वर्गके व्यक्तियोंसे इस सम्बन्धको निश्चित रूपसे समझकर कुन्तीकी बड़ी स्तुति और सम्मान किया।

माता कुन्तीने स्थिति अपने अनुकूल देख कर कर्णसे अपने मनकी बात बडे प्रेमसे कहनी शुरू की, "हे पुत्र ! तेरे भाई तेरे दर्शनके अभिलापी हैं। उठ, हमारे कटकमें चल। कृष्ण आदि सभी तेरे निजवर्गके व्यक्ति तुझे बहुत ही चाहते है। तू तो कुरुवशका ईश्वर है और बलदेव तथा वसुदेव सभी के लिए प्राणोसे प्यारा है। तू तो कुरुवशका राजा है। तेरा भाई युधिष्ठर तेरे सिर पर छत्र फिरावेगा, भीम चवर डुलायेगा। अर्जुन तेरा मत्री होगा और नकुल तथा सहदेव दोनो तेरे द्वारपाल होगे। और मै तेरी माता सदा नीति पूर्वक तेरा हित करने को तैयार हूँ।"

माताके वचन सुनकर कर्ण भाइयोके स्नेहमे विवश हो गया। पर जरासिधने उसके प्रति जो उपकार किये थे, उनके कारण स्वामीके कामका विचार करता हुआ वह मातासे बोला, "हे माता! लोकमे माता-पिता और भाई बान्धव अत्यन्त दुर्लभ है। परन्तु इस अवसरपर स्वामीके कामको छोडकर भाइयोका काम करना अनुचित तथा अप्रशस्त है। इतना ही नही, युद्धके समय ऐसा करना हसीका कारण भी है। इस समय स्वामीका काम करता हुआ मै इतना ही कर सकता हूँ कि युद्धमे भाइयोको छोडकर दूसरे योद्धाओसे लडूं। युद्ध समाप्त होने पर यदि भाग्यवश हम लोग जीते रहे, तो हे मां ! मैं भाइयोसे अवश्य मिलूंगा। जाओ, मेरी ये बाते भाइयोसे कह दो।" यह कह कर कर्णने माताकी पूजा की और माताने उसके कहे अनुसार सब काम किया।

कुरुक्षेत्रकी समतल भूमिमे दोनो तरफकी सेनाओकी किलाबन्दी होने लगी। जरासिधकी सेनाके कुशल राजाओने अपनी सेनासे चक्र

व्यूहकी रचना की। चक्रव्यूहके चक्राकारकी सेनाके एक हजार आरे थे। प्रत्येक आरेके निकट एक एक राजा था। हर एक राजाके पास सौ-सौ हाथी, दो-दो हजार रथ, पाँच-पाँच हजार घोड़े और सोलह हजार प्यादे थे। इनके अतिरिक्त छह हजार राजा चक्रकी धारा के समीप इससे चौथाई सेना सहित मौजूद थे। राजा जरासिध बीचमे स्थित था और उसके समीप कर्ण आदि अनेक राजा थे। उनके बीचमे धृतराष्ट्र और गाधारी माताके पुत्र दुर्योधन आदि सब भाई खडे थे। बीचमे और भी अनेक राजा थे।

जब वसुदेवको पता चला कि जरासिधने अपनी सेनाको चक्र-व्यूहके रूपमे खडा किया है, तब उसने भी चक्रव्यूहको तोडनेके लिए अपने पक्षकी सेनासे गरुडव्यूहकी रचना की। रणमे शूरवीर तथा अनेक प्रकारके अस्त्रो-शस्त्रोसे लैस पचास लाख यादव कुमार उस गरुडके मुख पर खड़े थे। धीर वीर और पर्वतको जीतनेवाले अतिरथ पराक्रमी बलदेव और श्री कृष्ण उसके मस्तकपर खडे हुए। वसुदेव के अनेक पुत्र बलदेव और श्री कृष्णके रथकी रक्षा करने के लिए उनके पृष्ठ रक्षकके रूपमे खड़े हुए। राजा भोज बहुतसे रथोके साथ गरुडके पृष्ठभागो पर खडा हुआ। राजा भोजकी रक्षा के लिए दूसरे राजा उसके पीछे खडे किये गये। राजा समुद्रविजय अपनी सेना सहित उस गरुडके दाहिने पख पर खड़ा हुआ। इसके आजू-बाजू की रक्षाके लिए बहुतसे राजा अपनी-अपनी सेनाओ सहित सावधान खडे थे। बलदेवके पुत्र और युद्ध निपुण पाण्डव गरुडके बाये पक्षके पास खडे थे। इनके अतिरिक्त और भी अनेक राजा अपने-अपने स्थानपर लडनेको तैयार खडे थे। सबने कौरवोके बधका निश्चय किया हुआ था। सेनाके इस गरुडकी रक्षाके लिए और भी राजा और वीर नियुक्त चुस्त खडे थे। इस प्राकर वसुदेव निर्मित यह गरुडव्यूह राजा जरासिधके चक्रव्यूहको तोड़नेकी तैयारी कर रहा था।

: ३४ :

यादव जरासिंध युद्ध

जब कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमे एक तरफ जरासिंध और दूसरी ओर समुद्रविजय आदिकी सेनाएँ अपने-अपने व्यूह बनाकर युद्धके लिए तत्पर खडी थी, तब वसुदेवके हितचितक अनेक विद्याधर भी समुद्रविजयके पास आ पहुँचे। समुद्रविजयने उनका यथायोग्य सम्मान किया और हर्षसे कहा कि अब हम कृतार्थ हो गये।

वसुदेवके शत्रु विद्याधर जरासिधसे जा मिले।

इन्द्रके भडारी कुबेरने बलभद्रको दिव्यास्त्रोसे पूर्ण सिह विद्या का रथ दिया, जिसपर बलभद्र सवार हुआ और कृष्णको गारू रथ दिया जो अनेक आयुधोसे भरा था। भगवान् नेमिनाथ भी इन्द्रके भेजे रथ पर सवार हुए जिसका सारथी मातलि था और जो सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोसे लैस था। समुद्रविजय आदि समस्त राजाओने वानर ध्वजासे युक्त वसुदेवके शूरवीर पुत्र अनावृष्टिको सेनापति बनाकर उसका अभिषेक किया।

इधर राजा जरासिधने हर्ष पूर्वक महा शक्तिशाली राजा हिरण्य-नाभको सेनापतिके पद पर नियुक्त किया।

दोनो सेनाओंमें जंगी मारू बाजे बजते ही दोनों कटकोंकी चतु-रंग सेनाएं युद्धके लिए तैयार हो गयी। सैनिक एक दूसरेको बुलाने

लगे। युद्धके क्रोधसे उनकी भौहें टेढी हो गयी और शरीर क्रूर हो गये।

लड़ाई आरम्भ होने पर हस्तिसेना हस्तिसेनासे, घुडसेना घुड़सेना से, रथसेना रथसेनासे और प्यादे प्यादोसे लडने लगे। धनुषोंकी फिडचोकी झकार, रथोके शब्दो, गजोकी गर्जना, अश्वोके हिन-हिनाने और योद्धाओके सिहनादसे दसो दिशाए-तथा आसमान फटा-सा जा रहा था।

नेमिनाथके सौतेले भाई रथनेमिकी बैलकी ध्वजा थी, कृष्णके भाई अनावृष्टिकी हाथीकी ध्वजा थी और अर्जुनके झण्डेपर बन्दरका निशान था। ज्योही इन योद्धाओने जरासिधकी सेनाको जीतते देखा, उन्होने कृष्णके अभिप्रायको समझकर स्वय युद्ध करनेकी तैयारी की और उन्होने जरासिंधके चक्रव्यूहको भेदनेका निश्चय किया। नेमिनाथ ने शत्रुओंके हृदयमे भय उत्पन्न करनेके लिए इन्द्रप्रदत्त शाक्र शखको बजाया, अर्जुनने देवदत्त शखको और सेनापति अनावृष्टिने बलाहक नामक शखको बजाया। शखनादके होते ही उनकी सेनामे महान् उत्साह बढ गया और शत्रु सेनामे महाभय छा गया।

अनावृष्टिने जरासिधकी सेनाके चक्रव्यूहके मध्य भागको भेदा और रथनेमिने दाहिनी बाजूको और अर्जुनने पश्चिम और उत्तर दोनो पक्षोको भेदा। फिर यादवोके सेनापति अनावृष्टि और जरासिधके सेनापति हिरण्यनाभमे परस्पर युद्ध होने लगा। रथनेमि रुक्मीसे लडा और अर्जुन दुर्योधनसे लडने लगा। बाण पर बाण चलने लगे, उनकी वर्षा होने लगी। कलहप्रेमी नारद आकाशमें बैठा दूर से ही युद्धको देख कर बहुत हर्षित हो रहा था। अप्सराये आकाशसे योद्धाओपर पुष्पवर्षा कर रही थी।

थोड़ी देरमें रथनेमिने अपने बाणसे रुक्मीको मार गिराया। वसुदेव विजयार्द्धकी तरफ बढे और नौ भाइयोंने अपने सामने पड़ने-

वाले प्रत्येक राजाको मार डाला। बलदेव और वासुदेवके वीर पुत्रोंने अपने बाणोंसे वर्षा की। धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि सौ पुत्रों और पाण्डवोंके पाँच पुत्रोमें जो युद्ध हुआ उसे कहने लिखनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? युधिष्ठर शल्यके साथ, भीम दुशासनके साथ और वसुदेव शकुनिके साथ और अलूक नकुलसे लड रहे थे। इसके पश्चात् अर्जुन और दुर्योधन युद्ध करनेको तैयार हुए। दोनो ही खड्ग चलाने और बाण विद्याओमे प्रवीण थे। महायुद्ध हुआ। पाण्डवोने धृतराष्ट्रके कुछ पुत्र मारे और कुछको मरे समान कर दिया।

जरासिंधकी सेनामे कर्णने कान तक धनुषकी डोरी खीचकर बाण-पर-बाण मारे और कृष्णके पक्षके जो योद्धा उसके सामने आये सबको घायल कर दिया।

यह तो बराबरके महा योद्धाओमे युद्ध हुआ। फिर दोनो पक्षोके महा सेनापतियो—अनावृष्टि और हिरण्यनाभ—मे महारौद्र युद्ध हुआ। हिरण्यनाभके अनेक बाणोकी मारसे अनावृष्टि घायल हो गया। अनावृष्टि उससे कम तो था नही। उसने भी हिरण्यनाभको बाणोसे खूब घायल कर दिया। सेनापति हिरण्यनाभने अनावृष्टिकी ऊची ध्वजाको छेद गिराया और बदलेमे अनावृष्टिने ने भी हिरण्यनाभकी ध्वजा को नीचे गिरा दिया। फिर दोनो ने एक दूसरे के रथको चकनाचूर कर दिया और वे आमने-सामने खड्गोसे लडने लगे। उनके एक हाथमे तलवार और दूसरेमे ढाल थी। वह इसके वारको मौका देख कर टाल जाय और वह इसके वारसे बच जाय। दोनो ही युद्ध विद्यामे प्रवीण थे। फिर मौका देखकर अनावृष्टिने हिरण्यनाभ पर तलवारका ऐसा वार किया, कि उसकी दोनो भुजाए कट कर पृथ्वीपर गिरपडी, रुधिरका फव्वारा आकाशकी ओर छुटा और परिणाम स्वरूप जरासिंधका वह सेनापति पृथ्वीपर गिर पड़ा। हिरण्यनाभके योद्धा पीछे हट गये और अनावृष्टि फिरसे अपने

रथपर-सवार हो कर अपनी सेना सहित सहर्ष बलदेव और श्री कृष्णके पास आया। सभी सैनिकोने "सेनापतिकी जय जय" के नारे लगाये। अनावृष्टिकी प्रशसा की। बलभद्र और श्री कृष्ण बैल-की ध्वजा वाले, रथनेमि हाथीकी ध्वजा वाले और अनावृष्टि बन्दर-की ध्वजा वाले अर्जुनसे बडे स्नेहसे मिले।

इस प्रकार अनावृष्टिने जरासिधके सेनापति हिरण्यनाभको मारा और रथनेमि और अर्जुनने चक्रव्यूहको भेद दिया। सेनापति हिरण्यनाभके मारे जाते ही उसकी समस्त सेनामे विषाद छा गया। इधर इसी समय सूर्य भी अस्त हो गया। दोनो पक्षोकी सेनाए अपने-अपने डेरोमे चली गयी, यादवोकी सेना शत्रुको परास्त कर देने के कारण हर्षसे कूदती-नाचती-घूमती, समुद्र समान गरजती बहुत ही शोभायमान हो रही थी।

: ३५ :
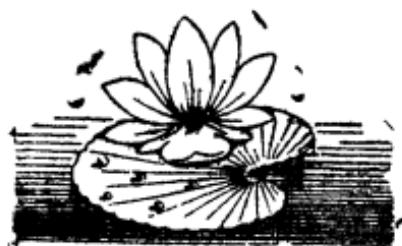
जरासिंध वध

सूर्योदय होते ही फिर लडाईकी तैयारी होने लगी । जरासिंघ और कृष्ण हथियारोंसे लैस अपने योद्धाओको लेकर युद्धके लिए निकले । उन्होने अपनी-अपनी सेनाओको पूर्ववत् चक्रव्यूह और गरुड-व्यूहके रूपमें खडा किया ।

राजा जरासिधने अपने पास बैठे हुए हस नामक मत्रीसे सामने खडे यादवोके नाम और निशान पूछे । उसे तो यादवोसे ही द्वेष था, दूसरे राजाओसे नही । हस मत्रीने एक एक करके कृष्ण, रथनेमि, बलभद्र, युधिष्ठर और अनावृष्टिकी तरफ सकेत करके बताया । हस मत्रीने जरासिधको बताया कि इस अनावृष्टिने ही कल उसके सेनापति हिरण्यनाभको मारा था । फिर मत्रीने भीम, समुद्रविजय, कृष्णके बडे भाई अक्रूर, राजा सत्य, नम्यकुमार, राजा भोज, कृष्णके बडे भाई जरत्कुमार, राजा मरूराज, पद्मरथ, राजा सारण, राजा अग्निजितका पुत्र राजा मेरूदत्त और अति तेजस्वी विदुरत कुमारकी ओर सकेत करके उनके चिह्न सहित बताया ।

मत्रीकी बात सुन कर राजा जरासिंघने अपने सारथी को यादवोंकी तरफ रथ बढानेका आदेश दिया । आज्ञा पाते ही सारथीने तुरन्त यादवोपर रथ चला दिया और जरासिंध पर बाण-पर-बाण छोडने लगा । जरासिघके पुत्र कोप करके यादवोंसे रण क्रीडा करने लगे ।

युद्ध आरम्भ होनेपर बराबर वाले योद्धा बराबरवाले योद्धाओसे लडने लगे। जरासिधका पुत्र कालयवन सहदेवसे युद्ध करने लगा। इसी प्रकार दूसरे अनेक राजा अपने बराबरवाले राजाओसे लडे। वसुदेवके पुत्रोका प्रतिहरके पुत्रोसे महायुद्ध हुआ। जब जरासिधके पुत्र कालयवनने वसुदेवके बहुतसे पुत्रोको मौतके घाट उतार दिया, तब सारण नामक यदुकुमारने क्रोधसे कालयवनपर खड्गसे प्रहार करके उसे मौतके घाट उतारा। कालयवनका मरना तो जरासिधका सर्वस्व नाश था। इसपर जरासिधके दूसरे पुत्रोने आकर कृष्णको घेर लिया और वे खूब लडे, पर श्री कृष्णने अपने अर्द्धचन्द्र बाणसे उनको यमपुर पहुँचा दिया।

जब जरासिधने अपने पुत्रोको रणभूमिमे मरे पडा देखा तो वह क्रोधमे कृष्णके पास आकर अपने बाणोको धनुपपर चढा कर कृष्ण पर छोडने लगा। दोनोमे महा भयकर युद्ध हुआ। पहले तो उनमे सामान्य शस्त्रो जैसे तीर, तलवार और कटारी आदि से लडाई हुई। फिर वे देवोपुनीत दिव्यअस्त्रोसे लडने लगे। जरासिधने कृष्ण पर नाग बाण चलाया, जिसके परिणामस्वरूप हजारो मायामयी नाग वहाँ आ गये। तब माधव कृष्णने राजा जरासिधपर गारुड बाण छोडा और सब सापोको नष्ट कर दिया। फिर जरासिधने कृष्णपर मेघबाण छोडा, जिसके प्रभावको नष्ट करनेके लिए कृष्णने पवन बाणसे उसका निराकरण किया। फिर जरासिधने कृष्णपर वायव्य बाण छोडा, जिसके उत्तरमें कृष्णने अन्तरीक्ष अस्त्र चलाया। इसके पश्चात् जरासिध और कृष्णमे दूसरे अनेक प्रकारके दिव्य-बाणोसे युद्ध हुआ। जब जरासिधके सब वार और उद्यम व्यर्थ गये, तब उसने अपने धनुषको पृथ्वीपर डाल दिया और अपने चक्रको सहस्र यक्ष इस चक्रके सेवक थे। चक्रका विचार आते ही वह जरासिधके हाथोमे आ गया। जरासिधने अपनी भौंहें टेढी करके चक्रको कृष्ण पर चलाया। आकाश मे चक्रके तेजसे सूर्य

का तेज दब गया। जरासिंधके चक्र छोडते ही जरासिंधके पक्षके दूसरे अनेक राजाओने भी एक साथ वैसे ही चक्र छोड़े। चक्रोंको आता देखकर कृष्णने शक्ति और गदा सम्भाली और बलभद्रने हल और मूसल, भीमने गदा, अर्जुनने धनुष आदि अनेक शस्त्र, अनावृष्टि ने परिघ और युधिष्ठरने शक्ति सम्भाली। कृष्णके ये सब साथी इस प्रकार चक्रसे लडने के लिए तैयार हो गये। समुद्रविजय आदि नौ भाई साधवान होकर चक्रकी ओर अनेक शस्त्र चलाने लगे और कृष्ण चक्रके सामने खडे थे। सामन्तोने उस चक्रको अनेक प्रकारसे रोका, परन्तु चक्र पीछे न हटा, वरन् मित्रके समान शीघ्र ही आकर प्रदक्षिणा देकर कृष्णके दाहिने हाथमे आ बैठा। कृष्णके दाहिने हाथमे शख, चक्र और अकुशके चिह्न थे। ज्योही चक्र कृष्णके हाथ आया, तभी आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई और देवोंने कहा कि यह कृष्ण नौवा वासुदेव या नारायण प्रकट हुआ है। शीतल मन्द, सुगंधित पवन अनुकूल चलने लगी। सभी यादव बडे हर्षित हुए।

जब जरासिंधने चक्र को कृष्णके हाथमें देखा तब उसने सोचा, कि हाय! यह चक्र भी बेकार हो गया। मैने अपने चक्ररत्न और पौरुषसे समस्त दिशाओको व्यापत कर रखा था और तीन खण्डका शक्तिशाली अधिपति बना हुआ था, पर आज मैं पौरुष हीन हो गया, मेरा पुरुषार्थ खण्डित हो गया। जब तक दैव प्रबल है तभी तक चतुरग सेना, काल, मित्र और पुरुषार्थ काम देते है। दैवके निर्बल होते ही ये सभी निरर्थक हो जाते है। ज्ञानियोकी यह बात सत्य ही है। मैं गर्भसे ईश्वर था और कोई बडा पुरुष भी मेरी आज्ञाका उलघन नही कर सकता था, पर आज यह क्षुद्र गोप दैव-योगसे मुझे जीतनेवाला बन गया। इसके गर्भ और जन्मके समय क्लेश हुआ था, यह सतवांसा जन्मा था और ग्वालिनोमे पला था। यदि विधाताको ऐसा साधारण आदमी ही मुझे जीतनेवाला देखना था, तो इसे बचपनमें गोकुलमें अनेक कष्ट क्यों उठाने पडे? इस-

लिए विधिको धिक्कार है। दैवकी मूर्खताके समान और कौन सी मूर्खता होगी ? विधिकी यह चेष्टा सब लोगोंको अन्धा करनेमें प्रवीण है और धीर-वीर मनुष्योंके धैर्यको भी नष्ट करने वाली हैं। इस राजलक्ष्मी को भी धिक्कार है, जो वेश्याके समान कभी इस घर, कभी उस घर जाती है। ऐसे विचार जरासिंधके मनमें आये। उसने अपनी मृत्यु निश्चय रूपसे निकट समझते हुए भी प्रकृतिसे निर्भीक होनेके कारण क्रोधसे कृष्णसे कहा, "अरे गोप ! तू चक्रको क्यो नही चलाता ? तू क्यों समयकी उपेक्षा कर रहा है ? जो करना है, शीघ्र कर। अरे मूर्ख, समयकी उपेक्षा करनेवाला दीर्घ सूत्री मनुष्य अवश्य ही नष्ट होता है।"

जरासिंधके उपर्युक्त वचन सुन कर स्वभावसे विनयवान तथा स्नेहशील कृष्णने कहा, "मै चक्रवर्ती पैदा हुआ हूँ, यह चक्र मेरे हाथ मे आया है, इसलिए आप मेरी आज्ञा स्वीकार करें और सुखसे राज करे। यद्यपि आप हमारी बुराईमे प्रवृत्त हो, पर हमारे मनमे कोई द्वेष नही है, प्रीति ही है। हम प्राणी मात्रमे प्रसन्न है, किसी को भी मारने की हमारी इच्छा नही है।"

कृष्णके ये वचन सुनकर जरासिंधने गर्वसे कहा, "अरे, यह चक्र मेरे लिए अलात चक्रके समान है, तुम इसे पाकर क्यो गर्व कर रहे हो ? तूने अभी तक कल्याण देखा ही नही। तू तो जन्मसे दरिद्री है। जो छोटा आदमी है, वह थोडीसी सम्पदा पाकर गर्व करने लगता है। पर जो महा पुरुष है, लक्ष्मी नाथ है उन्हे गर्व या मद कब होता है ? मै तुझे, यादवो और तेरे सभी साथी राजाओ को समुद्रमे डुबो दूँगा।" इस पर चक्रवर्ती कृष्णने कुपित होकर चक्ररत्नको घुमाकर इस प्रकार छोड़ा कि उसने जरासिंधके वक्षस्थल-को भेद दिया। जरासिंधको मारनेके पश्चात् वह चक्र फिर कृष्णके हाथमें वापिस आ गया। फिर कृष्णने पांचजन्य शंखको बजाया

और तीर्थंकर नेमिनाथ, अर्जुन और सेनापति अनावृष्टिने भी अपने शंख बजाये। ये अभयकी घोषणाए थी। स्वसेना और परसेना अपना-अपना पथ छोडकर कृष्णकी आज्ञाकारिणी हो गई।

राजा दुर्योधन, द्रोण और दुशासन आदिने ससारसे विरक्त होकर मुनि विदुरसे जिन दीक्षा ले ली। राजा कर्णने भी सुदर्शन वनमे मोक्ष फलदायक जिन दीक्षा ले ली। जहाँ कर्णने दीक्षाके समय स्वर्णके अक्षरोंसे भूषित अपने कर्ण कुण्डल छोडे थे, वह स्थान कर्ण स्वर्ण कहलाने लगा।

इसके पश्चात् सभी अपने-अपने स्थानको चले गये। श्री कृष्ण महाभारतमे जरासिधको मरा पडा देख कर अति व्याकुल हुआ। जरासिध पडा हुआ ऐसा मालूम हो रहा था, मानो समुद्रमें सूर्य पडा हो। उसकी मरण दशा देखकर कृष्णने रुदन किया, उससे उसकी आखे लाल होकर जपापुष्पके समान दीखने लगी और कृष्ण के जो आसू पडे वे जरासिधको दिये जाने वाले जलके समान थे।

गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे कहा, "हे श्रेणिक! यह प्राणी शुभ कर्मोंके उदय होने पर सम्पदाका भोगता है, वह सम्पदा प्रचण्ड पुरुषोके प्रतापका उलघन करने वाली होती है और जब शुभ कर्मोका क्षय होता है, तब वे विपत्तियां भोगते है। इसलिए भक्त लोगोको जिन मतमे स्थिर होकर मोक्ष प्राप्तिमे सहायक होनेवाले निर्मल तपको करना चाहिए।

: ३६ :

कृष्ण दिग्विजय

दूसरे दिन सूर्योदय होते ही श्री कृष्णने दोनो सेनाओंके घायल सैनिकोकी मरहम पट्टी कराई और मृतक राजा जरासिध आदिके अतिम सस्कार कराये।

एक दिन समुद्रविजयादि यादव राजा सभा मण्डपमे श्री कृष्णके साथ बैठे हुए वसुदेवके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वसुदेवको अपने पुत्रो और प्रद्युम्न कुमार तथा सबुकुमार नातियोके साथ विजयार्द्ध पर्वतपर गये बहुत समय हो गया था पर आज तक उनकी कुशलता का कोई समाचार न आने से उसके सभी भाई चिन्तित थे। उस समय उनके हृदय वसुदेवके लिए गाय और बछड़ेके समान वात्सल्य से भरपूर थे। उसी समय आकाशमे चमकती हुई बिजलीके समान अपने प्रकाशमे सभी दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली विद्याधरियाँ वेगवती आदि वहाँ आ पहुँची। उनके साथ नागकुमारी विद्याधरी भी थी। यह नागकुमारी वास्तवमे वेगवती की दादीका जीव थी। वह ऋषिदत्ता तपस्विनी जिन-धर्मका पालन करके देवी हुई थी।

सभाके बीचमें आकर नागकुमारी सबको आशीर्वाद देती हुई राजा समुद्रविजयसे कहने लगी, "हे राजन्! गुरुजनोने आप सबको

जो आशीर्वाद दिये हैं, वे सफल हो गये । यहाँ वासुदेव—कृष्णने राजा जरासिंधको नष्ट किया है । उधर उसके पिता वसुदेवने शत्रु विद्याधरोंको नष्ट कर दिया है । वसुदेव पुत्र-नातियों सहित सकुशल है और आप सबकी कुशलता चाहता है । उसने बडोंको प्रणाम और छोटोंको आसीस कही है ।"

विद्याधरीसे वसुदेव आदि की कुशलताके समाचार सुनने से अति हर्षित और रोमाचित हो सब राजाओंने पूछा कि वसुदेवने विद्याधरो को किस प्रकार नष्ट किया है । तब नागकुमारी देवीने उन्हे बताया, "युद्धमें निपुण वसुदेवने विजयार्द्धगिरि जाकर अपने श्वसुर और सालो आदि विद्याधरोकी महायतासे जरासिधकी सहायताके लिए यहाँ रणमे आने को उद्यत विद्याधरोको रास्तेमे ही रोककर उनसे घोर युद्ध करना शुरू कर दिया । इम युद्धमे प्रलयकी आशका होने लगी और सबके चित्त भयसे व्याकुल हो गये । स्वय वसुदेव प्रद्युम्न कुमार और सबुकुमारने सामने पड़ने वाले सभी शत्रुओंको बड़ी चपलतासे मौनके घाट उतारा । इसी अवसरपर सतुष्ट हुए देवोने आकाशमे वसुदेवके पुत्र कृष्णके नौवा नारायणहोने की घोषणा की और बताया कि उसने चक्रधारी हो कर अपने शत्रु राजा जरासिध को उसीके चक्रव्यूहमे मार डाला है । इसी समय आकाशसे चादनीके समान रत्नमयी वृष्टि वसुदेवके रथपर हुई । उक्त वाणी सुनकर सभी शत्रु विद्याधर भयभीत होकर वसुदेवकी शरणमें आने लगे । इतना ही नही, हारे हुए विद्याधरोने अपनी कन्याए वसुदेवके पुत्रों, प्रद्युम्न कुमार तथा सबुकुमार आदि को विवाहमे दी । वसुदेवकी प्रेरणा से ही यह शुभ समाचार सुनाने हम यहाँ आयी है । नारायण की भक्तिसे प्रेरित होकर बहुतसे विद्याधर राजा तरह-तरह के उपहार लेकर वसुदेवके साथ यहाँ आ रहे हैं ।"

नागकुमारी देवी आदि विद्याधरियोंके यह समाचार सुनाते ही आकाशमे विद्याधरोंके विमानोंके समूह छा गये । विमानोसे उतर

कर विद्याधरोंने बलदेव और वासुदेवको प्रणाम करके तरह-तरहके उपहार भेट किये। पिता वसुदेवको देखते ही बलदेव और श्री कृष्ण ने उठकर प्रणाम किया और वसुदेवने उन्हे छातीसे लगा लिया और आशीर्वाद दिया। फिर वसुदेवने सभी बडे भाइयोंको प्रणाम किया। बलभद्र और वासुदेवने आये हुए विद्याधरोका सम्मान किया और उनके दर्शन करके अपने जन्मको सफल माना।

इसके पश्चात् बलदेव और कृष्ण दोनो भाइयोने पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थान किया। अब उनके सब मनोरथ सिद्ध होने से वे आनन्दित थे। जिस स्थान पर जरासिधका वध हुआ था। उस स्थान पर यादवोने विजय उल्लास्से बडा आनन्द मनाया और वह स्थान आनन्दपुरके नामसे प्रसिद्ध हो गया। वहाँ हरिने अनेक जिन-मन्दिरोका निर्माण किया। फिर रत्न मण्डित चक्रकी पूजा करके भरत क्षेत्रको जीता। उसने तीनो खण्डोके देवों, दानवो और मानवोपर विजय प्राप्त की। आठ वर्षमे दिग्विजय प्राप्त की। कृष्णने अब सभी जीतने योग्य राजाओको जीता। फिर वह कोटि-शिलाकी ओर आया जो एक करोड मुनियोके मोक्ष जानेके कारण महा तीर्थ है। उसने उस पवित्र शिलाकी प्रदक्षिणा देकर प्रणाम किया। सिद्धोको स्मरण करके कृष्णने उस कोटिशिलाको अपनी भुजाओंसे चार अँगुल ऊपर उठाया। कृष्णसे पहले आठ नारायणों (१) त्रिपृष्ठने सिरसे ऊपर तक, (२) द्विपृष्ठने मस्तक तक, (३) स्वयभूने कण्ठ तक, (४) पुरुषोत्तमने वक्षस्थल तक, (५) पुरुषसिंह या नृसिंहने हृदय तक, (६) पुरुष पुण्डरीकने कमर तक, (७) दत्तक ने जांघों तक और (८) लक्ष्मणने घुटनों तक कोटिशिला उठाई थी। इस कमी का कारण यह था कि युग-युगमे कालभेदसे प्रधान पुरुषोकी शक्ति भिन्न-भिन्न होती गयी। कृष्णके द्वारा शिला उठाये जानेसे समस्त सेनाने जान लिया कि श्री कृष्ण महान शारीरिक बलको रखनेवाला है। दिग्विजयके पश्चात् श्री कृष्ण अपने बांधव

जनोंके साथ द्वारिका लौटे जहाँ उनके वृद्धजनोने उनका बडा अभिनन्दन किया । इस महान् स्वागत तथा अभिनन्दनके बीच उन्होंने द्वारिका में प्रवेश किया । श्री कृष्ण और बलभद्रके साथ जो भूमिगोचरी और विद्याधर राजा लौटकर आये थे उनको हर एकके योग्य सामग्री तथा ठहरनेके स्थान दिये गये ।

इसके पश्चात् समस्त विद्याधर राजाओ आदि ने श्री कृष्णका राज्याभिषेक करके आधे भरत क्षेत्रका स्वामी घोषित किया ।

अब चक्ररत्नधारी राजा श्रीकृष्णके सामने जरासिधके पुत्र तथा अपने साथी राजाओको उनके योग्य राज देनेका महान काम था । सबसे पहले उन्होने जरासिधके द्वितीय पुत्र सहदेवको राजगृहका राजा बनाया और उसे निरहकार होकर मगध देशका एक चौथाई भाग प्रदान किया । राजा उग्रसेनके पुत्र द्वारको मथुरापुरी दी और महानेमिको शौर्यपुरका राज दिया । श्री कृष्णने पाण्डवोको बडी प्रीति के साथ उनका प्रिय हस्तिनापुर दिया और राजा रूधिरके पुत्र रुक्मनाभको कोशल देश दिया । यह रुक्मनाभ जरासिधके सेनापति हिरण्यनाभका छोटा भाई था । इतना ही नही राजा कृष्णने सब साथियो तथा विद्याधरोंको स्थान दिये ।

इस प्रकार राज बाटकर अपने साथी राजाओ तथा जरासिधके पुत्रको सतुष्ट करके विदा किया और यादव राजा द्वारिकापुरीमे आनन्द-सुखसे रहने लगे ।

श्री कृष्णके सात रत्न थे—(१) शत्रुओको वशमे करनेवाला सुदर्शन चक्र, (२) जिसकी ध्वनि सुन कर शत्रु कम्पायमान हो जाय ऐसा सारग धनुष, (३) सुनन्दा खड्ग, (४) कौमदी गदा, (५) अमोघ मूल शक्ति, (६) पाचजन्य शख और (७) कौस्तुभ मणि ।

इन सात रत्नोंसे श्री कृष्णको अतुल प्रताप प्राप्त हुआ। ये सातो रत्न दिव्यमूर्ति हरिके लिए अत्यन्त हितकारी सिद्ध हुए।

बलभद्रके पास भी दिव्य आयुध अपराजित हल, शक्ति मूसल, दिव्य गदा और रत्नमाला इत्यादि रत्न थे।

दिव्य आयुधोंसे युक्त महा प्रतापी श्री कृष्ण और बलभद्र अपनी अनेक रानियों और अगरक्षक देवोंके साथ भक्तिपूर्वक धर्मपालन करते हुए द्वारिकामे सुखसे रहने लगे।

: ३७ :

द्रौपदी हरण

श्री कृष्णकी प्रबलतासे हर्षित पाण्डव हस्तिनापुरमे सुखसे राज कर रहे थे। उनके अखण्ड राज्यसे समस्त प्रजाको बडा सुख हुआ और वह दुर्योधन आदिको भूल गयी।

एक दिन सब जगह् से बेरोक-टोक घूमनेवाले, क्रुद्ध हृदयी और स्वभावत कलह प्रेमी नारद वहाँ पाण्डवोके घर आये। पाण्डवोने नारदका बडा आदर सम्मान किया। पर जब वह रनवासमे गया, वहाँ द्रोपदी अपने आभूषण आदि पहननेमे व्यस्त थी और उसने नारदको प्रवेश करते न देखा। वह पाससे गुजर गया। नारद तो द्रोपदीकी उपेक्षाके मारे क्रोधसे ऐसा जल गया, जैसे तेल गिरने से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। सच है अनादरसे पीड़ित व्यक्ति सज्जनके मौके या परिस्थिति को नही समझता। झट से उसने द्रोपदीको इस अनादर का मजा चखानेका निश्चय किया। वह पूर्वार्द्ध भरत क्षेत्रके धातुखण्डमे अगदेशकी अमरकका नगरीमें गया। वह वहाँ अति कामी और स्त्रियोंके बहुत लोलुपी राजा पद्मनाभसे मिला।

राजा पद्मनाभ यात्रिक नारदसे यह मालूम करने की इच्छासे कि क्या उसने उसकी रानीसे अधिक सुन्दर स्त्री कही देखी है, उसे अपने महलमे ले गया। सभी रानियोने नारदको प्रणाम किया। इसके पश्चात् राजाने नारदसे पूछा, "महाराज क्या आपने मेरी रानीसे अधिक सुन्दरी किसी और स्थान पर भी देखी है ?"

नारद समझ गया कि राजाको अपनी रानियोके सौन्दर्यपर गर्व है और वह विषयाभिलाषी है। नारदने तुरन्त राजा पद्मनाभसे द्रोपदीके लोकातीत रूप-लावण्यका वर्णन करके उसके हृदयमे द्रोपदी-की अभिलाषाका पिशाच लगा दिया। फिर नारद यहाँ-वहाँ के नगरोका हाल सुनाकर वहाँसे विहार कर गया। पर राजा तो व्याकुल रहने लगा। उसने द्रोपदीकी प्राप्तिके लिए पातालवासी देवता सग्रामककी आराधना की। वह देवता अर्जुनकी स्त्री द्रोपदी-को सोती हुई अवस्थामे सेज सहित उठा लाया।

राजा पद्मनाभके सर्वतोभद्र नामक राजमहलकी वाटिकामें द्रोपदीको छोड कर देवने राजाको सूचना दी। राजा तुरन्त वाटिका मे द्रोपदीके पास आया। उसे वह साक्षात् देवांगना सी लगी। उधर द्रोपदीने अपने आपको अपरिचित स्थान मे देखा तो उसने तमाम बात को स्वप्न समझा और फिरसे सो गई।

सुषुप्ता द्रोपदीका अभिप्राय समझकर राजा पद्मनाभने धीरे-धीरे उसके पास जाकर मधुर वचनोसे कहना आरम्भ किया, "हे विशाल नेत्रे! देखो, वह स्वप्न नही है। तुम धातकी खण्ड द्वीपकी अमरकका नगरीमे हो और मै राजा पद्मनाभ हूँ। नारदने तुम्हारे मनोहर रूप-सौन्दर्यका बखान किया था। और मेरा आराधित देव ही तुम्हे यहाँ लाया है।"

राजाके ये वचन सुनकर महा सती द्रोपदी चकित हो गयी। वह मनमे सोचने लगी कि यह क्या है और वह तो बडे सकट मे आ फसी है। तुरन्त उसने मनमे संकल्प किया कि जब तक वह अपने पतिदेव अर्जुनका दर्शन न करेगी, तब तक उसके अन्न-जल और शारीरिक सस्कार और शृगार का त्याग रहेगा। ऐसा नियम लेकर उसने अपनी वेणीको खोल दिया ताकि अर्जुन ही उसे बाधे। अब द्रोपदी शीलके वज्रमय कोटके भीतर स्थित होकर प्रकट रूपसे कामसे

पीडित राजा पद्मनाभको सम्बोधित करके बोली, "बलदेव और कृष्ण नारायण मेरे भाई हैं, धनुर्धारी अर्जुन मेरा पति है, पतिके बडे भाई महावीर भीम अतिशय वीर है और पतिके छोटे भाई सहदेव और नकुल यमराजके समान है। जल और स्थल मार्गसे उन्हे कोई नही रोक सका। मनोरथके समान शीघ्रगामी उनके रथ समस्त पृथ्वीपर विचरण करते हैं। इसलिए हे राजन्! यदि तू अपना भला व कल्याण चाहता है तो सर्पिनीके समान मुझे शीघ्र ही उनके पास वापिस भेज दे।" पर पद्मनाभकी तो सभी सदिच्छाए दूर हो चुकी थी। इसलिए पद्मनाभ पर द्रोपदीकी इन बातो का न कोई प्रभाव होना था, न हुआ। उसने अपनी हठ न छोडी।

तब वह महासती अपनी बुद्धिसे एक उपाय सोच कर दृढतापूर्वक उसे कहने लगी, "हे राजन्! यदि मेरे स्वजन—ससुराल और पीहरके आदमी एक मासमे यहाँ न आये, तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह करना। यह सुनकर राजा "ऐसा ही होगा" कह कर चुप हो गया, पर वह अपने राजलोककी चतुर स्त्रियो द्वारा द्रोपदीको अपने अनुकूल करने और तरह-तरहके प्रिय पदार्थोंसे उसे फुसलानेमे लगा रहा। पर वह सती अपने निश्चयपर दृढ रही, टस-से-मस न हुई। वह निर्भीक होकर अन्न-जलका त्याग करके अश्रुपात करके अपने पतिके आने की बाट देखने लगी।

इधर प्रभात होते ही हस्तिनापुरमे द्रोपदीको महलमें न देखकर पाँचो पाण्डव व्याकुल हो उठे, किंकर्तव्यविमूढ बन गये। जब वे निरुपाय हो गये, तब उन्होने कृष्णके पास जाकर द्रोपदीके न मिलने, कही चले जाने का समाचार दिया।

कृष्ण तो पराये दुखको अपना दुख समझने वाले थे। झट से उन्होंने समस्त भरत क्षेत्रमे द्रोपदीकी तलाश कराई। पर द्रोपदी कही भी न मिली। तब सब यादवोने विचार करके यह निष्कर्ष निकाला कि

कोई क्षुद्र व्यक्ति द्रोपदीको इस क्षेत्रसे किसी दूसरे क्षेत्रमें ले गया है। फिर वे पारस्परिक मंत्रणासे द्रोपदीका पता लगाने की युक्ति सोचने लगे।

उसी समय नारद जी वहाँ आ पहुँचे। समस्त यादवोसे भरी सभामे नारदने श्री कृष्णसे कहा, "हे कृष्ण! मैंने धातकीखण्डमें अमरकका नगरी में राजा पद्मनाभके महलमे अति दुर्बल, अश्रुपात करती और अन्न-जल त्यागे द्रोपदी देखली है।" राजा पद्मनाभकी स्त्री आदर से उसकी सेवा कर रही है। पर द्रोपदीका तो मात्र शील ही आधार है। वह लम्बे-लम्बे निश्वास-पर-निश्वास छोडकर आपकी प्रतीक्षा कर रही है। आप जैसे वीर भाइयोके होते हुए द्रोपदी शत्रुके घरमे रहे ?"

द्रोपदीके सम्बन्धमे नारदसे यह समाचार पाकर कृष्ण आदि सभी अति हर्पित हुए और नारदकी प्रशसा करने लगे। श्री कृष्णने कहा, "वह दुष्ट पद्मनाभ द्रोपदीका हरण करके कहाँ जायेगा ? मृत्यु के इच्छुक उस दुराचारीको अभी यमलोक भेजता हूँ।" इस प्रकार अपना रोप प्रकट करके श्री कृष्ण द्रोपदीको लाने के लिए तैयार हो गये। वासुदेव दक्षिणके तटके साथ-साथ रथपर चढ कर चल पडे। लवण समुद्रके अधिष्ठाता देवने कृष्णको देवोपुनीत छह रथ दिये, जिनमे बैठकर वह और पाण्डव धातुकी खण्डके भरत क्षेत्रमे पहुँच गये और अमरकका नगरीके उद्यानमे डेरे डाल दिये। उनके साथ कोई सेना न थी।

जब राजा पद्मनाभको कृष्ण तथा पाण्डवोके आने की सूचना मिली, तब वह अपनी चतुरग सेना लेकर उनसे लडने के लिए नगरसे निकला। पर पाण्डवोने उसे युद्धमे पराजित कर दिया और वह भाग कर अपने नगरमे जा घुसा और नगर द्वार बन्द करा दिये। पाण्डवोके लिए द्वार तोड कर अमरकका नगरीमे प्रवेश करना कठिन

था। तब कृष्णने द्वार तोड़ दिये और नगरको चूर-चूर कर दिया। नगर निवासी व्याकुल होकर भागने लगे। तब राजा पद्मनाभ, राजदरबारी और नगरके विशिष्ट लोग द्रोपदीकी शरणमें गये। सभी भयसे काप रहे थे। राजाने द्रोपदीसे निवेदन किया, "हे देवी! हे दयावती ! हे सौम्य ! हे पतिव्रते ! हमे क्षमा करो, हमें अभय-दान दो। मैं अपराधी तुम्हारी शरण आया हूँ।"

तब शीलवती और कृपालु द्रोपदीने राजासे कहा, "तुम स्त्रीका भेष धारण करके श्री कृष्णकी शरण जाओ। वह नरोत्तम महा दयालु है। जो व्यक्ति अपराध करके भी उनके चरणोमें पडते है, वे उनको अवश्य क्षमा करते है। वे सब पर दयावान है। स्त्री और बालक पर वे अति दयावान है। जो शस्त्र और युद्धसे डरते है उनको कृष्ण कभी नही मारते।"

द्रोपदीकी बात मान कर राजा पद्मनाभ स्त्रीका भेष बनाकरके अपनी रानियो सहित कृष्णके पास गया और क्षमा मांगी। पृथ्वी-पति कृष्णने उन्हे क्षमा प्रदान की, अभयदान दिया।

द्रोपदीने कृष्णके पास आकर प्रणाम किया और कुशल क्षेम पूछी और कृष्णने भी उसकी कुशलता पूछी। तब अर्जुनने द्रोपदी को छातीसे लगा कर उसकी समस्त विरह व्यथा दूर की, उसकी चोटी बाध कर द्रोपदीकी प्रतिज्ञा पूरी की। द्रोपदीने स्नान किया। कृष्ण, पांचो पाण्डव और द्रोपदीने भोजन किया। अब द्रोपदीका सब दुख दूर हो गया।

कृष्ण द्रोपदीको अपने रथमे चढा कर समुद्र तट पर आया और अपना शख बजाया जिसके शब्द मे दशो दिशाए गूज उठी।

रास्तेमे भीमने अपने कौतुकी स्वभावसे कृष्णकी शक्तिकी परख-के लिए नावको छिपा दिया। पर कृष्ण द्रोपदी सहित दूसरे तटपर पहुँच गया। बात खुलने पर कृष्ण पाण्डवोसे बडे विरकचित हुए

और कहने लगे, "प्रथम तो बड़ो से हसी करना ठीक नही है और यदि उनको प्रसन्न करने के लिए हसी करनी भी हो, तो मौका तथा समय देखकर उनका भाव (मूड) देखकर ही करनी चाहिए, अन्यथा नही।" पर पाण्डवोने तो हसी करते समय इनमे से किसी बात का भी विचार न किया था। इसलिए कृष्ण उनमे उदास होकर कहने लगे, "हे कुपाण्डवो! मनुष्य से न हो सकने योग्य मेरे अमानुषिक काम तुम जगतमे अनेक बार देख चुके हो। फिर भी तुम्हारा सन्देह न गया। इस गगाको पार करनेमे तुमने मेरी क्या शक्ति देखी?" इस प्रकार उलाहाना देकर वे सब हस्तिनापुर आये।

हस्तिनापुर मे श्री कृष्णने अपनी बहन सुभद्रा और अर्जुनके पौत्र परिक्षतको हस्तिनापुरका राज दिया और पाण्डवोको वहाँ से निकाल दिया।

इसके पश्चात् कृष्ण द्वारिकापुरी लौट गये और पाण्डव श्री-कृष्णके आदेश अनुसार हस्तिनापुर छोडकर दक्षिण मथुरामे जा बसे।

: ३८ :

नेमिनाथ दीक्षा कल्याणक

एक दिन युवा नेमिकुमार कुबेरके द्वारा भेजे हुए वस्त्राभूषण आदिसे सुशोभित राजाओ तथा बलदेव और कृष्ण आदि के साथ यादवोसे भरी कुसुमचित्रा सभामे गये। राजाओंने अपने-अपने आसन छोडकर उन्हे नमस्कार किया। श्री कृष्णने भी आगे बढकर उनका स्वागत किया। फिर वे दोनो सिहासन पर विराजमान हो गये। और वे दोनो सिहासन पर बैठे हुए दो इन्द्रों या दो सिहोके सदृश सुशोभित हो रहे थे।

उस समय सभामे बलवानोके बलकी चर्चा चल पडी। तब किसीने अर्जुनकी प्रशसा की, तो किसीने युधिष्ठर की। नकुल, सहदेव, बलभद्र और श्री कृष्णके बलकी प्रशसा की। तब पद्मनाभ-बलभद्र बोले, "तुम लोग व्यर्थ इन सबकी बडाई करते हो। भगवान नेमिकुमार-सा बल तीन लोकमे किसीमें नही है। वे पृथ्वीको उठा सकते है, समुद्रको दशो दिशाओमे बिखेर सकते है। इनसा बल सुर-नर किसी में नही है।"

श्रीकृष्णने नेमिकुमारकी बडाई सुनकर जरा मुस्कराते हुए उनसे मल्लयुद्धमें बलकी परीक्षा करनेको कहा। इस पर नेमिकुमारने कहा, "हे अग्रज ! इसमें मल्लयुद्धकी क्या आवश्यकता है ? यदि आपको मेरा बल जानना ही है, तो लो मेरे पांवको इस आसनसे सरका

दो ।" पर श्रीकृष्ण उनके पाँवको टस-से-मस न कर सके और उन्हों-ने उनके बलको न केवल स्वीकार ही किया, वरन् उसकी प्रशसा भी की । और उनके बलको लोकोत्तर बताया । पर उनके मनमे नेमिकुमारके प्रति कुछ शका सी रहने लगी ।

श्रीनेमिकुमार और श्रीकृष्ण सुखसे अपना समय व्यतीत कर रहे थे कि तभी वहाँ एक घटना घटी ।

विजयार्द्धमे श्रुत शोणित नगरमे प्रसिद्ध और रण सग्राममे शूरवीर राजा बाण राज करता था । उसकी अनेक गुण-कला रूपी आभरणोसे युक्त ऊषा पुत्री थी । वह अपने गुणो तथा रूपके कारण बडी प्रसिद्ध थी । इस लडकीने प्रद्युम्न कुमारके पुत्र अनिरूद्धके गुण सुने, तो बस वही उस राजकुमारीके मनमे बस गया । उस सुन्दरीका चित्त अनिरूद्धकी प्राप्तिके लिए व्याकुल रहने लगा । पर कोई भी उसकी व्याकुलताका कारण न समझ सका ।

तब उसकी एक हितैषी सखीके पूछने पर राजकुमारीने अपने मनकी बात कही । उसने कहा यदि वह किसीका ब्याहेगी तो अनिरूद्धको ही और किसी को नही । तब उसकी सखी सोते हुए अनिरूद्ध कुमार को रातमे उठा कर विद्याधरियोके लोकमे ले गयी और राजकुमारी की सेज पर सुला दिया । दिन निकलने पर जब कुमारकी आंखें खुली, तो पराये महलमें एक सुन्दरीको अपने पास देखकर वह चकित रह गया । वह हैरान था कि यह सुन्दरी शची है या पद्मावती है या कोई मनुष्य वधु है । वह भ्रममे पड गया, कि वह स्वप्न देख रहा है या जागृत है । तब राजकुमारीकी चित्रलेखा सखीने सब हाल अनिरूद्ध कुमारको बताया और एकान्तमे दोनोका गन्धर्व-विवाह करा दिया । वह नवदम्पति ऊषाके महलमे देव-देवांगना-के समान सुखसे समय व्यतीत करने लगे । जब कृष्ण आदिने अनिरूद्ध कुमारके अपहरित होने का समाचार सुना, तब श्रीकृष्ण,

बलभद्र और प्रद्युम्नकुमार आदि तत्काल अनिरूद्धको लानेके लिए विमानसे राजा बाणके श्रुत शोणित नगरमें गये। पर राजकुमारी ऊषाके माता-पिताको पुत्रीके गन्धर्वविवाह का कोई ज्ञान न था। इसलिए राजा बाण श्रीकृष्ण आदिसे लडनेको तैयार हो गया। पर श्रीकृष्ण आदि ने राजा बाणको पराजित कर दिया और वे अनिरूद्ध कुमारको उसकी नववधु सहित द्वारिका ले आये। उनके आने पर सबको प्रसन्नता हुई।

इसके पश्चात् बसन्त ऋतु अपने सभी प्राकृतिक सौन्दर्य और छटाको लेकर द्वारिकामे आई। तब नगरके सभी नर-नारी और श्रीकृष्ण अपनी रानियो सहित गिरनार वनमे क्रीडा करने और बसन्त ऋतुका आनन्द लेने गये। वे विनती करके युवा नेमिकुमार को भी साथ ले गये। यद्यपि नेमिकुमारको इस क्रीडाके लिए कोई अनुराग न था, पर वह भी भाई-भौजाइयोके आग्रहके कारण उनके साथ वनको चले गये। समुद्रविजय आदि दसो भाइयोके तरुण आयु वाले सभी कुमार उनके साथ गये। प्रद्युम्नकुमार भी उनके साथ गया।

गिरनार पर्वत पर उन राजकुमारो तथा रानियोकी चहल-पहलसे सुमेरू पर्वतके वनोके देव-देवांगनाओं सदृश सुशोभित लगने लगा। सभी नर-नारियाँ पर्वतके नितम्ब पर स्थित वनोमें अपनी इच्छानुसार घूमने-फिरने लगी। उस समय वनमें बसन्ती फूलोकी सुगन्धसे सुगन्धित दक्षिणकी शीतल वायु सब दिशाओंमें चल रही थी। आम वृक्षो का रस पान करनेवाली कोकिलाओकी मधुर कूहूकूहू सैलानियोके मनको मुग्ध कर रही थी। मधुपान करनेवाले भौरे, मौलश्री आदिके वृक्षोपर गुजार कर रहे थे। फूलोके भारसे लताएं नम्रीभूत हो रही थी। युवतियो द्वारा पुष्प चयनसे बेले कांप रही थीं। ऐसे प्राकृतिक बासती सौन्दर्यमें तरुण पुरुषके साथ जहां-

तहाँ लता कुंजो, सरोवरो और वापिकाओं आदि मे भ्रमण करके बसन्तका आनन्द ले रहे थे।

वहाँ कृष्णने अपनी रानियोंके साथ चैत्र मास व्यतीत किया। कृष्णकी रानियोने अपने देवर नेमिकुमारको भ्रमण कराया। केशव की सभी रानियाँ बडी वाचाल थी। वे अपने पतिकी आज्ञासे अपने देवर को नानाविधि वन क्रीडा कराने लगी। कोई भावज नेमि कुमारका हाथ पकड कर विहार कराने लगी। कोई उन्हे वन की शोभा दिखाने लगी और कोई उन्हे साल-तमाल वृक्षोकी टहनियोके पखोसे हवा करने लगी। कई भाभियाँ अशोक वृक्षके नये-नये पल्लवोसे करणाभरण या सेहरा बना कर उन्हे पहनाने लगी। कोई उन्हे पुष्प मालाएँ पहनाने लगी, कोई सिर पर मालाए बाधने लगी और कोई उनके सिरको लक्ष्य बनाकर उस पर पुष्प फेकने लगी। इस प्रकार युवा नेमिनाथ भाभियोके साथ बसन्तका आनन्द ले रहे थे। वे भाभियाँ बडी भक्ति भावसे उनकी सेवामे तल्लीन थी।

बसन्त के पश्चात् ग्रीष्म ऋतु आई। तब कृष्णकी प्रियाएँ नेमिकुमार से जल-क्रीडा करनेका आग्रह करने लगी। गिरनार गिरिशीतल झरनोसे महामनोहर लग रहा था। उन झरनोसे पवित्र जलसे तीर्थेश्वर भौजाइयोके आग्रहसे जल क्रीडा करने लगे। यद्यपि भगवान् स्वत स्वभाव से रागरूप रजसे पराङ्मुख है, तथापि उस समय जलमे तैरना, डुबकी लगाना, डुबकी लगा कर दूर निकलना उनके लिए साधारण सी बात थी। वे पानीकी पिचकारियाँ मार रहे थे। भाभियाँ भगवान् नेमिनाथके मुख पर जल फेक रही थी और नेमि कुमार उन पर दोनो हाथो से जल फेंक रहे थे। नेमिकुमारने सभी भाभियोको जल क्रीडा मे हरा दिया, वे पीछे हट गयी। ऐसी जल क्रीडा किसीने कभी नही देखी। इस जल क्रीडासे उन तरुणियो का ग्रीष्मदाह मिट गया। वे तृप्त हो गयी। करणाभरण खिसक गये, मस्तकके तिलक मिट गये, अधर धूसर हो गये, कटि मेखलाए

शिथिल हो गयी और केश बिखर गये। उनके शरीर थक कर चकनाचूर हो गये। अब उन सबने स्नान करके वस्त्र बदले, नेमि-कुमारको भी नये वस्त्र पहनाये गये।

स्नान के पश्चात् नेमि कुमारने कृष्णकी अति प्रिया पत्नी और अपनी भाभी जामवन्तीको अपने वस्त्र निचोडनेका आखसे इशारा किया। भाभीने इसका बुरा माना और भौहे टेढी करके कहा कि ऐसी आज्ञा तो उसके महाबलवान, नाग शय्यापर सोने वाले, मेघ की ध्वनि को जीतनेवाले शखको बजानेवाले और शारग धनुषको चढानेवाले कृष्ण भी कभी नही करते। देवरानियो-जेठानियोने भी जामवन्तीको समझाया और नेमि कुमारने अपने बलको शख बजा कर, धनुष चढा कर और नाग शय्या पर सोकर दिखाया। शखकी ध्वनि से दिशाए गूंज उठी, स्त्री पुरुष भयभीत हो गये और स्वय कृष्ण चितत हो गये। जब कृष्णने देखा कि यह सब नेमिकुमारने जामवन्तीके कहने पर किया है, तब वे चितित एव हर्षित हुए। उन्होने नेमिकुमारका प्रेमसे आलिगन किया।

इस बसन्त भ्रमण और ग्रीष्म कालीन जल क्रीडा से कृष्णको यह समझते देर न लगी, कि अब नेमिकुमारका विवाह उनके योग्य युवतीसे किया जाय। उसी समय उन्होने भोज वशियोकी राजमति या राजुल राजकुमारी नेमिकुमारके लिए मागी, अपने बन्धुजनोको उसके पाणिग्रहण सस्कारकी सूचना दी और समस्त राजाओ को स्त्रियो सहित अपने पास बुलाया। सभी परम रूपवान स्त्री-पुरुष अनेक आभूषणो तथा सुन्दर वस्त्रो से सुसज्जित नगरमे भोजनके लिए आये।

ग्रीष्मऋतु बीतने पर वर्षा ऋतु अपनी मेघ मालाओ, गर्जन और शीतल जलकण की वर्षा लेकर आई। मोर और चातक वर्षामे सुख अनुभव कर रहे थे। जहाँ एक तरफ बरसात कुछ आदमियोको

शान्ति देती है, वहाँ विरही आदमियोको दुःसह आताप देती है। सावनका महीना आया। मेघोके समूह बरसने लगे। सूर्यकी तपन दग्धवनमे पक्तियोसे बूंदे पडने पर सर्व प्रथम वाष्प और सौधी-सौधी सुगध ऐसे निकल रही थी, मानो बनावलीके हर्ष सुखोच्छ्वास निकलने लगी हो। कडकती बिजली, इन्द्रधनुष और काले-काले बादल बरसातके प्राकृतिक सौन्दर्यको दुगना कर रहे थे। सभी प्रकार के वृक्ष और लताए पुष्पोसे सुशोभित थी। वन, पहाड और तल-हटी सभीमे हरियाली उनकी शोभा बढा रही थी। ऐसी वर्षा आने पर त्रिकाल योगको धारण कर तपस्या करनेवाले मुनि गिरिके शिखरकी तप्तायमान शिलाओसे उतर कर वृक्षोके नीचे ध्यानस्थ हो गये, जहाँ ठडी पवन चल रही थी और बूंद टप-टप गिर रही थी।

ऐसे सुहावने समयमे श्री नेमि जिनेश्वर चार घोडोके अति प्रभा-वान रथ पर सवार होकर विवाहके लिए चले। साथमे राजाओके तरुण समवयस्क पुत्र और मित्र थे। नगरकी कुछ वधुए तृषित नेत्रोसे नेमिकुमारके सौन्दर्य रूपी जलका पान करने लगी। कुमारका चित्त दयासे पूर्ण था और उनका दर्शन मनोहर था। पवनके योगसे उस समय समुद्रने जो उछाल लिया, तो ऐसा लगा मानो समुद्र नटके समान नृत्य कर रहा है और समुद्रकी गर्ज बाजोकी मधुर ध्वनिके समान लगने लगी। समुद्रकी तरगे नटके हाथोके समान भिन्न-भिन्न भावोका प्रदर्शन कर रही थी। नेमिकुमार उपवनोसे होकर वनमे जा रहे थे और ऊपरसे वृक्षोके पुष्प उन पर गिरकर कुसुमाजलिके समान चढ रहे थे।

अचानक मार्गमे नेमिकुमारने एक तरफ कुछ पशुओको घिरा हुआ देखा। ये पशु भयमे काप रहे थे, अत्यन्त विह्वल थे और क्रूरपुरुष उन्हे वहाँ घेरे हुए थे। पशुओंका भय मिश्रित क्रन्दन सुनकर नेमि-कुमारने रथको वही रुकवाया और सारथीसे उन पशुओंके बारेमे पूछा। तब सारथीने बडी विनम्रतासे हाथ जोड कर बताया, "हे

नाथ ! आपके कुलके राजादि तो अन्न-शाकाहारी है, उन्हें अभक्ष्य-का त्याग है, पर मासाहारी बरातियोके लिए भोजनके लिए ही ये पशु यहाँ एकत्रित किये गये है।"

सारथीके ये वचन सुनकर दयानिधि नेमि कुमारने तुरन्त उन पशुओ को बाडेसे मुक्त करा दिया। फिर नेमि कुमारने सभी राज-पुत्रोको सम्बोधन करके कहना शुरू किया, "हे राजपुत्रो ! इन पशुओका घर-बार नही, तृण और जल इनका आहार है और ये निरपराध है। जो इन निर्बल प्राणियोको मारता है, उसके समान निर्दयी कौन होगा ? रणमे विजयकीर्ति प्राप्त करनेवाले योद्धा सामने योद्धाओपर ही प्रहार करते है, निर्बलोपर नही। हाथी, घोडे और रथका सवार अपनेसे लडने को तत्पर आदमीसे लडनेको तैयार होता है, दूसरे पर वार नही करता। सामन्तोकी यह रीति नही कि वनके सिह आदि पशुओसे तो भागे और महा दुर्बल मृग और बकरे आदि को मारे। हिसादि पापोका आचरण करनेवाले व्यक्तिके करुणा कहाँ ? यह कितने आश्चर्यकी बात है, कि यह आदमी विस्तीर्ण राज्यकी इच्छा तो रखता है, पर जीवोकी हिसा मे तत्पर रहे। देखो मैने पूर्व जन्मोमे कहाँ-कहाँ भ्रमण किया है, बहुतसे सुख भोगे है, फिर भी मै तृप्त न हुआ। सांसारिक सुख सर्वथा असार है।"

यह कह कर नेमिकुमार विरक्त मनसे द्वारिका लौट पडे। वहाँ प्रभुने स्नान किया और सिहासनपर बैठ गये। वहाँ बहुतसे राजा, कृष्ण और बलभद्र बैठे थे। तब नेमिकुमार तपके लिए उठने लगे। यह देखकर कृष्ण, बलभद्र और भोजवशियोने नेमिनाथको विविध प्रकार की अनुनय-विनय करके और आगा-पीछा समझा कर रोकनेका प्रयत्न किया, परन्तु सब व्यर्थ। जिस प्रकार पिंजरा तोड कर निकलनेको उद्यत प्रबल सिहको कोई नही रोक सकता, उसी प्रकार तपके लिए जानेको तैयार दृढ सकल्पी नेमिकुमारको रोकनेमें

कोई समर्थ न हो सका । फिर नेमि कुमारने अपने माता-पिता आदि परिवारके लोगोको अपना निर्णय और ससारकी स्थिति अच्छी तरह समझाई ।

इसके पश्चात् नेमिनाथ जी ध्वजाओ, सफेद छत्रो और रत्न आदि से सुसज्जित उत्तरकुरु नामक पालकीमें सवार होकर चल पडे । पालकी पर सवार नेमिनाथ उदयाचलकी भित्तिपर आरूढ चन्द्रमाके समान लग रहे थे । वे गिरनार पर्वतपर पहुँचे । गिरनार पर्वतकी प्राकृतिक शोभा और लताओं तथा पुष्पोके सौन्दर्यका वर्णन करना कठिन है । वहाँ नेमिनाथने अपने हाथो से अपने सिरके कुटिलकेशो को इस प्रकार उखाड दिया, मानो वे चिरकालमे लगी हुई कुटिल शल्योकी परम्पराको उखाड रहे हो । उनका तप कल्याणक शुरू हो गया । उनके साथ अनेक राजाओने भी मुनि दीक्षा ली । एक दिन श्रीनेमिनाथ द्वारिकामे आहारके लिए आये और वहाँ उत्तम तेजधारी प्रवरदत्तने आहार देकर महिमा और प्रतिष्ठा प्राप्त की ।

इधर दु खसे पीडित भोजवशके लोग नेमिकुमारके इस प्रकार चले जाने और अपनी बेटी राजुलके भविष्यसे चिंतित करुण क्रदन मुखसे रुदन कर रहे थे । अपार वियोग से दु खी राजपुत्री राजमती अपनी लज्जापूर्ण चेष्टाओसे युक्त मनमे अत्यन्त सतप्त थी । वह अत्यन्त प्रबल शोकसे ग्रस्त निरतर विलाप करती रहती थी । उसके आभूषण और केशोके जूडे शिथिल हो गये थे और वह करुण शब्दों से अति अधिक रोती रहती थी । उसके आसुओसे उसका हार और छाती गीली हो रही थी । कभी वह अपने दुर्दैव को उलाहना देती और कभी वह अपने अत्यन्त मनोहर वरको दोष देती । उसके सगे सम्बन्धियों और माता-पिताने उसे बहुत समझाया कि वह नेमि-कुमारका विचार छोड़ दे, उसका किसी दूसरे सुन्दर राजकुमारसे विवाह कर दिया जायेगा । पर वह न मानी । उसने कहा, "क्षत्री

कन्याए जीवनमे एकबार पति चुनती है, बार-बार नही। वह ब्याहेगी तो नेमिकुमारको, वरना वह भी उनके पथ पर चलेगी और साध्वी बन जायेगी।" राजुल और उसकी सखियोने नेमिनाथसे बडी विनम्रतासे घर लौटने की प्रार्थना की, पर वे टस-से-मस न हुए। अन्तमे राजुलने भी अपने सब अलकारो को त्याग कर तप धारण करने का विचार किया। वह भी तपस्विनी बन गयी। यह नेमिनाथका महानिष्क्रमण और तप कल्याणक है।

केवल ज्ञान प्राप्ति और समवसरण

श्री नेमिनाथ सम्यग्दर्श, ज्ञान और चरित्र और तपसे सुशोभित हो गये। सभी प्रकार की बाईस परीषहों—कष्टोंको वे सहने लगे। अप्रशस्त और महानिन्द्य आर्त्त और रौद्र कुध्यान को त्याग कर वे सदा धर्म-ध्यान और शुल्क ध्यानमे रत रहने लगे। चित्तके एकाग्र निरोध को ही ध्यान कहते है। ध्यानके लिए मनका स्थिर होना बडा आवश्यक है। वे अनिष्ट सयोग और इष्ट वियोगमे सदा मनको सम रखते थे।

दुष्ट और क्रूरचित्त प्राणीके जो भाव होते है, उनको रौद्र ध्यान कहते है।

जो मोक्षाभिलाषी जीव है, वे सदा धर्म ध्यान और शुल्कध्यान मे अपनी बुद्धि लगाते है। धर्मध्यानकी सिद्धिके वास्ते योग्य द्रव्य, योग्य क्षेत्र, योग्यकाल और योग्यभावकी आवश्यकता है अर्थात् उत्तम शरीर, आर्य क्षेत्रका एकान्त और निर्जन्तु स्थान, समशीतोष्ण-काल और भावामे निर्मलता चाहिए। जो तपस्वी समस्त परीषहो को जीतनेमे समर्थ हो, वह धर्म ध्यानको ध्याता है। ऐसा व्यक्ति महागम्भीर तथा स्तम्भ समान निश्चल होता है और पद्मासन

लगाता है। उसके नेत्र निश्चल और समस्त इन्द्रियोके काम निवृत्ति रूप होते हैं। ऐसा धर्मध्यानी ही शुक्ल ध्यान लगा सकता है। ऐसा ध्यानी अपने मनको नाभिके ऊपर हृदयमे, मस्तकमे या ललाटमें रोककर ध्यान करता है और उसकी दृष्टि नासिकाके अग्रभाग पर रहती है। वह व्रतशील और तपादि का आचरण करता है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थो मे मोक्ष पुरुषार्थ-सर्वोत्कृष्ट है। जीवका वास्तविकहित इसी मे है। यह कर्मके क्षय या मिटने से होता है। और कर्मोंका क्षय शुल्क ध्यान से होता है। समस्त कर्म प्रकृतियोका अभाव होना मोक्ष है। यह मोक्ष अनन्त सुख रूप है। यह मोक्ष मत्र साध्य और सहज साध्य है। तीर्थकरो और उसी जन्मसे मोक्ष जानेवाले मनुष्योके लिए यह सहज साध्य है। पर जन्मान्तरमे मोक्ष जानेवाले के लिए यह मत्र साध्य है।

सिद्ध पद प्राप्तिका कारण धर्मध्यान और शुलकध्यान है। इस-लिए भगवाननेमिनाथने छप्पन दिन तो धर्मध्यान किया। और आसोज सुदी प्रथमाके दिन प्रभात समयमे शुल्कध्यान रूपी अग्निसे चारों घातिया कर्मोंको भस्म करके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यको प्राप्त किया। अब उन्हे केवल ज्ञान अर्थात् पूर्णज्ञान हो गया। यह भगवान नेमिनाथका केवलज्ञान कल्याणक हुआ।

समस्त जगतमे और देवलोकमे 'जय, जय' का शब्द गूँज उठा। सभी प्रकार के देव भगवानके केवलज्ञानकी पूजा करनेके लिए तैयार हो गये और उन्होने गिरनार पर्वतकी प्रदक्षिणा करके समसवरण अर्थात् प्रवचन सभामे प्रवेश किया। सबने उनको नमस्कार किया। पहले वे तपकल्याणकके समय गिरनार पर्वत पर आये थे। अब दूसरी बार यहाँ आये। इसी पर्वतसे वे मोक्ष प्राप्त करेंगे। इस

कारण यह पर्वत अतिपवित्र हो गया, महातीर्थ बन गया। यहाँ ही नेमिनाथ जिनेन्द्र विराज रहे थे। इसकी चप्पा-चप्पा भूमि और रजका प्रत्येक कण अतिपवित्र हो गये।

फिर प्रभु का समवसरण बनाया गया। यह समवसरण तीन जगतके प्राणियोको शरण देता है।

द्वारिकाके स्त्री-पुरुष सभी यदुवशी और भोजवशी आदि गिरनार पर्वतपर बलभद्र नारायणके साथ चढे। बाहर-भीतरसे समवसरणको देखकर उन्हे बडा आश्चर्य हुआ। समवसरणकी शोभा स्वर्गकी शोभाको मात करती थी। इसकी भूमि इन्द्रनीलमणिमयी कांचके समान निर्मल थी। इसमे अनेक राजमार्ग होते थे। इसमे देव मनुष्य और पशु-पक्षी सभी समान रूपसे धर्मप्रवचन सुनते थे। इसमे मान स्तम्भ होते थे। सरोवर भी थे। इसके द्वारो पर तोरण, छत्र, चमर, कलश, भारी और दर्पण आदि आठ मगलद्रव्य रखे होते है। उसमे नाट्यशालाओमे देवागनाए नृत्य करती थी। जगह-जगह ध्वाजाए लगी हुई थी। कलशोमे शुद्ध जल होता था और वे कमलोसे ढके हुए थे। समवसरण मे स्थान-स्थानपर स्तूप बने हुए थे।

सुर-नर सभीने वहाँ जाकर भगवान् नेमिनाथको नमस्कार करके उनकी इस प्रकार स्तुति की, "हे महादेव! तुम विजयरूप हो। हे महेश्वर! तुम महामोहको जीतनेवाले हो। हे महाबाहु! आपके समान जीत का स्वरूप और कोई नही है। हे विशाल नेत्र! आप सब कुछ देखनेवाले और सर्वज्ञ हो तथा आप अद्वितीय हो।"

उसी समय राजा वरदत्तने मुनिके व्रतग्रहण किये और वह भगवान नेमिनाथका मुख्य गणधर बन गया। वहाँ पर बहुतसे मुनि अपने-अपने स्थान पर बैठे प्रत्यक्ष धर्मके स्वरूपके समान थे।

एक सभामें राजमती आर्यिकाओके गणकी प्रधानाके रूपमें विराजमान थी। छह हजार रानियोंने उसके साथ दीक्षा ली थी। बहुतसी श्राविकाएं भी वहाँ थीं। राजमती लज्जा, क्षमा, और शान्ति आदि गुणोंसे सुशोभित थी, मानो धर्मकी प्ररूपणा ही थी। धर्मका स्वरूप धारण किये विराज रही थी।। भगवान् समस्त पाप-कर्मोंके नाशक हैं।उनकी भक्तिसे पाप दूर हो जाते हैं।

बारहवी सभामे सिह, गज, मृग, वृषभादि थलचर और हस तथा गरुडादि नभचर अनेक जातिके तिर्यंच बैठे थे। भगवानके आतिशयसे सबकी अविद्या मिट गयी और उनके पारस्परिक वैर-भाव विलीन हो गये।

बहुतसे पुरुष मुनि हो गये, बहुत से पुरुषोंने श्रावकके व्रत ग्रहण किये। इसी प्रकार बहुत-सी स्त्रियोंने आर्यिकाकी दीक्षा ली और बहुतोने श्राविका के व्रन ग्रहण किये।

इस प्रकार बारह सभाओंसे मण्डित समवसरणमे तीर्थंकर नेमिनाथ सिहासन पर विराजमान थे। उनकी दिव्यध्वनि समस्त जीवोको अभय देनेवाली थी।

देव दूसरे देवोको बुला रहे थे और कह रहे थे कि ये भगवान् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा, समस्त गुणोका पु ज और जीवोका कल्याण करनेवाले है। जो अपना कल्याण करना चाहते हो, उन्हे यहाँ आकर नेमिनाथको पूजना चाहिये। सभी आकर भक्तिपूर्वक समव-सरणमे बैठने लगे। इतना ही नही, जो कुकर्मी, पापी, नीच, विक-लांगी तथा विकलइन्द्रिय प्राणी थे, वे भी बाहर से ही भगवानकी वन्दना करने लगे। नमस्कार, 'जय जय' और स्तुतिसे समस्त समवसरण गूंज रहा था। कुछ ईश्वर ध्यानमे निमग्न थे। इस प्रकार सतोंका समूह वहाँ विराजमान था।

भगवान नेमिनाथके प्रभावसे वहाँ उपस्थित सुर-नरों आदिका भय, द्वेष, विषयाभिलाषा और रति आदि विकार दूर हो गये। न वहाँ छींक, खांसी, जम्हाई और डकार आदि विकार थे, न निद्रा, तन्द्रा, क्लेश, भूख और प्यास आदि किसीको सताते थे। समवसरणमे सब जीवोंका कल्याण-ही-कल्याण था, किसीका अकल्याण नही था। समवसरणकी भूमि अद्‌भुत थी। यह भगवानकी बाह्य विभूतिकी बात है, उनकी अतरगकी विभूतिका वर्णन कौन कर सकता है।

: ४० :

नेमि प्रवचन

समवसरण नित्य उत्सवो और अनन्त कल्याणोंका स्थान होता है। धर्म सुननेके इच्छुक श्रोता वहाँ हाथ जोडे बैठे थे। वरदत्त गणधरने तीर्थंकर नेमिनाथको नमस्कार करके पूछा, "भगवन् ! जीवोके हितकी क्या बात है ? उनकी भलाई किस बातमें है ?"

गणधरके निवेदन पर उनकी जो दिव्य ध्वनि हुई, वह चारों दिशाओमे सुनाई देती थी. सभी उसे समझते थे, चार वर्णों और सघोको मार्ग दिखानेवाली तथा आश्रय देनेवाली थी। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थों रूप चार फलोको देनेवाली थी। शास्त्रो अथवा समस्त विद्याओ के चार भाग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और प्रथमानुयोग कहे गये है। द्रव्यानुयोग मे जीव तथा अजीव आदि का वर्णन होता है. करणानुयोग में तीन लोक भूगोल आदि का वर्णन होता है, चरणानुयोग मे मुनियों तथा गृहस्थोके आचरण आदि का वर्णन होता है और प्रथमानुयोग में पुराण, चरित्र तथा कथा साहित्य होता है। भगवानकी दिव्यध्वनि इन चारो अनुयोगोकी जननी मानी जाती है। यह वाणी प्राणियो-की चतुर्गतिके चक्करको समाप्त करके मोक्ष पद दिलानेवाली होती है। इसके अनेक रूप होते है। इसमें निश्चय नय, और व्यवहार नय, रत्नत्रय, चार अनुयोगो, चार कषायोके नाशके उपायों, पच-परमेष्ठीकी भक्ति, छह द्रव्यों, सात व्यसनों और सप्त अंगोका वर्णन,

आठ कर्मोंके नाश, आठ गुणोंका वर्णन, नव नयो और दस लक्षण धर्म आदि का वर्णन होता है । इस जिन वाणीकी महिमा जिनेश्वर देव ही जानते हैं, दूसरा नही । यह जिनवाणी जगतका उद्धार करने के लिए जिनेश्वरके मुखसे प्रकट हुई ।

यह जिनवाणी जीवोके हितको बतानेवाली और अहितको दूर करनेवाली होती है । यह जीवोको उनके यथायोग्य धर्ममे प्रवृत्त करती है और अशुभसे हटाकर शुभमे प्रवृत्त करती है । यह जीवो के सचित कर्मोंको शिथिल करनेवाली या पूर्ण रूपसे नष्ट करके मोक्षपद दिलानेवाली है ।

इस वाणीके अक्षर मधुर, स्निग्ध, गम्भीर, दिव्य, उदात्त और स्पष्ट होते हैं, अनन्य रूप है, एक है और अतिशय निर्मल होती है । केवल ज्ञानियों द्वारा इसका व्याख्यान होता है, वही इसके वक्ता है और सब श्रोता हैं ।

भगवान् नेमिनाथने अपने प्रवचन मे कहा —

"यह जीव स्वय सब कर्म करता है और वही उसका फल भोगता है । जीव स्वय ससारमे भ्रमण करता है और स्वय उससे मुक्त होता है । अविद्या तथा रागसे सक्लिष्ट होता हुआ ससार सागरमें बार-बार घूमता है और विद्या तथा वैराग्यसे शुद्ध होकर पूर्ण स्वभावमें स्थित होकर सिद्ध हो जाता है । अध्यात्म-ज्ञान दीपक के समान मोक्षमार्गको दिखानेवाला है । ससारके जीव दो प्रकार के होते हैं, भव्य और अभव्य । भव्य जीव मोक्ष प्राप्त करते है और अभव्य जीव मोक्ष प्राप्त नही कर सकते ।

"मोक्षका उपाय आत्मध्यान और सूत्रका अध्ययन है । सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र इसका मार्ग है । इनको रत्नत्रय कहते हैं । जीवादि सात तत्त्वोका विश्वास सम्यग्दर्शन, इनका ज्ञान सम्यक् ज्ञान और अशुभकी निवृत्ति सम्यक् चारित्र कहलाता है ।

जीव जन्म-मरणसे रहित है । आत्मा ज्ञान आदि अनन्त गुणमात्र है । यह जीव आप ज्ञाता है, द्रष्टा है, कर्ता और भोक्ता है और कर्मों-का त्याग करनेवाला है । इसके प्रदेश फैल कर लोकके समान बडे हो सकते है और सकुचित होकर शरीरके बराबर बन जाते हैं । इसमे न कोई वर्ण है, न रस है, न गध है, और न स्पर्श है । ये गुण तो पुद्गलमे होते है, आत्मामे नही । आत्मा अमूर्ति स्वरूप है । यह शरीरसे भिन्न है ।

"अजीवके पॉच भेद पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल है । द्रव्य या पुद्गलके अनेक रूप होते है । इसके नित्य स्वरूपके वर्णनको द्रव्यार्थिक नय कहते है और अनित्य स्वरूपके वर्णनको पर्यायार्थिक नय कहते है । जैसे स्वर्णका वर्णन और उससे बने कडे आदि का वर्णन । वस्तुकी एकता द्रव्य है और अनेकता पर्याय है । पुद्गलके छोटे-छोटे भागको अणु कहते है और उसके फिर भाग नही हो सकते । अणुओके समूहको स्कध कहते है । धर्म-का लक्षण गति है, यह चलनेमे सहायक होता है । अधर्मका लक्षण स्थिति है, यह ठहरनेमे सहायता करता है । आकाश स्थान देता है और काल वर्तता है । कालके दो भेद निश्चय काल और व्यवहार काल है । कालाणु द्रव्यको निश्चय काल कहते है और समय आदि जैसे घडी, घटा, दिन और मास आदि को व्यवहार काल कहते है ।

"जीव, अजीव, आश्रव, बाध, सवर, निर्जरा और मोक्ष सात तत्त्व है । मन, वचन और कायाकी प्रवृत्तियोंके द्वारा कर्मके आने को आश्रव कहते । इसके दो भेद पुण्याश्रव और पापाश्रव है, अर्थात् अच्छे या शुभ कर्मोंका आना और बुरे कर्मोंका आना । क्रोध, मान, माया और लोभ चार कषायोकी तीव्रता, मध्यता या मदताके अनु-सार कर्मोंका आश्रव भी तीव्र, मध्य या मन्द होता है । जैसा कारण होता है वैसा कार्य होता है । कषाय कर्मोंके आने का कारण है और कर्मोंका आश्रव या आना कार्य है । आश्रवके अनेक भेद हैं । किसी

को दु.ख पीड़ा मत दो, सब पर दया करो । किसी की निन्दा या स्व-प्रशसा न करो । अपने को छोटा समझना और गर्व न करना और दूसरोंके गुणोकी प्रशसा करना अच्छा है । जो अशुभ काम है वे अशुभ कर्मोंको लाते है और जो शुभ काम है उनसे शुभ काम आते है ।

"हिसा, झूठ, चोरी, कुशील या अब्रह्मचर्य और परिग्रह ये पाँच पाप है । इनको छोडना अर्थात् उनसे निवृत्ति होना व्रत कहलाता है । इन पापोका सर्वथा त्याग करना महाव्रत कहलाता है और इसे साधु ही पालते है । इनका कुछ त्याग अणुव्रत कहलाता है और वह गृहस्थोके पालन के लिए है । व्रतीके मनमे कोई आकुलता शल्य न होनी चाहिये ।

"हमे सब जीवो के प्रति मैत्री भाव, गुणवानोके प्रति प्रमोद या हर्षका भाव, दु खी प्राणियोके प्रति दयाभाव और दुष्ट प्राणियो-के प्रति मध्यस्थताका भाव रखना चाहिए । यह चार भावनाएँ धर्मध्यानका मूल मानी गयी है ।

कषायसे कलुषित प्राणी हर क्षण कर्मके योग्य पुद्गलोको ग्रहण करता रहता है, अपनी ओर खींचता रहता है । यही कर्म बन्ध कहलाता है । यह बन्ध अनेक प्रकार का होता है । भविष्यमे कर्मों-का आना रुक जाना सवर कहलाता है । इसके लिए अनेक प्रयत्न करने पडते है, अनेक शुभ भावनाए करनी होती है और कष्टो या परिषहोंको सहना होता है । इससे आगे आनेवाले कर्म आने बन्द हो जाते है । पर सचित कर्मोंको तप आदिसे काटना निर्जरा कह-लाता है । कर्मोंकी निर्जरा स्वय भी होती रहती है और प्रयत्नपूर्वक भी की जाती है । यह ऐसे ही है, जैसे आम आदि फलोका अपने आप पकना और गिर जाना या कृत्रिम साधनो से उन्हे शीघ्र पकाना । साधु लोग अपने तप-संयम आदि से सचित कर्मोंको शीघ्र नष्ट कर देते है । सब कर्मोंसे छुटकारा पाना, आवागमन का अन्त कर देना,

मोक्ष है। मोक्ष प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ है। यही प्राणियोंका ध्येय होना चाहिये।

"गृहस्थीको सदा श्रद्धापूर्वक अपनी शक्तिको बिना छिपाये दान करना चाहिये। मुनियो, आर्यिकाओ, श्रावको और श्राविकाओ और अव्रती सम्यक्त्व दृष्टियोंको भक्ति तथा विनयपूर्वक दान देना चाहिये। और दूसरे सब जीवोंको दयाभावसे दान देना चाहिये। दानके चार भेद आहार दान, शास्त्र दान, औषधि दान और अभयदान है। सभी दान समान रूपसे आवश्यक है। किसी व्यक्तिको जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, उसे वैसा ही दान देना चाहिये। दाताका मन उज्ज्वल, निर्लोभ, नि स्वार्थ और कोमल होना चाहिए। दान परिग्रह कम करनेका बडा साधन है। गृहस्थके छह दैनिक कर्तव्योमे दानका बडा महत्त्व है।"

भगवान् नेमिनाथके धर्मोपदेशको सुनकर श्रोताओने हाथ जोड़ कर उन्हे नमस्कार किया। श्रोताओमे से कुछने मुनि दीक्षा ली और बहुतोने श्रावकके व्रत ग्रहण किये। मुनि दीक्षा लेनेवाले व्यक्तियोमे बहुतसे राजा थे। बहुत सी रानियोने आर्यिकाके व्रत ग्रहण किये। बलभद्रकी माता रोहिणी आदि अनेक रानियोने भी आर्यिका व्रत ग्रहण किये।

प्रवचनके पश्चात् सभी श्रोता जिनेश्वरको प्रणाम करके अपने-अपने स्थान लौट गये।

४१

भगवद् विहार

महापुरुष सदा स्वपरहित के काम करते है । केवल ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् गिरनार पर्वतपर धर्म प्रवचन करके तीर्थंकर नेमिनाथने जगतके जीवो को ससार समुद्रसे पार करनेके लिए, उनका उद्धार करने के लिए, गिरनारसे नीचे उतरकर विहार किया । मार्गमे स्थान-स्थान हर मगलाचार हो रहे थे । सभीके हृदयोमे आनन्द, सुख और हर्षके भाव उमड रहे थे । तीन लोकके जीव हर्षित हो रहे थे, क्योकि अब भगवान नेमिनाथ बाईसवे तीर्थंकर विश्वके कल्याणके लिए विहारके लिए जा रहे थे । आगे-आगे धर्म चक्र चल रहा था । सब प्रकारके बाजोके शब्दो, मगल शब्दो और गायनोसे धरती आकाश शब्दायमान हो रहे थे, गूंज रहे थे । स्त्री-पुरुष बडी श्रद्धा-भक्तिसे 'भगवान् नेमिनाथकी जय' के नारे लगा रहे थे ।

मार्गमे कही भगवत कथा हो रही थी, तो कही आनन्द रूप हास्य हो रहा था और कही नाच-गाने हो रहे थे । कही-कही भक्त लोग मगल स्तोत्रोसे भगवानकी स्तुति कर रहे थे, तो कही 'जय जय' शब्द कर रहे थे । कही भक्त लोग कर अजुली जोडकर नमस्कार कर रहे थे । सभी भगवान्की सेवामें रत थे । ऐसा लगता था, मानो पृथ्वी भगवान्की पूजा कर रही हो । उस समय प्रसन्नता से भरा समुद्र, रत्नरूप बलियोंसे सुशोभित ऊपर उठे हुए तरगरूपी हाथोंसे अजुली बाधकर बेला रूपी मस्तकसे भगवान्को नमस्कार कर रहा था ।

मार्गमें देश-देशके राजा प्रभुको नमस्कार कर रहे थे । स्थान-स्थान पर करबद्ध स्त्री-पुरुष यह प्रार्थना कर रहे थे, "हे देव ! कृपा करो, जगतको जन्म-मरणके चक्रसे निकालो । हे नाथ ! आपकी जय हो । हे ज्येष्ठ ! आपकी जय हो । हे देव ! आपकी जय हो । हे समीचीन धर्मके धारक ! हे सबके शरणभूत लक्ष्मीके धारक ! आपकी जय हो । इस प्रकार 'जय जयकार' की ध्वनिके बीच जिनवर जीवो पर दया करके अद्भुत विभूतिसे विहार कर रहे थे । लोकके कल्याणके लिए विश्वेश्वर विहार कर रहे थे और उनके आगे-आगे देश-देशके राजा चल रहे थे । जैसे पतिव्रता स्त्री पतिकी अनुगामिनी होकर प्रशसनीया होती है, उसी प्रकार महाविभूति रूपी स्त्री सर्वज्ञकी अनुगामिनी बनकर शोभा प्राप्त कर रही थी । भगवान्के समवसरणकी विभूति अति सुन्दर और प्रशसनीय थी । वायुके मन्द-मन्द झोकोसे भगवान्का मार्ग साफ हो रहा था । कौंदती हुई बिजलीकी चमकसे समस्त दिशाओके अग्रभाग प्रकाशित हो रहे थे और मेघ सुगन्धित जलसे मार्ग पर छिडकाव कर रहे थे । उनके आगे-आगे सुगन्धिदायक धूपके घडे लिये अग्नि कुमार देव चल रहे थे । धूपकी सुगन्ध लोकके अन्त तक फैल रही थी । तोरणो से समस्त मार्ग सुशोभित हो रहा था । तोरणोकी मध्य भूमिमे जो ऊचे-ऊचे केलेके वृक्ष तथा ध्वजाए लगी हुई थी, उनसे आच्छादित मार्ग इतनी सघन छायासे युक्त था कि वह सूर्यकी छविको भी रोकने लगा था । वनके निवासियोने बनकी मजरियोके समूहसे पीला पुष्प मण्डप तैयार किया था, जो उनके अपने पुण्यके समूहके समान दीख रहा था । ऐसे मार्गमे दयाकी मूर्ति, अहितका दमन करनेवाले स्वय ईश एव देदीप्यमान श्री नेमिनाथ पुष्प मण्डपमे समस्त जीवोंके हितके लिए विहार कर रहे थे । प्रभुके पीछे भामडल सुशोभित हो रहा था और अति निर्मल तीन छत्र उनके ऊपर ढल रहे थे । प्रभुके शरीरकी ज्योति और तेजका प्रतिबिम्ब मण्डल रूप हो गया था । जिस धर्म चक्रने सूर्यको जीत लिया है और जिसमे एक

हजार धाराएं है, उसकी कांतिसे आकाशमें प्रकाश हो रहा था । ऐसा धर्म चक्र उनके आगे चल रहा था। तीन लोकके प्रभु पृथ्वीपर विहार कर रहे थे और सभी उन्हे नमस्कार कर रहे थे ।

प्रभुके अहिंसामयी महान् व्यक्तित्वके प्रभावसे विहारमें जो भी उनके सम्पर्कमें आये, उनमे परस्परमे कोई वैर-भाव न रहा, कोई प्राणी किसी दूसरे प्राणीकी हिसा नही करता था। सभी सुखसे समय व्यतीत कर रहे थे । सर्प तथा नेवले और सिह तथा मृगादि सभी जाति विरोधी जीव निर्वैर हो गये थे । भगवन्तके प्रभावसे जीवो की दुर्बुद्धि दूर हो गयी । जहाँ-जहाँ भगवान् जाते थे, वहाँ सभी दिशाओके राजा पूजाकी सामग्री लेकर पूजनेके लिए आते थे । सभी नरेश्वर उनके साथ थे । सभी जातियोके देव भी विहारमे साथ थे । जिस-जिस स्थानपर भगवान् विहार करते थे, वहाँ की पृथ्वीका कण-कण पवित्र हो जाता था। सब जगह शुभ-ही-शुभ था ।

प्रभु नेमिनाथ समस्त जीवोको धर्मका प्रकाश देने और लोगोके कल्याणके लिए विहार कर रहे थे। उनकी काति ने देवोकी काति-को भी मात कर दिया। कई वर्ष उन्होने विहार किया। उन्होने अनेक देशो—जैसे सोरठ, पाचाल, मगध, अग और वग आदि मे विहार किया और आर्य खण्डके जीवोंको प्रबोधित किया। उनके उपदेशसे बहुतसे मन्द बुद्धि जीव प्रवीण हो गये । हिसक जीवोंने हिसा छोडी । जीवोके चिन्ता तथा खेद आदि समाप्त हो गये। भगवान्ने राजा और जनता सबको सम्बोधित किया, धर्मोपदेश दिया । उनके उप-देश के प्रभावसे बहुतसे स्त्री-पुरुष जिन धर्मावलम्बी बन गये, बहुत से राजा मुनि बन गये और बहुतोंने श्रावक धर्म अपनाया। बहुतसी स्त्रियाँ आर्यिकाएँ बन गयी और बहुतसी स्त्रियोंने श्राविका-धर्म अपनाया। इतना ही नही, उनके उपदेशसे बहुतसे शूद्र भी श्रावक-श्राविकाए बन गये। इस प्रकार प्रभुने समस्त जीवोंको

सम्बोधित किया। उनके उपदेशो का प्रभाव पशु-पक्षियोंपर भी पड़ा। उन्होने भी अपनी हिंसक वृत्ति त्याग दी।

विहार करते-करते नेमीश्वर मलय नामके देशमे आये और उसके भद्दुलपुर नगरके सहस्राभवनमे विराजमान हो गये। वहाँ भी पहले के समान समवसरणकी रचना की गयी और उसमे भगवान् नेमिनाथ अपने गणधरों सहित विराजमान हो गये। उस नगरका राजा पौण्ड्र नगरवासियोके साथ समवसरणमे आया और भगवान्‌को नमस्कार करके सभामे बैठ गया। देवकीके जो छह पुत्र सुदृष्टि सेठ और अलका सेठानीके यहाँ पले थे और उनके घरमे रहते थे, वे भी समवसरणमे आये। उनके साथ उनकी पत्निया भी थी, जो रूप लावण्य आदि गुणोमे इन्द्राणियोसे भी बढ-चढ कर थी। वे छहों भाई अपने-अपने रथोसे उतर कर समवसरणमे गये। वे भगवान्‌को नमस्कार करके और उनकी स्तुति करके राजाके साथ सभामे बैठ गये।

उस समय तीर्थंकर नेमिनाथने सभामे सम्यग्दर्शन से सुशोभित श्रावक धर्म और कर्म नाशक मुनि धर्मका उपदेश दिया। इन छह भाइयोने भगवान्‌से धर्मामृतका पान कर तत्त्वके वास्तविक रूपको समझ लिया। वे ससारसे विरक्त हो गये और उन्होंने अपने कुटुम्बी जनोको अपने इरादेकी सूचना देकर जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोके समीप निर्ग्रन्थ होकर मोक्ष लक्ष्मीको प्रदान करनेवाली मुनि दीक्षा एक साथ ली। उन राजकुमारोने द्वादशांग श्रुतज्ञान अभ्यास करके घोर तप किया। ये छहों मुनि दो-दो दिनके उपवास, पारणाए, प्रातः दुपहर और सायकालके योग, शयन और आसन आदि क्रियाएं साथ-साथ करते थे। उत्कृष्ट तपको तपनेवाले उन मुनियोके शरीरकी काति पहले से भी अधिक बढ गई। तीर्थकर भगवान्‌के चरणोकी सेवामें रत ये छहों मुनि अपने बाह्यन्तर तपमे एक-दूसरेकी उपमा थे।

इसके पश्चात् महाविभूतिके साथ विहार करके श्री नेमिनाथ मुनियो सहित गिरनार पर्वतपर वापिस आये और अपने समवसरण- से उसे सुशोभित करने लगे। श्री कृष्ण आदि यादव और द्वारिकाके नागरिक उनकी सेवामे रत थे। श्रुतज्ञान सागरकी तहको देखने- वाले वरदत्त आदि ग्यारह गणधर भी समवसरणमें यथास्थान विराजमान थे। वहां बहुतसे पूर्वधारी, शिक्षक अवधि-ज्ञानी, केवल ज्ञानी, विपुलमति मन पर्य ज्ञानी, अनेक वादी और बहुतसे विक्रिया ऋद्धिके धारक मुनि थे। आर्यिकाओकी प्रधाना राजमती भी अनेक आर्यिकाओ और श्राविकाओके साथ समवसरणमे विराजमान थी। वहाँ नेमिनाथ तीर्थंकर धर्मरूपी अमृतकी वर्षा करके प्यासे भव्य जीव रूपी चातकोको तृप्त कर रहे थे।

अपरिमित अभ्युदलवाले नेमिनाथ जिनेन्द्र रूपी सूर्यसे गिरनार पर्वतपर विद्वद् जनरूपी कमल प्रफुल्लित हो गये।

: ४२ :

पटरानियों के भव वर्णन

धर्म कथाकी समाप्तिपर विनयवन्ती देवकीने हाथ जोड़कर भगवान्को नमस्कार करके पूछा, "हे भगवन् ! आज महा मनोहर दिगम्बर मुनियोका युगल मेरे भवनमे तीन बार आया और उन्होने तीन बार आहार लिया । हे प्रभो ! जब मुनि एक बार ही आहार लेते है, तब उन्होंने एक ही घरमे तीन बार क्यो प्रवेश किया और आहार लिया ? यह भी हो सकता कि वह तीन मुनियोका युगल हो और अत्यन्त सदृश आकृति व रूप होने से मैंने उन्हें भ्रातिवश एक ही युगल समझ लिया हो । फिर उन्हे देखकर मेरे मनमें उनके प्रति ऐसा मोह क्यों उपजा, मानो वे मेरे पुत्र हो । यह क्या बात थी ?"

श्री भगवान् नेमिताथने देवकीको उत्तर दिया, "ये छहो मुनि तेरे पुत्र हैं और कृष्णसे पहले तूने इन्हे युगल रूपमे जन्म दिया था । कसके कोपसे उनकी रक्षा करनेके लिए वसुदेव उन्हे भद्रलपुरके सुदृष्टि सेठ और अलका सेठानीके यहाँ पालन-पोषणके लिए छोड आये । उन्होने उनको पुत्रवत् पाला । मेरे धर्मोपदेशको सुनकर उन्होंने मुझसे मुनि दीक्षा ले ली । ये कर्मोंको नष्ट करके इसी जन्मसे मोक्ष जायेगे । ये धर्मात्मा होनेके साथ-साथ तेरे पुत्र भी है, इसलिए इनको देखते ही तेरे मनमे स्नेह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था ।"

नेमिनाथके उत्तरसे सन्तुष्ट होकर देवकीने उन छहों पुत्र रूप मुनियों-को नमस्कार किया। कृष्ण ग्रादि दूसरे यादवोने भी उन्हें नमस्कार किया।

फिर कृष्ण की पटरानी सत्यभामाने प्रभुको प्रणाम करके अपने पूर्व जन्मोका हाल पूछा। केवलज्ञानी तीर्थंकर नेमिनाथ यादवोंके सामने उनके पूर्व भव बतलाने लगे .—

"मुण्डशलायन नामका एक ब्राह्मण भद्रलपुर नगरमे रहता था। उसके पिताका नाम मरीचि और माताका कपिला था। वह काव्य-रचनामे निपुण था ग्रौर अपने विद्या-मदमे गर्वित था। पुष्पदन्त तीर्थंकरके तीर्थमे धर्मका व्युच्छेद हो जाने से उसने गाय, कन्या ग्रौर स्वर्ण दानकी प्रवृत्ति चलाई। मुण्डशलायन पडितकी पहुँच राजपुरुषो तक हो गयी और राजा प्रजा सभी उसके चक्करमें फस गये। पापाचारमे प्रवृत्त होने के कारण वह मरकर सातवे नर्कमें गया। इधर-उधर जन्मोके पश्चात् उसने मनुष्य-जन्म पाया ग्रौर भील जाति मे जन्म लिया। उसका नाम पर्वतक था और उसकी भार्याका नाम बल्लरी था। उसी पर्वतपर चारण ऋद्धि धारी दो मुनि श्रीधर और धर्म आये। उनके दर्शनसे उस भीलके परिणामों-भावों-मे कुछ शान्ति आई और उसने मुनियोके कहने से उपवास किये। धर्म-पालनका यह फल हुग्रा कि वह मरकर विजयार्द्ध पर्वतकी अलका नगरीमे महाबल विद्याधरकी पत्नी ज्योतिमालासे पुत्र जन्मा। उसका नाम हरिवाहन रखा गया। उसका एक बडा भाई शतबली था। राजा महाबलने दोनो भाइयोंको राज सौंप कर मुनि श्रीधरसे दीक्षा ले ली और मोक्ष गया। किसी कारण से दोनों भाइयोमें झगड़ा हो गया ग्रौर बडे भाईने हरिवाहनको देशसे निकाल दिया। हरिवाहन भगली देशके अम्बुदावर्त पर्वतपर ठहर गया। तभी वहाँ चारण ऋद्धिधारी दो मुनि श्री धर्म ग्रौर अनन्तवीर्य आये। हरिवाहनने उनसे मुनि-दीक्षा ले ली ग्रौर मरकर स्वर्ग गया। स्वर्गके सुखोंका

भोगोपभोग करते समय उसके परिणाम सक्लेशमय हो गये । स्वर्गसे उसने राजा सुकेतुकी रानी स्वयंप्रभाके गर्भसे लड़कीका जन्म लिया और वह लड़की तू सत्यभामा ही थी । तू श्री कृष्णकी धर्म पत्नी बनी । अब तू तप करके स्वर्ग जायेगी और वहांसे भूलोकमे जन्म लेकर मोक्ष जायगी ।"

सत्यभामा निकट भविष्यमे मोक्ष जानेकी बात सुनकर बडी हर्षित हुई । उसने भगवान्को नमस्कार किया । इसके पश्चात् रुक्मणीने भगवान् नेमिनाथसे अपने पूर्व भव पूछे ।

श्री नेमिनाथने उसे बताया —

"मगध देशमे एक लक्ष्मीग्राम नगर था । वहां मोमदेव ब्राह्मण रहता था । तू उस ब्राह्मणकी पत्नी लक्ष्मीमती थी । तुझे अपने रूपका अभिमान था और तू महा मूढ बन कर पूज्य पुरुषोंका अपमान करती थी । एक दिन तू शृंगार करके तरह-तरहके वस्त्राभूषण पहन कर चन्द्रमा समान मणियोके दर्पणमे अपना चेहरा देख रही थी । संयोगवश उसी समय वहाँ तेरे घर तपसे महा क्षीण शरीरवाले समाधिगुप्त मुनि आहार के लिए आये । लक्ष्मीमतीने ग्लानिसे उस मुनिकी निन्दा की । मुनिकी निन्दा के पापके फलस्वरूप सात दिनमें उसे कोढ हो गया और वह आगमें प्रवेश करके जल कर मर गयी । दुःख और चिन्ताके विचारोके कारण वह मर कर गधी हुई और उस पर नमक लादा जाने लगा । मरकर वह राजगृहमे सूरी जन्मी। उस बेचारी को भी लोगोंने मार दिया । मर कर वह गायोके बाड़ेमें कुतियाकी योनिमें जन्मी । एक दिन बाड़ेमें आग लग गयी और वह कुतिया उस आगमे जल कर मर गयी और उस कुतियाका जीव मंडूक ग्राममें त्रिपद धीवरकी मण्डूकी भार्याके शतिगंधिका पुत्री हुआ । उसके पापके उदयसे मां मर गयी और उसकी दादीने उसका पालन-पोषण किया । उसके शरीरसे इतनी बुरी दुर्गन्ध आती थी कि कोई उसे अपने यहाँ रखनेको तैयार न था । इसलिए वह

लड़की एक नदीके किनारे रहने लगी। एक दिन नदीके किनारे उपवनमें समाधिगुप्त मुनि आकर विराजे। रातके समय बहुत ठण्ड पड रही थी, तब लडकीने दया करके मुनिको जालसे ढक दिया। मुनि महा दयावान् थे। उन्होंने उस लड़कीको धर्मोपदेश दिया तथा उसने उसके पूर्वजन्मोकी बात सुनायी। लडकीने श्राविकाका धर्म धारण कर लिया। तब यही लडकी उपारक नगरमे गयी और वहाँ उसे ग्रायिकाग्रोकी सगति मिली। उनके साथ-साथ वह भी राजगृही नगरी गयी। वहाँ उस लडकीने ग्राचाम्ल वर्द्धन नामका तप किया। राजगृही तो मुनियोका निर्वाण क्षेत्र है। वहाँ उसने सिद्ध शिलाकी वन्दना करके नील गुफामे सन्यास धारण किया। वह महासती मर कर देवी हुई। वहाँ से फिर कुण्डनपुरमे राजा भीष्मकी रानी श्रीमतीके तू रुक्मणी पुत्री हुई और वासुदेवकी पटरानी हुई। अब तू साध्वी होकर देव योनिमे जन्म लेगी। फिर मनुष्य योनिमे जन्म लेकर मुनि दीक्षा लेगी और मोक्ष जायगी।" रुक्मणीके पश्चात् वासुदेवकी तीसरी पटरानी जाम्बवतीने श्री नेमिनाथ जिनेन्द्रसे अपने पूर्व भव पूछे। ससारसे भयभीत सब प्राणियोंके सामने नेमिनाथजीने उसके पूर्व जन्मोका हाल इस प्रकार बताया :—

"जम्बूद्वीपके पुष्कलावती देशमें वीतशोका नगरी थी। उसमें देवल नामका एक बड़ा गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम देवमती और पुत्रीका नाम यशस्वनी था। इस लडकीका विवाह सुमति से हुआ। पतिके निधन पर वह बड़ी दु.खी हुई। तब एक गृहस्थी जिनदासने उसे बहुत समझाया, सान्त्वना दी, पर अज्ञानके कारण उसे विशेष ज्ञान तो हुआ नही पर उसने दान और उपवास किये। फल यह हुआ कि वह मर कर नन्दन वनमे अन्तर नामके देवकी मेरुनन्दन देवी हुई। देवयोनिके सुख भोग कर उसने ससारमें बहुत जन्म लिये। फिर वह जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमे विजयपुर नगरमे राजा वन्धुसेनकी पत्नी बुद्धिमती के उदरसे वन्धुयशा पुत्री

जन्मी। कुमारी अवस्थामें ही उसने श्रीमती आर्यिकाके सत्संगसे जिन-धर्मकी आराधना की और व्रत पालना करके मर कर कुबेरकी स्वयं-प्रभा स्त्री हुई। फिर जम्बूद्वीपकी पुण्डरीकणी नगरीमें वज्रमुष्टिकी सुभद्रा पत्नीसे सुमति नामकी पुत्री हुई। तब उसने सुन्दरी नामकी आर्यिकासे धर्म सुनकर रत्नावली नामका तप किया और समाधि-मरण करके स्वर्गमें गयी। वहाँ से चय कर भरतक्षेत्रके विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें जाम्बव नगरके विद्याधर राजा जाम्बवको जाम्बवती रानीसे तू जाम्बवती पुत्री हुई। तेरा विवाह राजा कृष्णसे हुआ। इस जन्ममें तू तपस्विनी होकर देव बनेगी। फिर तू राजपुत्र होगी और उसके बाद मोक्ष जायगी।"

भगवान् नेमिनाथसे अपने पूर्व जन्मकी और भविष्यमें मोक्ष जानेकी बात सुन कर रानीके सब संशय दूर हो गये। वह बहुत हर्षित हुई। उसने जिनेन्द्रदेवको प्रणाम किया और मनमें सोचा, "मैं संसारसे पार हो गयी।"

इसके पश्चात् श्री कृष्णकी चौथी रानी सुसीमाने अपने पूर्व भवोंका वृत्तान्त पूछा और श्री नेमिनाथने अपनी दिव्यध्वनिसे उसे बताया :—

"धातुकी खण्ड द्वीपमे मंगलावती देशमें रत्नसंचय नगर था। वहाँ का राजा विश्वसेन और उसकी रानी अनुन्धरी थी। राजाके मंत्रीका नाम सुमति था, जो परम श्रावक था। अयोध्याके राजा पद्मसेनने युद्धमे राजा विश्वसेनको मार दिया। इससे रानी अनुन्धरी बहुत दुःखी हुई। सुमति मंत्रीने उसे धर्मका उपदेश दिया, पर वह सम्यक्त्व न प्राप्त कर सकी। केवल बाह्य सुभक्ति कर सकी। फल? वह मर कर विजयद्वारके अधिष्ठाता विजय देवकी ज्वलनवेगा नामकी देवी हुई। फिर चिरकाल संसारमें जन्म-मरणमे भ्रमण करके जम्बू-द्वीपमें सीता नदीके दक्षिण तटपर शालिग्राम रमणीक गांव में महा

धनवान यक्षल गृहस्थकी देवसेना स्त्रीके उदरसे यक्ष देवी पुत्री हुई। उसका यह नाम इसलिए रखा गया, क्योंकि वह यक्षोंकी आराधना करती थी। वह यक्षोकी पूजाके लिए वनमें गयी थी। वहाँ उसने धर्मसेन गुरुसे धर्मोपदेश सुना। उस लड़कीने बड़ी भक्तिसे उस मुनिको भोजन कराया और पुण्यबन्ध किया। एक दिन वह यक्षदेवी अपनी सखियोके साथ क्रीडा करने विमल नामक पर्वतपर गयी थी। असमय अति वर्षाके कारण वह एक गुफामें घुस गयी। वहाँ पहले ही से शेर बैठा था। देखते ही शेरने यक्षदेवीको खा लिया। मर कर उस यक्षदेवीका जीव दो जन्मोके पश्चात् जम्बूद्वीपके विदेहमे पुष्कलावती देशमे वीतशोक नगरमे अशोक राजाकी श्रीमती रानीसे श्रीकान्ता पुत्री हुई। श्रीकान्ताने कुमारी अवस्थामे ही जिनदत्ता आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर रत्नावली नामका तप किया और मर कर स्वर्गमें देवी हुई। वहां से चय कर सुराष्ट्र देशके गिरि नगरमे राजा राष्ट्रवर्धनकी सुज्येष्ठा रानीके सुसीमा राजकुमारी हुई और श्री कृष्णसे ब्याही गयी। अब तू तप करके देव योनिमे जन्म लेगी और फिर मनुष्य पर्यायसे मोक्ष प्राप्त करेगी। सुसीमा यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुई और उसने तीर्थंकर नेमिनाथको प्रणाम करके अपना स्थान ग्रहण किया।

फिर श्री कृष्णकी पाँचवी पटरानी लक्ष्मणाने तीर्थेश्वरको नमस्कार करके अपने पूर्व जन्मोका हाल पूछा। तब भगवान्ने उसे बताया —

''जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमे कच्छकावती देशमे सीता नदीके उत्तरीय तटपर अरिष्टपुर नगरमे इन्द्र समान विभूतिवाला राजा वासव अपनी रानी सुमित्रा सहित रहता था। एक दिन राजा और रानी सहस्राम्र वनमे सागरसेन मुनिके दर्शनके लिए गये। गुरुसे धर्म सुनकर राजाको ससारसे विरक्ति हो गयी और उसने अपने राजकुमार वसुसेनको राज देकर मुनि दीक्षा ले ली। पर रानी सुमित्रा

पुत्र मोहवश आर्यिका न हुई, घरमे ही रही। फिर पुत्रका भी वियोग हो गया और रानी महा दुःख और अतिशोकसे मर गयी। मर कर वह भीलनी हुई। एक दिन उस भीलनी ने अवधिज्ञानी चारण ऋद्धि-धारी मुनि नन्दिभद्रके दर्शन किये और उनसे अपने पूर्व भव सुने। उसने तीन दिनका उपवास किया और मर कर नारददेवकी मेघ-मालिनी स्त्री हुई। फिर वह भरत क्षेत्रके दक्षिण तटपर चन्दनपुर नगरमें राजा महेन्द्रकी अनुन्धरी रानीसे कनकमाला पुत्री हुई। कनकमालाने स्वयवरमे महेन्द्र नगरके राजा हरिवाहन विद्याधरको चुना। एक दिन कनकमाला जिन-प्रतिमाओके दर्शन करने सिद्धकूट गयी, जहाँ चारण ऋद्धिके धारक एक मुनिसे अपने पूर्व जन्मोंका हाल सुन कर साध्वी हो गयी। तप करके मरने पर वह स्वर्गमे इन्द्रकी प्रिया इन्द्रानी हुई। वहाँ से वह राजा श्लक्षण रोमकी सुरमती रानीसे लक्ष्मणा नामकी पुत्री हुई। अब तू कृष्णकी पट-रानी है। अबसे तीसरे जन्ममे तेरी मुक्ति होगी।"

रानी लक्ष्मणाने भगवान्को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और अपना स्थान ग्रहण किया।

इसके बाद छठी पटरानी गाधारीने जिनेन्द्र भगवान्से अपने पूर्व भव पूछे और भगवान्ने उसे दिव्यध्वनिसे उसे बताया :—

"किसी समय कौशल देशमें अयोध्यामे रूपदत्त राजा रहता था। उसकी रानीका नाम विनयश्री था। रानीने अपने पतिके साथ सिद्धार्थ वनमे श्रीधर मुनिको आहार दिया। दो जन्मके पश्चात् विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमे गगनवल्लभ नगरमे विद्युद्वेगकी रानी विद्युन्मतीसे महा कांतिवती विनयश्री पुत्री हुई। उसका विवाह नित्यालोकपुरके राजा महेन्द्र विक्रमसे हुआ। कुछ समय पश्चात् राजाने चारण मुनियोंसे धर्मोपदेश सुन कर अपने पुत्र हरिवाहनको राज्य देकर मुनि दीक्षा ले ली। रानी विनयश्रीने आर्यिकाकी दीक्षा

थी, तप किया और समाधिमरण करके सौधर्म इन्द्रकी देवी हुई। वहाँ से चय कर तू गांधार देशमें पुष्कलावती नगरमें राजा इन्द्रगिर-की रानी मेरुमतीसे गांधारी राजकुमारी हुई और तेरा विवाह श्री कृष्णसे हुआ। अब तू साध्वी बनेगी, फिर देव बनेगी और फिर मनुष्य-जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगी।"

यह सुन कर गाधारी बडी प्रसन्न हुई और उसने भगवान्‌को नमस्कार किया।

फिर श्री कृष्णकी सातवीं पटरानी गौरीने भगवान्‌से अपने पूर्व भवोंका हाल पूछा और भगवान्‌ने उसे बताया :—

"इस भरत क्षेत्रके इभ्यपुर नगरमे कभी धनदेव सेठ रहता था। उसकी भार्याका नाम यशस्विनी था। एक दिन वह अपने महलकी छत पर खडी थी, कि उसने आकाशमे जाते हुए दो चारण ऋद्धिधारी मुनि देखे। उन्हे देखते ही उसे अपने पूर्व-जन्मोंका स्मरण हो गया। उसे मालूम हुआ कि वह धातकी खण्ड द्वीपके पूर्व मेरूकी पश्चिम दिशामे विदेह क्षेत्रके नन्दशोक नगरमे आनन्द सेठकी पत्नी थी। वहाँ उसने अपने पतिके साथ मितसागर मुनिराजको आहार दिया था। उन्हे पंचाश्चर्य प्राप्त हुए, पर कभी उन्होने वर्षाके पड़ते हुए पानीको पी लिया। वह पानी विष मिश्रित था। इसलिए पीते ही वे दोनों मर गये। मर कर वह देवकुरूमे आर्या हुई। उसके वाद इन्द्रानी हुई और फिर यहां यशस्विनी हुई। यशस्विनीने मुनिसे प्रोषधव्रत ग्रहण किया। कुछ जन्मोके पश्चात् तू राजा मेरू चन्द्रकी रानी चन्द्रमतीसे गौरी पुत्री हुई और अब श्री कृष्णकी रानी है। तू साध्वी बनेगी और दो जन्मके पश्चात् मोक्ष जायेगी।"

यह सुन कर गौरी बडी हर्षित हुई और उसने भगवान्‌को नमस्कार किया।

फिर आठवीं पटरानी पद्मावतीकी प्रार्थना पर भगवान् नेमिनाथने उसके पूर्व जन्मोका हाल बताना आरम्भ किया :—

"उज्जयिनी नगरीमे अपराजित राजा रहता था। उसकी रानीका नाम विजया था। और उन दोनोकी पुत्रीका नाम विनयश्री था। उसका विवाह हस्तिनापुरके राजा हरिसेनसे हुआ। पति-पत्नीने वरदत्त मुनिको आहार दिया। सोते हुए कालागुरू धूपके धुएँसे रानीका प्राणात हो गया। मर कर पहले वह एक पल्यकी आयुवाली आर्या हुई और फिर चन्द्रदेवकी चन्द्रप्रभा देवी हुई। फिर मगध देशके शाल्मली ग्राममे देविला और जयदेव दम्पतिके पद्मावती पुत्री हुई। एक बार उसने वर धर्म आचार्यसे यह व्रत लिया, कि वह जीवन पर्यन्त अज्ञात फल नही खायेगी। एक दिन असमयमे चण्डवाण नामक शक्तिशाली भीलने उस ग्राम पर आक्रमण कर दिया और वह वहाँ की समस्त प्रजा और पद्मदेवीको हर ले गया। उसने पद्मदेवीको कैदमे डाल दिया। वह भील उसे अपनी स्त्री बनाना चाहता था, पर उस शीलवती पद्मदेवीने किसी नीतिसे उसका निराकरण कर दिया और विपत्तिको टाल दिया। उसी समय राजगृहमे राजा सिंहरथने उस भीलको मार डाला, जिससे शाल्मली ग्रामकी वह प्रजा बन्धन मुक्त हो गयी और शरण रहित होने से इधर-उधर भटकने लगी। जनता भूखसे मारी-मारी किंपाक फल खाकर दु खसे मर गयी। परन्तु पद्मदेवी अपने अज्ञातफल न खानेके व्रतमे दृढ रही, उसने कोई अज्ञात फल नही खाया। वह सन्यास मरण करके एक पल्य आयुवाली आर्या हुई। फिर वह स्वयप्रभ देवकी स्वयप्रभा देवी हुई। इससे आगे तीन जन्मोके पश्चात् तू अरिष्टपुरके राजा स्वर्णनाभकी रानी श्रीमतीसे पद्मावती राजकुमारी हुई और तेरा श्री कृष्णसे विवाह हुआ। तप करके तू स्वर्गमें देव होगी और फिर मनुष्य योनिसे मोक्ष जायेगी।"

अपने भव-भवकी कथा सुन कर पद्मावतीने भगवान्को नमस्कार किया।

कृष्णकी आठ पटरानियोंके पश्चात् रोहणी, देवकी आदि देवियों और अन्य यादवोने भी अपने-अपने भव पूछे जिन्हे सुनकर वे ससारसे भयभीत हुए। फिर सभी जिनेन्द्रकी स्तुति करके तथा उन्हें नमस्कार करके अपने-अपने स्थानोको गये।

तरेसठ शलाका पुरुष

कृष्णके पश्चात् वसुदेवके यहा देवकीसे एक और पुत्र गजकुमार पैदा हुआ। यह राजकुमार अपने पिताके समान कातिवान था और बडे भाई श्रीकृष्णका बडा प्यारा था। जब यह राजकुमार बडा हुआ, तो कृष्णने कई अत्यन्त सुन्दर युवतियो से उसका विवाह कर दिया। इनमे से एक युवती सोमा थी जो सोमशर्माकी क्षत्रिय पत्नी से पैदा हुई थी।

उसी समय तीर्थंकर नेमिनाथ द्वारिकापुरी के समीप गिरनार पर्वत पर पधारे। सभी यादव महामगल द्रव्य लेकर उनके दर्शन और धर्म प्रवचन सुनने के लिए समवसरणमे गये। श्रीकृष्ण के साथ गजकुमार भी समवसरणमे गया। और जिनश्रीको नमस्कार करके अपने बडे भाई श्रीकृष्णके पास ही बैठ गया। उस समय श्रीनेमिनाथ ससार सागरसे पार तरने के उपाय रत्नत्रय रूप धर्मका प्रवचन कर रहे थे।

प्रवचनके पश्चात् श्रीकृष्णने बडी विनयसे अपने और दूसरे श्रोताओंके कल्याणके लिए उनसे पूछा, "हे नाथ! इस भरत क्षेत्र के वर्तमान कालके तरेसठ शलाका पुरुषोका हाल बतानेकी कृपा करे।"

शलाका पुरुष का आशय महा शक्तिशाली पुरुष है। इनकी संख्या तरेसठ है। चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ अर्द्ध चक्रवर्ती,

नौ नारायण या बलभद्र और नौ प्रतिनारायण का समूह तरेसठ शलाका पुरुष कहलाता है ।

तीर्थंकर नेमिनाथने श्रीकृष्णके प्रश्नके उत्तरमे तरेसठ शलाका पुरुषो का वर्णन सक्षेपमे किया ।

वर्तमान कालमे चौबीस तीर्थंकर हुए । सबसे पहले तीर्थंकर श्री ऋषभनाथ हुए जिन्हे आदिनाथ जी भी कहते है । उनके पश्चात् (२) अजितनाथ जी (३) सम्भवनाथ जी (४) अभिनन्दननाथ जी (५) सुमतिनाथ जी (६) पद्मप्रभु नाथ जी (७) सुपार्श्वनाथ जी (८) चदाप्रभु जी (९) पुष्पदन्त जी (१०) शीतलनाथ जी (११) श्रेयासनाथ जी (१२) वास पूज्य जी (१३) विमलनाथ जी (१४) अनतनाथ जी (१५) धर्मनाथ जी (१६) शातिनाथ जी (१७) कुन्थुनाथ जी (१८) अमरनाथ जी (१९) मल्लिनाथ जी (२०) सुव्रतनाथ जी (२१) नमिनाथ जी और बाईसवे तीर्थंकर स्वय नेमिनाथ जी थे । उनके पश्चात् तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी और चौबीसवे तीर्थंकर महावीर जी होगे ।१

श्री शान्ति नाथ जी, कुन्थु नाथ जी और अरहनाथ जी ये तीनो तीर्थंकर चक्रवर्ती भी हुए थे ।।शेष सब तीर्थंकर सामान्य राजा हुए ।

श्री बासपूज्य जी, मल्लि नाथ जी, नेमनाथजी, पार्श्वनाथजी और वर्धमान जी यानी महावीर स्वामी इन पांच तीर्थंकरो ने कुमारावस्था मे ही दीक्षा धारण की थी और बाकी उन्नीस तीर्थंकरो ने राजा होने के साथ दीक्षा ग्रहण की थी । और वे विवाहित थे ।

---

१ इन तीर्थंकरो का सविस्तार वर्णन जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर द्वारा प्रकाशित तिलोय पण्णति भाग २ के पृष्ठ १०14 से १०२२ तक पर दिया है । लेखक

श्री आदिनाथ जी पहले तीर्थंकर हुए। इनके पिता चौदहवे मनु या कुलकर नाभिराजा और माता मरुदेवी थी। नाभिराजा इक्ष्वाकुवंशके तिलक और अयोध्याके राजा थे। आदिनाथ का जन्म चैत्र कृष्णा नवमी को हुआ था। देवेन्द्रो ने इनका जन्म कल्याणक मनाया। जन्मते ही इन्द्रने देवोके साथ इन्हें मेरुगिरि के शिखर पर पांडुक वनमे पांडुक शिला पर सिंहासन मे विराजमान करके स्नान किया। मति, श्रुति और अवधि इन तीन ज्ञानो से पूर्ण आदिनाथ कुमारावस्था को प्राप्त हुए। उनका विवाह यशस्वती और सुनन्दा नामकी दो अति सुन्दर यौवन सम्पन्न और गुणवती नवयुवतियो मे हुआ। कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर जब प्रजाने नाभिराजासे अपने कष्टोका निवेदन किया, तब उन्होने प्रजा के मुखियाओंको राजकुमार आदिनाथके पास भेज दिया। इस पर राजकुमार ने उन्हे असि, मषी, कृषि, विद्या, वाणिज्य और पशु पालन छह कर्मों के द्वारा आजीविका कमाने का उपदेश दिया।

उत्तम मुहूर्त मे नाभिराजाने आदिनाथ को उत्कृष्ट राज्यपद प्रदान किया। आदिनाथके भरतादि एक सौ एक पुत्र थे। राजकुमार भरत पहले चक्रवर्ती थे। कुमार बाहुबलि दूसरे पुत्र थे। इनके दो पुत्रियाँ थी। एक का नाम नन्दा और दूसरी का नाम सुनन्दा था।

एक दिन राजदरबार से सद्गुणयुक्त गायन तथा नृत्य कला मे निपुण चचल देवागना नीलाजसा उन के सामने नृत्य करते-करते आयु का नाश होने पर बिजली के समान तत्काल अदृश्य हो गयी। इस घटना को देखकर राजा आदिनाथ को ससार से विरक्ति हो गयी। उन्होने सोचा कि इस संसार मे जीव मेघ के समान नश्वर है। फिर उन्होंने युवराज भरत को राज्य दिया और बाहुबलि को पोंदनपुर का राज्य दिया। आदिनाथ ने चैत्र कृष्ण नवमी के दिन केश लोच पूर्वक दीक्षा धारण की। पाप का नाश करने वाले

योगी आदि जिन छह मास तक ध्यान में निमग्न हो गये और छह महीने का उपवास किया। जब वे आहार के लिए निकले तब लोगों को साधुओं को आहार देने की विधि नही आती थी। आदिनाथ विहार करते-करते हस्तिनापुर आए। वहां राजा श्रेयांस ने उन्हें नमस्कार कर के इक्षु-रस का आहार दिया। एक वर्ष के महातप के पश्चात् उन्हें कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया। इनके मुख्य गणधर का नाम वृषभ सेन था। बहुत समय तक धर्मोपदेश देने के पश्चात् कैलाश पर्वत से माघ बदि चतुर्दशी को इन को मोक्ष प्राप्त हुआ। भगवान आदिनाथ को वृषभनाथ या ऋषभ नाथ भी कहते है।

बारह चक्रवर्तियो के नाम (१) भरत (२) सगर (३) मघवा (४) सन्तकुमार (५) शान्तिनाथ (६) कुथु (७) अर (८) सुभौम (६) पद्म (१०) हरिषेण (११) जयसेन (१२) ब्रह्मदर्व थे।

नौ नारायणो के नाम (१) त्रिपृष्ठ (२) द्विपृष्ठ (३) स्वयभू (४) पुरुषोत्तम (५) पुरुष सिंह (६) पु डरीक (७) दत्त (८) नारायण और (६) कृष्ण थे. नारायणो को अर्धचक्रवर्ती भी कहते है।

नौ प्रतिनारायणो के नाम (१) अश्वग्रीव (२) तारक (३) मेरुक (४) मधुकैटभ (५) निशुम्भ (६) बलि (७)प्रहरण (८) रावण (६) जरासध थे। इन को प्रति शत्रु भी कहते हैं।

नौ बल देवो के नाम (१) विजय (२) अचल (३) सुधर्म (४) सुप्रभ (५) सुदर्शन (६) नान्दी (७) नन्दि मित्र (८) राम और (६) पद्म थे। इन को बलभद्र भी कहते हैं।

उपर्युक्त तरेसठ शलाका-पुरुषों का वर्णन हमारे पुराणो और चरित्रो मे मिलता है।

: ४४ :

द्वारिका दहन

श्री गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको गजकुमारका वृत्तान्त सुनाया। तीर्थंकर आदिका चरित्र सुनकर गजकुमार ससार से भयभीत हो गया और पिता-पुत्र आदि समस्त कुटुम्बीजनोको छोडकर बडी विनयसे जिनेन्द्र भगवान नेमिनाथके पास जाकर दीक्षा लेकर तप करने लगा। गजकुमारके विवाहके लिए प्रभावती आदि जो कन्याए निश्चित की गई थी, उन सबने उनके ससार त्यागते ही ससार से विरक्त होकर दीक्षा ले ली।

इसके पश्चात् किसी दिन गजकुमार मुनि रात्रिके समय एकान्त मे प्रतिभा योगसे विराजमान हो सब प्रकारके कष्ट सहते हुए तपमे तल्लीन थे। सोमशर्मा अपनी पुत्री सोमाके त्यागसे क्रोधित हो मुनि गजकुमारके पास आया। वह मुनिराजके सिर पर तीव्र अग्नि प्रज्वलित करने लगा। अग्निसे मुनिका शरीर जलने लगा। उसी अवस्थामें शुक्लध्यानसे कर्मोको नष्ट करके मुनि केवली होकर मोक्ष चले गये।

मुनि गजकुमारके मरण का समाचार सुनकर यादव केवल बहुत दु:खी ही नही हुए, वरन् वसुदेवको छोड कर समुद्रविजयादि नौ भाई मुनि बन गये। देवकी और रोहिणीके सिवाये दूसरी सभी रानियोंने भी दीक्षा ले ली।

इधर तीर्थंकर नेमिनाथने जनताको प्रबोधित करते हुए सभी दिशाओंमे विहार करके अनेक राजाओको धर्ममें स्थिर किया। फिर वे लौट कर अपने समवसरणको सुशोभित करते हुए गिरनार पर्वत पर विराजमान हो गये। यदुवशी राजा वसुदेव, कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्नकुमार, बहुत-सी रानिया और द्वारिका निवासी बड़ी विभूति-के साथ उनके दर्शनार्थ आये और धर्म प्रवचन सुनने लगे।

धर्म कथा के बाद बलदेवने बडी विनयसे नमस्कार करके श्री नेमिनाथसे नीचे लिखे तीन प्रश्न पूछे —

(१) "कुबेर द्वारा निर्मित इस द्वारिका पुरीका अन्त कितने समयके बाद होगा ? यह नगरी समय बीतनेपर स्वयं ही विलय होगी या किसीके निमित्तसे नष्ट होगी ?"

(२) "कृष्णका परलोक गमन किस कारण से होगा ?"

(३) " मुझे सयमकी प्राप्ति कब होगी ?"

श्री नेमिनाथने बलदेवसे कहा, "हे महाभव्य ! यह नगरी द्वारिकापुरी बारहवे वर्ष द्वैपायन मुनि द्वारा भस्म होगी, क्योकि उन्मत्ततासे यादवकुमार ही उसे क्रुद्ध करेंगे।

कृष्णका मरण सोते हुए कोसाबी नगरमे जरत्कुमारके बाणसे होगा। आप कृष्णकी मृत्युके निमित्तको पाकर तप करेंगे और ब्रह्मस्वर्गमे उत्पन्न होगे।

द्वैपायन कुमार रोहिणीका भाई और बलदेवका मामा था। भगवानके ये वचन सुन कर वह ससारसे विरक्त हो गया और मुनि बन कर तप करने लगा। बारह वर्षकी अवधि पूरी करने के लिए पूर्वदेशकी तरफ जा कर अपने कषायो और शरीरको सुखानेवाला महा तप करने लगा। जरत्कुमार भी यह जानकर बड़ा दु:खी हुआ कि उसके द्वारा कृष्णकी मृत्यु होगी। वह भाई-बहनोको छोड़ कर किसी

ऐसे स्थान पर चला गया, जहां उसे कृष्ण दिखाई भी न दे। पर वह कृष्णके प्रति स्नेह से बड़ा व्याकुल हुआ। दूर वनमें जा कर वनके जीवोंकी तरह वनमें विचरने लगा। सभी यादव भावी दुःख-की चिन्तासे सतप्त भगवान्को नमस्कार करके द्वारिकापुरी लौट आये। बलदेव और कृष्णने नगरमे यह घोषणा करा दी कि मद्य बनानेके साधन और मद्य शीघ्र ही नगरसे अलग कर दिये जाये। जो उसे रखेगा, वह दण्ड का भागी होगा। जनताने उनके आदेशों का पालन करके मदिरा बनाने की समस्त सामग्रीको पहाडोंके बीच बने हुए गिरीकी गुफामे फेंक दिया। जो मदिरा कुण्डोंमें छोडी गई थी, वह उनमे भरी रही। जनता हितैपी कृष्णने दूसरी घोषणा यह कराई कि मेरे माता-पिता, भाई, स्त्री और पुत्री जो वैराग्य धारण करना चाहे, वे शीघ्रता करे। वह किसीको मना न करेगा। कृष्णकी आज्ञानुसार उनके पुत्र प्रद्युम्न कुमार आदि परिग्रह त्याग कर मुनि बन गये। कृष्णकी आठो पटरानियों ने भी दीक्षा ले ली। द्वारिका-के बहुत-से स्त्री-पुरुष भी साधु-साध्वी बन गये।

श्री कृष्णने सबसे यही कहा कि यह ससार समुद्र बहुत गहरा है, वीतराग धर्म समान उसे पार करने का दूसरा जहाज नही है और भगवान् नेमिनाथके समान दूसरा पार करने वाला नही है। इस लिए उनकी शरणमे जाओ। उन्होंने कहा कि अभी उनके वैराग्यका समय नही आया है और बलदेव भी उसके मोहके कारण मुनि नहीं बन सकते। उसके मरने के पश्चात् बलदेव भी मुनि बनेगा।

सिद्धार्थ नामके सारथीने बलदेवसे वैराग्यकी आज्ञा मांगी, तो बलदेवने उसे अनुमति देते हुए यह प्रार्थना की कि जब उसे कृष्णके वियोगका सताप हो, तब वह देव लोक से आकर उसे सम्बोधित करे।

महासघ सहित भगवान् नेमिनाथने पल्लव देशकी तरफ बिहार किया और मार्गमे जिन धर्मका उपदेश दिया। द्वारिका निवासी नगरीको छोडकर वनमे जा बसे और पूजा, दान, व्रत और उपवास मे लीन रहने लगे।

सयोगकी बात है कि वे नगर निवासी वर्षोंकी गिनती भूल गये और बारह वर्ष पूरे होने से पहले ही नगरमे लौट आये। इसी प्रकार रोहिणीका भाई द्वैपायन मुनि भी देश-विदेश बिहार करता हुआ, वर्षोंकी गिनती भूलगया और अवधि पूरी होने से पहले द्वारिका आ गया। द्वैपायन मुनि शरीरसे तो मुनि था, पर उसका विश्वास मिथ्या था। उसने मनमें सोचा कि भगवान नेमिनाथकी भविष्यवाणी टल गई। वह द्वारिकाके बाहर गिरिके पास कायोत्सर्ग खडा तप करने लगा।

इधर कृष्णके पुत्र सबुकुमार आदि यदुकुमार वन क्रीडा करते-करते थक गये और उन्हे जोरकी प्यास लगी। वनके कुण्डो मे शराब पडी थी, वह सूख गई थी। पर जल बरसने से और तट पर खड़े महुवेके वृक्षोके फल गिरने और सूर्यकी तपनसे जल गरम हो गया। वह समस्त जल मदिरा समान मादक बन गया। प्याससे पीडित उन यदुकुमारोने उस जलको छान कर पी लिया। पीते ही उन्हें नशा हो गया। वे विकारी बन गये। उन्मत्त हो गये, उनकी आखे लाल हो गई और वे बेहोशीमे नाचने-गाने लगे, कुछ-कुछ बकने लगे और उनके पाव डगमगाने लगे। उनके सिरके केश बिखर गये और गलेकी पुष्पमालाए बिखर गईं। ऐसी हालतमें वे शहरको लौट रहे थे। मार्गमे उन्होने द्वैपायन मुनिको देखकर आपसमें कहा, कि इसके द्वारा द्वारिकाका नाश होने वाला है, देखे यह हमसे बच कर कहां जाता है? ऐसा सोचते ही वे द्वैपायन मुनिको पत्थर मारने लगे। उन्होने इतना मारा कि वह तपस्वी धरती पर गिर पड़ा। इससे मुनिको बड़ा क्रोध पैदा हुआ, उसकी भौहे चढ़ गई और वह

होंठ चबाने लगा। बस अब क्या था ? वह यादवोका विनाश करने के लिए तैयार हो गया। यदुकुमार भागकर द्वारिकामे आये।

बलदेव और वासुदेवने किसीसे इस समस्त घटनाको सुन लिया। वे बडे चिंतित हुए। उन्हे भगवान्‌की भविष्यवाणी सच्ची होती लगी। तब वे दोनों भाई मुनिसे क्षमा मागने उसके पास छत्र, चवर, सिंहासन और समस्त सेना पीछे छोडकर गये। मुनि तो क्रोधकी अग्निसे प्रज्वलित था ही, उसकी बुद्धि क्लेश रूप बन गई थी, भ्रकुटी टेडी हो गई थी, मुख विषम बन गया था। उसकी आखे इतनी लाल हो गईं थी, कि उनकी तरफ देखना भी कठिन था। मारे क्रोधके उसके प्राण कण्ठ तक आ गये थे। इस प्रकार उसके मुखकी महाभयकर आकृति बन गई थी। मुनि को देख कर बलदेव और कृष्णने हाथ जोड कर बडे आदरसे उसे नमस्कार किया और यह जानते हुए भी कि हमारी प्रार्थना बेकार होगी, उन्होने मोहवश प्रार्थना की, "हे साधो ! आपने चिरकालसे अपने क्षमामूलक तप की रक्षा की है, आज वह तप क्रोध रूपी अग्निसे जल रहा है, उसकी रक्षा कीजिये। यह क्रोध मोक्षके साधनभूत तपको थोडी-सी देरमे नष्ट कर देता है, चारो पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—का शत्रु है और निज और परको नष्ट कर देता है। हे मुनिराज ! इसलिए आप इन मूढ राजकुमारोंकी मूर्खतापूर्ण चेष्टा को क्षमा कर दे, हम पर प्रसन्न हो जाये।" इस सब अनुनय-विनय का मुनि द्वैपायन पर जरा भी प्रभाव न हुआ, वह अपने दुर्निश्चयसे जरा भी टस-से-मस न हुआ। मुनिकी बुद्धि तो अत्यंत पापपूर्ण हो गई थी और वे प्राणियों सहित द्वारिकाको जलाने के निश्चयपर दृढ थे। मुनिने दो अगुलियोके इशारे से उन्हे बताया कि केवल तुम बलभद्र और कृष्ण बचोगे और कोई नही।

मुनिके अभिप्रायको जान कर वे दोनो भाई अति दु.खी मनसे किंकर्तव्यविमूढ हो द्वारिकापुरी आये और सोचने लगे कि अब

क्या करें। उसी समय सम्बुकुमार आदि अनेक यादव नगरीसे निकले और दीक्षित हो गये। वे पर्वतकी गुफा आदिमें विराजमान हो गये। द्वैपायन मुनि अपने क्रोधसे अपने तपको नष्ट करके, मर कर अग्नि कुमार मिथ्यादृष्टि देव हुआ और उसने द्वारिका पुरीको भस्म कर दिया। सभी वृद्ध, स्त्री, बालक, पशु और पक्षी अग्निमें भस्म हो गये। उस समय जो हाहाकार हुआ, वैसा हाहाकार कभी नही हुआ।

प्रश्न हो सकता है कि जिस द्वारिकाका देवोने निर्माण किया और जिसके रक्षक भी देव थे, वह क्यो भस्म हो गई। पर भवितव्यता तो दुर्निवार है, वह टलती नही। बलभद्र आदिने समुद्रका जो जल अग्नि शात करने के लिए डाला था, वह भी तेल बन कर अग्निको बढाने मे सहायक हुआ। कृष्ण और बलदेवने अग्निको असाध्य समझ कर अपने माता-पिता और दूसरे कुटुम्बियोको रथ पर बिठा कर नगरीमे बचाने का प्रयत्न किया, पर रथ था कि उसके पहिये ही पृथ्वीमे गड गये, और वह आगे न सरका। फिर उन्होने स्वय रथको खीचना शुरू किया, पर फल कुछ न हुआ। रथ तो वही कील सा गया।

उसी समय द्वारिकाके किवाड बन्द हो गये। दोनो भाइयोंने उन्हे खोलने का बडा प्रयत्न किया। किवाड तो खुल गये, पर उसी समय देव वाणी हुई, "तुम दोनो ही इस अग्नि काण्डसे बचोगे और कोई नही।"

माता-पिताने भी अपना विनाश निश्चित समझकर बलदेव और कृष्णको बच कर जाने को कहा क्योकि यदि वे जीवित रहे तो यदुवशका निशान बाकी रहेगा। तब वे दोनों भाई माता-पिताके पांव पडे, उन्हे नमस्कार किया और उनकी आज्ञा पाकर रोते-बिलखते नगरसे चल पडे। वे दक्षिण दिशाको चले गये।

उस अग्नि काण्डके समय वसुदेव आदि यादवो, उनकी स्त्रियो और बहुतसे नगर निवासियोने बड़े धैर्यका परिचय दिया। उन्होने सयम धारण कर लिया, सन्याम ले लिया और धर्म-ध्यानसे समस्त उपसर्ग व विपत्तिको सहन किया। वे जानते थे, कि ससार का नियम ही यह है, कि जो जन्मता है, वह अवश्य मरता है। इसलिए उन्होंने समाधिमरण पूर्वक धर्मध्यानसे शरीर त्याग दिया और अपनेको धन्य किया। उन्होने मरते समय भी उपसर्ग आने पर भी मनमे बुरा विचार न आने दिया। सच्चे धीर-वीर शान्तमना व्यक्ति मरण आने पर कायर नही बनते, दृढमना रहते है। ऐसे जीव स्वर्ग और फिर मोक्ष जाते है।

धन्य है वे पुरुष जो अग्नि-शिखाके समूहमे भस्म होते हुए भी समाधिको नही छोडते और शरीर त्याग करते है। यही सतोकी रीति है।

और द्वैपायन मुनिने अपना तप बिगाडा, अपना नाश किया, अनेक जीवोको नष्ट किया और अपना भविष्य बिगाड़ा। जो आदमी क्रोध, मान, माया और लोभके वशीभूत हो जाता है, वह अपना घात तो अवश्य करता है, दूसरोका घात कर सके या न कर सके क्योकि दूसरोका घात तो उनके अपने भाग्याधीन है। दूसरोको मारने का प्रयत्न करना, जलते लोहेके गोलेको उठानेके समान है। उसको उठानेवाला तो स्वय अवश्य जलता है, वह दूसरोको जला सके या नही, यह कोई नही कह सकता। जहाँ दूसरे आदमियोके लिए तप निर्वाणका कारण बनता है, वहाँ द्वैपायनके लिए वह दीर्घ आवागमनका कारण बन गया। द्वैपायनने भवितव्यताके वश होकर द्वारिका पुरीको भस्म किया। वह नगरी छह महीने लगातार जलती रही। उसके ऊँचे-ऊँचे भवन, महल और अटारियां जलकर मिट्टीमे मिल गईं। यह था द्वारिका का नाश, महानाश!

: ४५ :

श्री कृष्ण परलोक गमन

बलदेव और श्री कृष्णकी महानताको मनुष्य वर्णन नही कर सकता । उन दोनोने पुण्यके योगसे परम उच्चता प्राप्त की और सुदर्शन चक्र आदि अनेक महारत्न इनके पास थे . वे भरत क्षेत्रके भूपति थे । पर जब उनके पुण्य का क्षय हो गया, उनके रत्न गये, बन्धु वर्ग आदि गये । केवल उनके प्राण मात्र ही उनका परिवार था । ये दोनो वीर महाधीर शोकसे अति पीडित जीने मात्रकी आशा लेकर दक्षिणकी ओर चल पड़े । क्योंकि वहाँ पाण्डव दक्षिण मथुरा-में निवास कर रहे थे । इस विपत्तिमे दोनोने वही जानेका निर्णय किया ।

मार्गमे हस्तप्रभ नगर पडता था । कृष्ण तो नगरके बाहर वनमे ठहर गये और बलदेव भोजनके लिए सामग्री लेने नगरमे गये । उन्होने अपना समस्त शरीर वस्त्रसे लपेट रखा था । वहाँ का राजा अच्छदन्त बडा प्रसिद्ध और महाधनुर्धारी था और धृतराष्ट्रके वंश-का था । वह यादवोके दोष ही ढूँढता रहता था । वह उनका महा शत्रु था ।

ज्योही बलभद्रने नगरमे प्रवेश किया, उनके अपना रूप छिपाने के बड़े प्रयत्न करने पर भी लोगोने उन्हे पहचान लिया और उनके इर्द-गिर्द एकत्रित हो गये । बलभद्रने एक वणिकको अपने कडे और

कुण्डल देकर उससे खाने-पीने की सामग्री ली और नगरसे निकला। राजाके पहरेदारोने भी बलभद्रको पहचान लिया और उन्होने राजा-को तुरन्त सूचना दे दी। फिर क्या था ? राजाने उसको पकडने-मारनेके लिए तुरन्त अपनी सेना भेज दी।

बलभद्रने अन्नादि सामग्री परे रख दी और हाथी बाधनेका थम्ब उखाड़ कर लडनेको तैयार हो गया और मुख्य द्वारकी आगल निकाल कर सेनाके सामने डट गया। उन दोनोने राजा और सेना-को मार कर भगा दिया।

फिर ये दोनो भाई खाद्य सामग्री लेकर विजय वनमे एक रम-णीक सरोवरके पास आ गये। वहाँ उन्होने जल छानकर स्नानादि करके भगवान् नेमिनाथका स्मरण करके भोजन किया और कुछ समय विश्राम किया।

फिर वे दक्षिणकी ओर चल पडे और चलते-चलते महादुर्गम और महाभयानक कौशम्बी वनमे पहुँचे। पशुओ, शृगालों और पक्षियोंके शब्दसे वह वन शब्दायमान हो रहा था। प्यासके मारे हिरणोके झुण्ड-के-झुण्ड वहाँ मारे-मारे इधर-उधर फिर रहे थे। वहाँ की गर्म-गर्म पवन असह्य थी और दावानलसे वहाँ की लताओं-के समूह, झाडियाँ और वृक्ष झुलस गये थे। पानीका वहाँ कहीं नामोनिशान तक न था। मारे गर्मीके जगली जानवरोंके जो श्वास-पर-श्वास निकल रहे थे, उनके शोरसे वन गूँज रहा था। ऐसे वनमे पहुँच कर प्याससे पीडित कृष्णने अपने बडे भाई बलभद्रसे कहा, "हे आर्य ! मै प्याससे बहुत व्याकुल हूँ। मेरे होठ और तालु सूख गये है। अब मै एक कदम भी आगे चलने मे असमर्थ हूँ। इसलिए अनादि और सारहीन ससारमे सम्यग्दर्शनके समान तृष्णाको दूर करनेवाला शीतल जल मुझे पिलाओ।"

बलभद्र कृष्णको जिनवाणी रूप अमृतका पान करनेको कहकर जल लेने वहाँ से दूर चले गये। कृष्ण पीताम्बर ओढ कर सघन वृक्षकी छायामें विश्राम करने लगे।

देवयोग से उसी समय जरत्कुमार वहाँ आ निकला। वह शिकारके लिए वनमे अकेला घूम रहा था। पहले बताया जा चुका है, कि वह तो कृष्णके प्राणकी रक्षाके विचारसे स्नेहवश द्वारिकासे वनमे चला गया था। वह वनचरोके समान वनमे रह रहा था। पर भवितव्यके योगसे जरत्कुमार वही आ पहुँचा। उसके हाथमे धनुष था। उसने दूरसे कृष्णके हिलते पीले वस्त्रोको देख कर भ्रातिवश समझा, कि कोई हिरन है। उसने झटसे बाणका निशाना बाधा और खीच कर तेज तीर मारा, जिसने कृष्णके पावको बीध दिया। तभी कृष्णने उठ कर चारो ओर देखा, पर जरत्कुमार वृक्षकी ओटमें होने से दिखाई न दिया। तब कृष्णने पुकार कर पूछा, "इस वनमे हमारा कौन शत्रु है? किसने हमारा पाव अकारण बीधा है? जरा अपना नाम और कुल तो बताओ? मैंने कभी अज्ञात कुल और अज्ञात नाम वाले व्यक्तिका वध नही किया। इस वनमे ऐसा मेरा कौन घातक है, जिसकी शत्रुता तक का मुझे पता नही?"

इस पर जरत्कुमारने उत्तर दिया, "मै बलदेव और श्री कृष्णके पिता वसुदेवका पुत्र जरत्कुमार हूँ। कायरोसे अगम्य इस वनमे मैं अकेला घूम रहा हूँ। जब मैने श्री नेमिनाथकी भविष्यवाणी सुनी कि मेरे हाथो छोटे भाई कृष्णका बध होगा, तभीसे मै उस दुष्कृत्य को टालने के लिए इस वनमें बारह वर्षसे फिर रहा हूँ इस लम्बी अवधिमे मैंने आज तक किसी आर्यका वचन नही सुना, फिर यहाँ कौन है?"

जरत्कुमारका उत्तर सुन कर कृष्ण समझ गया कि वह उसका बडा भाई है। कृष्णने उसे अपने पास बुलाया। जरत्कुमारने यह समझ कर कि उससे कृष्णको बाण लगा है, वह 'हाय-हाय'

चिल्लाने लगा । वह कृष्णके पास गया । उसने धनुष बाण धरती पर फेंक दिया और उसके चरणों पर गिर पडा । वह अत्यन्त शोकमग्न था । तब कृष्णने उसे उठाकर छातीसे लगा लिया । कृष्णने जरत्कुमारसे कहा, "हे ज्येष्ठ भ्राता ! शोक मत करो । होनहार अटल होती है । आपने मेरी प्राण रक्षाके लिए सुख-सम्पदा छोडी, बहुत वर्षों तक वनमे निवास किया, होनहारको टालनेका प्रयत्न किया । अपयश और पापसे डरनेवाला सज्जन पुरुष बुद्धि पूर्वक प्रयत्न करता है, परन्तु जिसका दैव कुटिल हो, पराङ्मुख हो, तब कोई क्या यत्न कर सकता है ?"

इसके पश्चात् जरत्कुमारने कृष्णसे वनमे आने का कारण पूछा, तो कृष्णने आरम्भसे द्वारिका दहन तक का सब हाल सुनाया । वंशका नाश सुन कर जरत्कुमार विलाप करने लगा । वह कहने लगा, "हे भाई ! चिरकालके बाद तो आप मिले और मैने आपका यह आतिथ्य-सत्कार किया । मै क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? चित्तकी शान्ति कहाँ प्राप्त करूँ ? हा कृष्ण ! आपको मार कर मैने दुनिया मे दुःख और अपयश ही पाया ।"

उत्तम हृदयी जरत्कुमारको सान्त्वना देते हुए श्री कृष्णने कहा, "हे राजेन्द्र ! इस विलापको छोडो । सब जीव किये हुए कर्मोंका फल भोगते है । ससारमे कौन किसको सुख-दुःख देता है ? कौन किसका मित्र है ? कौन किसका शत्रु है ? वास्तवमे अपना किया हुआ कार्य ही सुख या दुःख देता है । बलदेव मेरे लिए जल लेने गया है । आप शीघ्र ही उनके आनेसे पहले यहाँ से चले जाओ । कही ऐसा न हो कि वह आप पर क्रुद्ध होकर आपको मार दे और फिर अपना वश ही न रहे । आप श्रावकके व्रत धारण करो और जाकर पाण्डवोंसे सब बात कह दो । वे अपने हितैषी है । हमारे कुलकी रक्षाके लिए वे अवश्य आपको राज देंगे । इतना कहकर श्री कृष्णने जरत्कुमारको कौस्तुभमणि निशानीके रूपमें दी, जिसे देखकर पाण्डव

उसका आदर करें। श्री कृष्णने उस मणिको छिपाकर ले जानेको कहा। जरत्कुमारने मणि लेकर कृष्णसे क्षमा मांगी। श्री कृष्णके घावका बाण निकाला और विदा ली।

श्री कृष्णके पावमे घावकी बडी पीडा थी। तब उन्होंने उत्तर दिशाकी ओर मुख करके पल्लव देश स्थित तीर्थंकर नेमिनाथको नमस्कार किया और णमोकार मन्त्रका स्मरण किया। वे पृथ्वी रूपी शैया पर लेट गये। उन्होने अपना शरीर वस्त्रसे ढक लिया। उस समय उनकी बुद्धि समस्त परिग्रहसे निवृत्त हो गयी, वे बुद्धि या मनसे पूर्ण रूपमे अपरिग्रही बन गये। सब के प्रति उन्होने मित्रता का भाव प्रकट किया। इस प्रकार उनके विचार हर प्रकार से शुभ थे। कृष्णके जिन पुत्रो, पौत्रो, स्त्रियो, भाइयो, गुरुओं और कुटुम्बी बान्धवोने भविष्यका विचार छोड करके अग्निके पहले तपस्या करना आरम्भ कर दिया था, वास्तवमे वे धन्य थे। पर हजारों स्त्री-पुरुष और द्वारिकावासी और मित्रगण तपका कष्ट न उठा कर अग्निमे भस्म हो गये। कर्मके प्रबल भारसे कृष्णने भी तप नही किया, श्रावकके व्रत भी नही पाले, पर जिनदेव, वीतराग गुरुओ और निरग्रन्थ साधुओ और दया-धर्ममे सच्ची तथा दृढ श्रद्धा थी। शुभ चितन करते हुए कौसाबी वनसे वे भावी तीर्थंकर परलोक सिधारे।

बलदेव का तप

बलदेव स्वामी श्री कृष्णके लिए जल लेने जगल मे दूर निकल गये पर उन्हे जल नही मिला। उसके मन मे कृष्ण ही बसा था। रास्ते मे उसे बहुत से अपशकुन हुए पर वह लौटा नही। वन मे जल दुर्लभ था और जगह-जगह मृगतृष्णा थी। वह समझने लगा कि यह जल भरा है। वह वनमें मृगोके समान दौड़ रहा था। तब उस ने एक सरोवरी देखी जिसके किनारे चकवे, सारस और कलहंस सुन्दर शब्द कर रहे थे। सरोवरी तरगे मार रही थी। सरोवरी को देखकर बलदेवने सुखकी लम्बी साँस ली।

बलदेवने जल छानकर स्वय पिया और पत्तो के पात्रमे पानी भरा और चल पडा। वह तेज चला ताकि वह शीघ्र जाकर भाई को पानी पिलाये।

बलदेवके मनमे चिंता थी कि निर्जन भयानक वनमे वह भोले भाई कृष्ण को अकेला छोड कर क्यो चला आया। बलदेव ने दूर से कृष्णको पीताम्बर ओढे लेटा देखा, तो सोचा कि जहाँ मैं उसे छोड़ गया था, वही सुख निद्रासे सो रहा है। वह स्वय जागेगा तभी उसे पानी पिलाऊगा। जब बहुत देर हो गई और श्रीकृष्ण न जागे, तब उसने श्रीकृष्णको जगाने के लिए कहा कि बहुत सो चुके, अब उठो और जल पियो। यदि कृष्ण सोते होते, तो इन

बातों से उठ जाते पर वे तो दीर्घ निद्रामे सो रहे थे, मर चुके थे, तब कैसे उठते ?

बलदेव चुप होकर बैठ गया। पर जब उसने चीटियोको वस्त्र मे घाव पर जाते देखा तब उसने कपड़ा हटाया और देखा कि उसकी तो हालत ही कुछ और थी। बलदेवने सोचा कि कृष्ण तो मारे प्यास के मर गया और उसका सर्वस्व जाता रहा। फिर बलदेव वासुदेवकी छातीसे लग गया और मूच्छित हो गया। बलभद्र के लिए मूच्छित होना भी अच्छा ही था, वरना वह भाईके शोकसे तभी मर जाता। बलदेव तो हरिके स्नेह पाशमे दृढ रूपसे बधा था। इन जैसा स्नेह जगतमे और किसको था ? जब बलदेव सचेत हुआ तब उसने वासुदेवके अग अपने हाथ से छुए, पावके घावको देखा, तो लाल पाव रक्तसे अधिक लाल हो गया था। रक्तकी दुर्गंध भी उसे मालूम हुई। तब उसने समझा कि श्रीकृष्णको किसीने बाण से मार दिया। तब उसने सोचा कि यहा उसको मारनेवाला कौन हो सकता है ? तभी बलदेवने सिहनाद किया, जिससे सारा वन गूज उठा, हाथियो का मद उतर गया और शेर मारे डर के गुफाओमे घुस गये। उसने पुकार कर कहा, "जिसने अकारण मेरे भाईको मारा है, जरा वह शीघ्र मेरे सामने आये। जो क्षत्री शूरवीर होते है, वे सोते हुए शस्त्रहीन, असावधान, नग्नीभूत, त्यक्तमान और भागते हुए को नही मारते। वे स्त्री, बालक, वृद्ध और रोगीको भी नही मारते। ऐसे क्षत्री यशस्वी होते है, यश के धनी होते है।"

जब इधर-उधर दौडनेपर भी बलदेवको कोई न मिला, तब उसने कृष्ण को छाती से लगा लिया और विलाप करके रोने लगा। बलदेव रो-रो कर कहने लगा, "हाय जगतके प्रिय ! जगतके स्वामी हाय, जनार्दन ! तू मुझे छोडकर कहाँ चला गया ? तू जल्दी आ ! वह चेतना शून्य निर्जीव को बार-बार पानी पिलाता था, पर उनके गले मे जल जरा भी प्रवेश नही करता था। बलदेव कभी उनका मुख

धोता, हर्ष पूर्वक उसे देखता, कभी चूमता तो कभी उनको सूंघना, वह कभी उनका वचन सुनने की इच्छा करता । ऐसा मूढबुद्धि बन गया था बलदेव । आचार्योंने ऐसी आत्म-मूढता को धिक्कारा है । कभी बलदेव कहता, "क्या स्वर्ग समान विशाल वैभवशाली द्वारिका के भस्म हो जाने से जीने की आवश्यकता न समझकर तू तप्त हो रहा है ? ना भाई, ऐसा मत कर । भारत भूमि नाना प्रकारकी अविनाशी खानो से भरी पडी है । क्या समस्त यादवो और भोजवशियो के क्षय हो जानेसे अपने को बन्धु रहित समझकर तू मोह को प्राप्त हो गया है ? ऐसा करना उचित नही है । मैं और आप जीवित रहे, तो समझो कि हमारे सब भाइयो का समूह जीवित है । तुम सदा मुझे देखते रहते थे, फिर भी तुम्हे तृप्ति न होती थी । पर आज तुम मेरी ओर देखते भी नही । मैने मूर्खता मे पानी लेने जाने के कारण अपने रत्नसदृश भाई को खो दिया । मेरे रहते तुझे हरनेवाला, मारनेवाला कौन था ? तू कसके क्रोध और जरासध के यशको चकनाचूर करनेवाला था, पर खेद है कि आज तू स्वय नही रहा । आज सूरज भी तुझे निद्रामे डूबा देखकर तेरे प्रति शोक प्रकट करता हुआ अपनी किरणो को सिकोडकर अस्ताचल की ओट मे चला गया है । सभी प्रकृति तेरे शोक मे निमग्न है, रुदन कर रही है । हे देव ! अब बहुत मत सोओ । सूर्य अस्त हुआ, सन्ध्या भी गई, अब रात हो गई है । हे भाई ! यह वन तुम्हारे रहने लायक नही है । यहा अनेक पापी जीव फिरते है, यहा कुशब्द हो रहे है । इसलिए यहा से चलकर किसी और दूसरे सुन्दर स्थान मे जाकर रात व्यतीत करें । यहा वन के दुष्ट मासभक्षी जीव गिद्ध, कव्वे और गीदड इत्यादि विचर रहे है । तुम सुन्दर महलों मे रहते थे, राजा लोग तुम्हारे दर्शनो की प्रतीक्षा करते थे, प्रातः गीत तथा सगीत होने पर तुम उठते थे । पर आज तुम्हे क्या हो गया है ?" इस प्रकार बलदेव विलाप कर रहा था ।

गौतम गणधरने राजा श्रेणिक से कहा, "हे श्रेणिक ! बलदेवने वासुदेवसे अधिक मोह किया। दोनों भाई प्राणवल्लभ थे। पर बलदेव की सब बाते व्यर्थ गईं। वह कृष्ण को छातीसे लगाये वन मे फिर रहा था। उसे विलाप करते बहुत से दिन-रात बीत गये। न खाना, न पीना और न सोना। वह कृष्ण के मृत शरीर को लिए फिरते रहे, पर कही शान्ति न मिली।"

ग्रीष्म ऋतु गयी, वर्षा ऋतु आई। बादल गरजने और बरसने लगे। काली घटाओसे बिजली चमकने लगी। उसी समय वासुदेव की आज्ञानुसार जरत्कुमार भीलके भेषमे पाण्डवोके पास दक्षिण मथुरा गया और युधिष्ठरसे राजसभामे मिला। तब जरत्कुमारने युधिष्ठर आदि को द्वारिका दहन और प्रमादवश अपने द्वारा कृष्णके परलोक गमनके समाचारको रोकर सुनाया। उसने प्रमाण स्वरूप कृष्णकी दी हुई कौस्तुभमणि राजाको दिखाई। मणिको देखकर और कृष्णके वियोगका समाचार सुनकर युधिष्ठर आदि पाचो भाई विलाप करने लगे, क्योकि कृष्णसे उनका बडा स्नेह था। उसी समय रनवासमे कुन्ती माता और पाचो भाइयोकी रानिया दहाड मार-मार कर रोने लगी। पाण्डवोके घरके नर-नारी सभी विलाप करके कहने लगे, "हा प्रधान पुरुष ! महावीर ! हा ससारके कष्टोको दूर करनेवाले ! आप जैसे महा पुरुषोकी यह क्या दशा हुई ?" इस प्रकार उन्होने बहुत देर तक बार-बार रुदन किया।

पाण्डव तो समस्त रीति-रिवाजोको जानते थे। रोना-चीखना बन्द होने पर उन्होने श्रीकृष्णको जला दिया। उन्होने जरत्कुमारको भीलका भेष छोडकर राजकुमारोके वस्त्र पहननेको कहा। उन्होंने उसे भीलोका कर्म छोडकर श्रावकके व्रत धारण करनेको कहा। फिर दु खी हृदयसे बलदेवको देखने चले। उनके साथ माता कुन्ती, द्रौपदी और उनके पुत्र भी थे। सेना भी उनके साथ थी। वनमे पहुँचकर उन्होने देखा, कि बलदेव तो कृष्णके मृतक शरीरको

उबटना मलकर स्नामे करा रहा है और आभूषण पहना रहा है। वे बलदेवको छातीसे लगाकर बहुत रुदन करने लगे। कुछ समय बीतनेपर माता कुन्ती और उनके पुत्रोने बलदेवको दाह-सस्कार करनेको कहा। पर बलदेवने कृष्णके मृत शरीर को न दिया, उल्टा कुपित होकर कुछ-कुछ कहने लगा। उसने उन्हे कृष्ण-को स्नान कराने और उसके लिए भोजन तैयार करनेको कहा। सब कुछ जानते हुए और बलदेवके कामोको व्यर्थ समझते हुए भी पाण्डवोंने बलदेवकी आज्ञाका पालन किया और समस्त वर्षाकाल वही वनमे उसके पास रहे।

बरसात बीत गई। शीत ऋतु आ गई। वे सब वही वनमे बलदेव के पास रहे। श्रीकृष्णके जिस शरीरसे जीवित अवस्थामे सुगध आती थी, अब उसमे महा दुर्गन्ध आने लगी।

अब बलदेवके प्रतिबुद्ध होनेका समय आ गया। तभी वहा सिद्धार्थ नामका सारथी भाई जो देव हो गया था और जिसने बल-देव को वचन दिया था, वहां आ गया। उसने बलदेवको प्रबुद्धकरने के लिए निम्नलिखित अनेक दृष्टान्त दिये।

पहले उसने एक ऐसा रथ दिखाया जो पर्वतके विषम मार्गपर आसानीसे चल सका पर चौरस मैदान मे आकर रुक गया और टूट गया। वह देव उस रथकी सन्धिको ठीक करने लगा, जोडने लगा। पर वे जुड़ती ही न थी। तब बलदेवने पूछा, "हे भाई! यह बड़े आश्चर्यकी बात है, तेरा रथ पर्वतके विषम मार्गपर तो चल सका पर यहां मैदानमें आकर रुककर टूट गया और तेरे ठीक करनेपर भी ठीक नही होता। इसका खडा होना कैसे सम्भव है ?" देवने उत्तर दिया, "हे बलदेव! जिस कृष्णका महाभारतमें बाल बाका नही हुआ, वह जरत्कुमारके बाण मात्र से नीचे गिर गया। अब इस जन्ममें इसका उठना कैसे सम्भव हो सकता है ?" फिर देव

एक निर्जल शिला तलपर कमलिनी लगाने लगा। बलदेवने पूछा, "निर्जल शिला तलपर कमलिनी कैसे उग सकती है?" इसपर देवने कहा, "भला निर्जीव शरीरमे कृष्णकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है?" फिर देव एक सूखे वृक्षको सीचने लगा। तब बलभद्र ने कहा, "कही सूखा वृक्ष भी पानी देनेसे हरा हुआ है?" देव ने उससे पूछा, "हे बलदेव! मृत कृष्णको स्नान कराने से क्या लाभ है?" फिर देव एक मृतक बैल को घास-पानी देने लगा। उसे देखकर बलदेवने पहले की तरह पूछा, "अरे मूर्ख! इस मृतक बैल को घास-पानी देने से क्या लाभ होगा?" उत्तर मे देवने कहा, "मृतक कृष्णको आहार-पानी देने से जो लाभ हो सकता है, वही लाभ इस मरे बैलको घास-पानी देने मे हो सकता है। कितने आश्चर्य की बात है कि बडे आदमी अपनी भूल नही समझते, दूसरो की भूले तुरन्त देख लेते है।"

उस देवकी इन बातोसे बलदेवकी आखे खुल गई। वह अपनी भूलको समझ गया। उसका झूठा मोहपाश टूट गया और वह समझ गया, कि कृष्ण तो परलोक गये। बलदेव कहने लगा, "मै व्यर्थ छह महीने कृष्णके मृत शरीरको लिए फिरता रहा। मै भूलसे समझता रहा कि मै न था, तभी उसको बाण लगा। उस प्राणीका न कोई रक्षक है, न नाशक है। आयु कर्म सबका रक्षक है, आयु कर्मके क्षीण होते ही शरीरका नाश होता है। यह राज्य सम्पदा हाथीके कानके समान चचल है। जहा सयोग है, वहा वियोग है, जीवन मरणके दुखसे नीरस है। एक मोक्ष ही अविनाशी है। वही प्राप्त करने योग्य है।" इस प्रकार बलदेवने अपने वशके उस देवसे धर्मज्ञान और सच्चा विश्वास प्राप्त किये।

इसके पश्चात् बलदेव, जरत्कुमार और पाण्डवोने तुङगीगिरिके शिखरपर श्रीकृष्णका दाह सस्कार करके जरत्कुमारको राज्य दिया। बलदेवने जीवनको क्षणभगुर समझकर परिग्रहके त्यागका निश्चय करके

साथियोंके साथ उसी पर्वत शिखरपर आश्रय लिया। अब उन्हें वैराग्य हो गया। वहा उस समय कोई मुनि नही था, जिससे वे दीक्षा लेते। उस समय पल्लव देश मे तीर्थंकर नेमिनाथ विराजमान थे। अत बलदेवने पल्लव देशकी तरफ मुख करके नेमिनाथका स्मरण किया, उन्होने नमस्कार किया और उनकी शिष्यता स्वीकार की। फिर उन्होने अपने हाथोसे अपने सिरके केश उखाडे।

अब बलदेव महाव्रती बन गये। बलदेव शरीरसे अत्यन्त सुन्दर नही थे। जब वे आहारके लिए नगरमे गये, तो स्त्रियोकी विपरीत चेष्टाए देखकर उन्होने नगरमे आना ही छोड दिया और वनमे ही आहार लेनेकी प्रतिज्ञा की। वनके बाहर आहार लेने का भी त्याग कर दिया।

बलदेवके वैराग्य लेने पर पाण्डवोने जरत्कुमारके साथ अनेक राज कन्याओका विवाह कर दिया। फिर वे पाण्डव, माता कुन्ती और द्रौपदी आदि तीर्थंकर नेमिनाथके दर्शनार्थ और सयम धारने के लिए पल्लव देश गये।

बलदेवने मुनि होकर घोर महातप करना शुरू कर दिया। संसारमें सिवाय आत्माके सब कुछ अनित्य या क्षणभगुर है। तन, धन, कुटुम्ब, संसारके सुख, राज्य, सम्पदा तथा सम्बन्ध आदि सब अनित्य हैं। इस जीवकी शरण या रक्षा करनेवाला कोई नही, धर्म ही उसकी शरण है। यह ससार रूपी चक्र अनादि कालसे भ्रमण करता है। कभी स्वामीसे सेवक बनता है और कभी स्वामी पिता पुत्र बन जाता है और पुत्र पिता। यह प्राणी अकेला मरता है। मै (आत्मा) चेतन हू और शरीर अचेतन है। जब शरीर भी मुझसे भिन्न है, तब दूसरी वस्तुओसे भिन्नता क्यो न होगी ? अपना या पराया शरीर रक्त, वीर्य आदि मलीन पदार्थोंमे बना है। इसलिए कौन पवित्र आत्मा इस अपवित्र शरीरसे वियोगके समय शोक करेगा

और सयोगके समय राग या प्रेम करेगा ? काया, वचन और मनके योगसे पुण्य और पाप कर्मका आगमन होता है। कर्मोंके आगमनके बाद यह जीव उनमे बधकर ससारसे जन्मता-मरता है। कर्मोंके आगमनको रोकना सवर कहलाता है। सद्गतिका मार्ग सवर ही है। फिर आये हुए कर्मोको क्षय करना आवश्यक है। कर्म अपना फल देकर समाप्त हो जाते है। पर सचित कर्मोको तपके द्वारा नष्ट करना कल्याणकारी है। यह लोक अनादि निधन है, इसका कोई कर्ता धर्ता नही है। इस ससारमें रत्नत्रय अर्थात् सच्चा विश्वास, सच्चा ज्ञान और सच्चा चरित्र प्राप्त करना दुर्लभ है। कर्मकी प्राप्ति दुर्लभ है। समाधिमरण दुर्लभ है। धर्म ही मोक्षदाता है। इसके दस लक्षण उत्तम क्षमा, सत्य और अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, निगर्वता, निष्कपटता, पवित्रता, तप और सयम है। धर्मके त्यागसे जीव अनत दु.खोको पाता है। मुनि बलदेव इस समय इस प्रकारके विचारोका चितवन करने लगे। भाई श्रीकृष्णका जो मोह था, वह इन सद्विचारोसे दूर हो गया।

तप करने और मुनिव्रत निभानेमे अनेक कष्टोका सामना करना पडता है, उन्हे शातिके साथ सहना पडता है। इन कष्टोंको जीतना, इनसे जरा भी विचलित न होना, महान तपस्वीके लिए आवश्यक है। भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी, डास, मच्छर, नग्नता, अरुचिकर प्रसग, काम वासना, अप्रिय वचन, ताडन-तर्जन, याचक वृत्ति, अनिष्ट वस्तुकी प्राप्ति, रोग सहन और सत्कार मिलना या न मिलना आदि अनेक कष्ट है। इन सब कष्टोका मुनि बलदेव सम भावसे सहन करने लगे। ऐसे अनेक कष्ट उनपर आये, पर उन्होने उनपर विजय पाई। इन परीषहो—कष्टो—की कल्पना मात्रसे ही आदमी काप उठता है। पर मुनि तो इन्हे बिना दु.ख माने समभावसे सहते है। कहा महलोके राजसी सुख और कहा यह अनेक कष्टोंसे भरी

मुनिचर्या ? तपके फल तककी इच्छा भी मुनिजन नही करते, किसी वस्तुकी कामना नही। बाह्य शारीरिक तपके साथ-साथ वे सभी प्रकारका आतरिक तप—प्रायश्चित्त, विनय, सेवा, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, ध्यान—करने लगे। इस प्रकार विषय-कषायों आदि दोषोको जीत कर बलदेव दुर्द्धर कठोर तप करने लगे। वे तपस्वियोम शिरोमणि बन गये।

ससारसे भयभीत महा पराक्रमी युधिष्ठर आदि पाचो पाण्डव, कुन्ती और द्रौपदी आदि श्री तीर्थंकर नेमिनाथके पास पल्लव देशमें गये। उस समय भगवान अपने समवसरण मे विराजमान थे। उन्होने समवसरणकी प्रदक्षिणा करके बडी विनयसे भगवान को नमस्कार किया। उन्होने भगवानके ज्ञानामृतका पान किया। फिर उन्होने श्री नेमिनाथसे अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त पूछा। तब भगवानने अपनी दिव्यध्वनि द्वारा उनके पूर्वजन्मो का वृत्तान्त सुनाने के पश्चात् कहा कि युधिष्ठर, भीम और अर्जुन तीनों भाई इसी जन्ममे मोक्ष जायेगे और नकुल तथा सहदेव एक जन्मके बाद सिद्ध होगे अर्थात् मोक्ष जायेगे। और द्रौपदी सम्यग्दर्शनसे शुद्ध होकर तपके प्रभावसे स्वर्गमें देवी होगी, फिर वहांसे चयकर नरभव पाकर तप करके निरजन पद पायगी, मोक्ष जायगी। अपने पूर्व-जन्मोंका हाल सुनकर पाण्डव संसारसे विरक्त हो गये और तभी तीर्थंकर नेमिनाथके पास सयम ग्रहण किया। माता कुन्ती, द्रौपदी, और सुभद्रा आदि अनेक रानियोने गुरुआणी राजमतीसे आर्यिका दीक्षा ली। वे साध्वियाँ बन गई। वे पाचो पाण्डव रत्नत्रयको अपना कर पांचों महाव्रत पालते हुए आत्म-स्वरूपका ध्यान करने लगे। वे महातप करने लगे और पदयात्रा करके विहार करने लगे। बडा उग्रतप था उनका। उन सब पाण्डवोने जो तप किया, वह उनसे ही होनेवाला अद्वितीय तप था और किसीके द्वारा इतना घोर कठोर

तप अशक्य था। युधिष्ठर आदि मुनियोंने दो-दो तीन-तीन दिनके उपवास किये। मुनि भी तो बहुत ही शक्तिशाली थे। उन्होने मनमें सोचा कि यदि उन्हें भालेके अग्रभागपर आहार मिलेगा, तभी उसे ग्रहण करेंगे। ऐसे आहारका सयोग छह महीनेतक नही बना। क्षुधासे उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया। इस तपसे उनका हृदयका श्रम दूर हो गया। ऐसे अपूर्व और महातपस्वी परिव्राजक थे वे पाण्डव!

: ४७ :

श्री नेमिनाथ निर्वाण

सब देवोंके देव तीर्थंकर नेमिनाथजी उपदेश करते हुए उत्तरसे सुराष्ट्र देशकी ओर आये। उनका तेज पूर्ववत् सर्वत्र व्याप्त था। समवसरणकी विभूतिवाले नेमि जिनेन्द्र जब दक्षिणमे विहार कर रहे थे, तब वहाँके देश स्वर्गके समान सुशोभित हो रहे थे। जब उनका अतिम समय आया, तब निर्वाण कल्याणकी विभूतिको प्राप्त करनेवाले नेमिनाथ स्वय गिरनार पर्वत पर पहुँच गये। वहाँ समवसरणकी रचना हो गयी। वहाँ उन्होने स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिके साधन सम्यग्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र्य-रूप जिनधर्मका उपदेश दिया। यह उपदेश कोई एक महीने तक चलता रहा। धर्मोपदेश उनका स्वाभाविक गुण था। किसी की प्रेरणासे वे धर्मोपदेश नही देते थे। उन्होने सैकडो मुनियोके साथ निर्वाण प्राप्त किया, वे सिद्धलोक को सिधारे। सभी प्रकार के देव और इन्द्रोंने इस निर्वाण कल्याणककी पूजा की। दिव्य-गन्ध और पुष्प आदि से पूजित तीर्थंकर आदिके शरीर मोक्ष जाते समय क्षण भरमे बिजलीके समान चमकते हुए आकाशमे विलीन हो जाते है। उनके शरीरके परमाणु अंतिम समय बिजलीके समान क्षण भरमे समाप्त हो जाते है। जब वहाँ उनका भौतिक शरीर नही रहा, तब इन्द्रादिने उनका मायामय शरीर बना कर उसका दाह-कर्म कर दिया।

समुद्रविजय आदि अन्य मुनि भी गिरनार पर्वतसे मोक्ष गये। इसलिए उस समयसे गिरनार पर्वत निर्वाण स्थानके रूपमे प्रसिद्ध हो गया, वह तीर्थराज बन गया।

जब पाचों पाडव मुनियोने श्री नेमिनाथके निर्वाणका समाचार सुना, तब वे शत्रुञ्जय पर्वत पर प्रतिमायोगसे विराजमान हो गये । उस समय वहाँ दुर्योधनके वंशका क्षयवरोधन नामका कोई पुरुष रहता था । पर्वत पर पाण्डवोके आनेकी बात सुनकर पूर्व बैरके कारण उसने पाण्डवोको बडे कष्ट दिये । ऐसे कष्टोको उपसर्ग कहते है । उसने लोहेके मुकट, कडे और कटिसूत्र गर्म करके उन पाण्डव मुनियोको पहनाये । पाण्डव मुनि बडे धीर, वीर थे—वे बडे-से-बडा कष्ट सहन करने मे समर्थ थे । उन्होने समझा कि यह सब उनके कर्मोका फल है, और वे उनका क्षय करने मे समर्थ थे । उन्होने उन तपते हुए लोहेके मुकुट आदि को हिमके समान शीतल समझा । युधिष्ठर, भीम और अर्जुन तो उन कष्टोको सहते हुए मरकर मोक्ष गये । परन्तु नकुल और सहदेव बडे भाइयोके कष्टो-को देखकर कुछ-कुछ आकुल चित्त हुए थे । इसलिए वे सर्वार्थ-सिद्धि गये । बहुतसे मुनि और नारद भी दीक्षा लेकर तप करके मोक्ष गये ।

तुंगीगिरिके शिखरपर बलदेवने भी ससार चक्रको तोडनेके लिए बडा घोर तप किया । कभी वे एक दिनका उपवास करते, कभी दो दिन का । कभी-कभी तीन दिनका, तो कभी पन्द्रह दिनका उपवास करते । यहाँ तक कि वह छह-छह महीनेका उपवास भी कर देते थे । इस प्रकार उन्होंने न केवल अपने शरीरको सुखाया, वरन् अपने क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोको भी जलाया और धैर्य को पुष्ट किया । पहले बताया जा चुका है, कि बलदेव मुनि आहार आदि के लिए नगर और ग्राम नही जाते थे । उन्हे वनमे ही आहार लेने की प्रतिज्ञा थी । पर वनमे आहार कहाँ ? उनकी इस प्रतिज्ञा की बात नगर-नगर और गाव-गाँवमे फैल गयी । समीपवर्ती राजा इस बातको सुनकर क्षुभित हुए और शस्त्रोसे सुसज्जित होकर बल-देवको कष्ट देनेके लिए तैयार हो गये । उन राजाओंने मुनिके चरणोके समीप सिंहोके समूह को देखा । ये सिह देव-रचित थे ।

राजाओने अपने विचारको त्याग दिया और बलदेव मुनिको नमस्कार किया। तबसे बलदेव नरसिंहके नामसे प्रसिद्ध हो गये। वास्तवमे उनका वक्षस्थल सिंहके वक्षस्थलके समान चौडा था और वे सिंहो द्वारा सेवित थे। उन्होने एक सौ वर्ष कठोर तप किया और चार तरह की आराधनाएँ की। वे स्वर्गमे ब्रह्मेन्द्र हुए। उन्हे अवधिज्ञान था। उन्होने भूत-भविष्यका सब हाल जान लिया। अपने अवधिज्ञानसे उन्होने कृष्णसे भेंट की। दोनो आपसमे मिलकर बडे प्रसन्न हुए। श्रीकृष्णने बलदेवसे कहा कि हम दोनों तपके द्वारा कर्मोंको नष्ट करके मोक्ष जायेंगे। श्रीकृष्णने बलदेवसे कहा, "द्वारिका-दहन और यदुवशके क्षयसे जो लोकापवाद हुआ है, उसे दूर करनेके लिए तुम ऐसा काम करना कि भरत क्षेत्रमें शख, चक्र, गदा और पद्मादि से युक्त मेरी मूर्तियाँ स्थापित करो।" बलदेवने वैसा ही किया और फिर स्वर्ग चला गया। यह कथा गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको सुनायी।

महा प्रतापी राजा जरत्कुमारके राज्यमे प्रजा बहुत सुखी थी। उसने राजा कलिंगकी पुत्रीसे विवाह किया, जिससे वसुध्वज नामका पुत्र हुआ, जो चन्द्रमाके समान प्रजाको प्यारा था। इसी वशमे भीमवर्मा राजा हुआ। उसके वशमे अनेक और राजा हुए। फिर उसी वंशमे हरिवशका आभूषण राजा कपिष्ट हुआ। जिसके अजातशत्रु पुत्र हुआ। उसका पुत्र शत्रुसेन, पौत्र जितारसेन और प्रपौत्र जितशत्रु हुआ। गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे पूछा कि क्या वह राजा जितशत्रुको नही जानता? उस जितशत्रुसे तीर्थंकर महावीरके पिता सिद्धार्थकी छोटी बहनका विवाह हुआ था, जो महावीरकी बुआ थी।

जब महावीरका जन्म हुआ, तब जितशत्रु कुण्डलपुर गया और राजा सिद्धार्थने उसका बड़ा आदरमान किया। राजा जितशत्रुकी रानी यशोदमासे उत्पन्न यशोदा राजकुमारी थी। राजाकी उत्कट

इच्छा थी कि अपनी पुत्री यशोदाका विवाह महावीरसे हो जाय, परन्तु महावीरने विवाह करना अस्वीकार कर दिया, वे तपके लिए वनमे चले गये। केवलज्ञान प्राप्त करके महावीर विहार करने लगे। तब राजा जितशत्रु भी तप करने लगा। मुनि जितशत्रुने अपने तपसे केवलज्ञान प्राप्त किया और उससे उनका मनुष्य जन्म सफल हुआ।

इस प्रकार गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको यह लोक-प्रसिद्ध तथा त्रेसठ शलाका पुरुषोके पुराणपद्धतिसे सम्बन्ध रखनेवाली हरि-वशकी कथा सक्षेपमे कही।

राजा श्रेणिक इस पवित्र कथाको सुनकर बडा प्रसन्न हुआ और वह गौतम गणधरको नमस्कार करके अपने नगरको चला गया।

महामुनि जितशत्रु केवली भी ससारमें विहार करके कर्मबधन-मे मुक्त होकर मोक्ष गये। भगवान् महावीर भी जगत के नरनारियो-को अपना उपदेश देकर पावापुर नगरीमे पहुँचे और वहाँ के मनोहर उद्यानमे विराजमान हो गये। जब चतुर्थ कालमे तीन वर्ष साढे छह मास बाकी रहे, तब वे स्वाति नक्षत्रमे कार्तिकी अमावस्याके दिन प्रात कालके समय कर्मोंको नष्ट करके सब बन्धन रहित होकर मोक्ष गये। उस समय सुर-असुरोके द्वारा जलाई हुई बहुत देदीप्यमान दीपकोकी पक्तिसे पावा नगरीका आकाश जगमगा उठा। राजा श्रेणिकने भी प्रजाके साथ तीर्थंकर महावीरके निर्वाण कल्याणक-की पूजा की। तबसे भारतवर्षमे इस कल्याणककी स्मृतिके रूपमे यह निर्वाण उत्सव दीपमालिकाके रूपमे प्रतिवर्ष बडे उत्साह और हर्षसे मनाया जाना है और सभी नर-नारी भगवान्‌की पूजा करके निर्वाण-पद प्राप्त करनेकी भावना करते है।

—: समाप्त :—